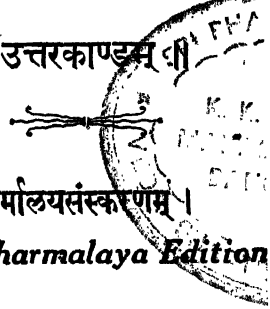
॥ श्रीरामजयम् ॥

# ॥ श्रीमद्वाल्मीकिरामायणम् ॥

## ॥ उत्तरकाण्डम् ॥



धर्मालयसंस्करणम् ।

***The Dharmalaya Edition***

Edited by

The Late Rao Sahib P. S. KRISHNASWAMI IYER,

*Dharmalaya, Mylapore.*

Published with the aid of

Sri. M. N. RAMASWAMY IYER,

*Banker, Palghat.*

By

**R. Subrahmanya Vadhyar & Sons,**

**BOOK-SELLERS & PUBLISHERS,**

**KALPATHI-PALGHAT**

Library Edition.] 1941 [Price Rs. 1—8—0

PRINTED AT

THE SCHOLAR PRESS,

PALGHAT

॥ श्रीः ॥

## ॥ विषयानुक्रमणिका ॥


| सर्गः | विषयः | श्लोकसंख्या | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| 1. | श्रीरामप्रश्नः ... ... ... | 36 | 1 |
| 2. | पौलस्त्यजन्म ... ... ... | 32 | 5 |
| 3. | वैश्रवणोत्पत्तिः लङ्कादिप्राप्तिश्च ... | 35 | 9 |
| 4. | सुकेशराक्षसोत्पत्तिः ... ... | 32 | 13 |
| 5. | माल्यवदाद्युत्पत्तिः ... ... | 45 | 16 |
| 6 | विष्णुमाल्यवदादियुद्धम् ... ... | 61 | 21 |
| 7. | मालिवधः ... ... ... | 52 | 28 |
| 8. | सुमाल्यादिपराजयः ... ... | 26 | 33 |
| 9. | रावणाद्युत्पत्तिः .... ... | 43 | 36 |
| 10. | रावणादिवरप्राप्तिः ... ... | 47 | 41 |
| 11. | रावणस्य लङ्काप्राप्तिः ... ... | 50 | 46 |
| 12. | रावणादिविवाहः ... ... | 31 | 51 |
| 13. | कुबेरदूतवधः ... ... ... | 41 | 55 |
| 14. | यक्षराक्षसयुद्धम् ... ... | 28 | 59 |
| 15. | पुष्पकापहरणम् ... ... | 32 | 62 |
| 16. | रावणनामप्राप्तिः ... ... | 41 | 66 |
| 17. | वेदवतीशापः ... ... ... | 39 | 70 |
| 18. | मरुत्तविजयः ... ... ... | 36 | 75 |

| सर्गः | विषयः | श्लोकसंख्या | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| 19. | अनरण्यशापः ... ... | 30 | 79 |
| 20. | नारदरावणसंवादः ... ... | 30 | 82 |
| | षड्विंशेऽस्मिन् गीताः श्लोकाः | 767 | |
| 21. | यमरावणसेनायुद्धम् ... ... | 43 | 86 |
| 22. | यमविजयः ... ... ... | 51 | 91 |
| 23. | वरुणविजयः ... ... ... | 53 | 96 |
| 24. | दण्डकायां खरादिनिवासनम् ... | 39 | 102 |
| 25. | मधुसख्यम् ... ... ... | 53 | 106 |
| 26. | नलकूबरशापः ... ... ... | 59 | 112 |
| 27. | सुमालिवधः ... ... ... | 49 | 118 |
| 28 | जयन्तापवाहनं इन्द्ररावणयुद्धं च ... | 48 | 123 |
| 29. | इन्द्रग्रहणम् ... ... ... | 41 | 129 |
| 30. | मेघनादस्य इन्द्रजिन्नामप्राप्तिः ... | 57 | 133 |
| 31. | रावणनर्मदावगाहः ... ... | 42 | 139 |
| 32. | रावणबन्धनम् ... ... ... | 73 | 144 |
| 33. | रावणमोचनम् ... ... ... | 23 | 152 |
| 34. | वालिरावणसख्यम् ... ... | 46 | 154 |
| 35. | हनुमदुत्पत्त्यादि ... ... | 65 | 159 |
| 36. | हनुमद्वरप्राप्तिः ... ... ... | 60 | 166 |
| 37. | पौरोपस्थानम् ... ... ... | 26 | 173 |
| 38. | जनकादिप्रतिप्रयाणम् ... ... | 31 | 175 |
| 39. | सुग्रीवादिसम्माननम् ... ... | 20 | 179 |
| 40. | सुग्रीवादिविसर्जनम् ... ... | 25 | 181 |
| | सप्तविंशेऽस्मिन् गीताः श्लोकाः | 904 | |

| सर्गः | विषयः | श्लोकसंख्या | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| 41. | पुष्पकविसर्जनम् ... ... | 19 | 184 |
| 42. | सीतया पुनर्गङ्गातीरगमनप्रार्थनम् ... | 32 | 186 |
| 43. | पौरजनकुत्सननिवेदनम् ... ... | 23 | 190 |
| 44. | लक्ष्मणाद्यानयनम् ... ... | 20 | 192 |
| 45. | सीतापरित्यागनियोगः ... ... | 24 | 195 |
| 46. | सीताया गङ्गातीरनयनम् ... | 32 | 197 |
| 47. | श्रीरामनियोगनिवेदनम् ... ... | 18 | 201 |
| 48. | सीतापरित्यागः ... ... ... | 26 | 203 |
| 49. | सीतायाः वाल्मीक्याश्रमप्रवेशः ... | 23 | 206 |
| 50 | दुर्वासोवचनानुवादचोदना ... | 19 | 209 |
| 51. | भृगुशापः ... ... ... | 38 | 211 |
| 52. | श्रीरामसमाधानम् ... ... | 18 | 215 |
| 53. | नृगशापः ... ... ... | 22 | 217 |
| 54 | नृगस्य कृकलासत्वप्राप्तिः ... | 18 | 220 |
| 55 | निमिवसिष्ठयोः परस्परं शापः ... | 20 | 222 |
| 56. | उर्वशीशापः ... ... ... | 24 | 224 |
| 57. | वसिष्ठस्य मैत्रावरुणित्वेनोत्पत्तिः ... | 20 | 227 |
| 58. | ययातिचरितम् ... ... ... | 23 | 229 |
| 59. | पूरो राज्याभिषेकः ... ... | 22 | 232 |
| 60. | हरिश्चन्द्रः... ... ... | 18 | 234 |
| | अष्टाविंशेऽस्मिन् गीताः श्लोकाः | 459 | |
| 61. | लवणपीडानिवेदनम् ... ... | 23 | 237 |
| 62. | लवणवधार्थं शत्रुघ्नप्रेषणम् ... | 22 | 240 |

| सर्गः | विषयः | श्लोकसंख्या | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| 63. | शत्रुघ्नाभिषेकः दिव्यास्त्रदानं च ... | 32 | 242 |
| 64. | शत्रुघ्नप्रस्थानम् ... ... ... | 17 | 246 |
| 65. | सौदासचरितः ... ... | 35 | 248 |
| 66. | कुशलवोत्पत्तिः ... ... | 15 | 252 |
| 67. | मान्धातृवधः ... ... ... | 23 | 254 |
| 68. | लवणशत्रुघ्नविवादः ... ... | 19 | 256 |
| 69. | लवणवधः ... ... ... | 40 | 259 |
| 70. | मधुपुर्यां प्रजापालनम् ... ... | 16 | 263 |
| 71. | वाल्मीकिना शत्रुघ्नप्रशंसनम् ... | 24 | 265 |
| 72. | श्रीरामशत्रुघ्नसमागमः ... ... | 20 | 268 |
| 73. | कुलालब्राह्मणविलापः ... ... | 19 | 270 |
| 74. | नारदवाक्यम् ... ... ... | 33 | 272 |
| 75. | शूद्रमुन्यन्वेषणम् ... ... | 18 | 276 |
| 76. | शम्बूकवधः ... ... ... | 37 | 278 |
| 77. | स्वर्गिप्रश्नः ... ... .... | 20 | 282 |
| 78. | श्वेतराजोपाख्यानम् ... ... | 30 | 284 |
| 79. | दण्डराज्यनिवेशकथनम् ... ... | 19 | 287 |
| 80. | शुक्रकन्याधर्षणम् ... ... | 18 | 290 |
| | एकोनत्रिंशेऽस्मिन् गीताः श्लोकाः | 480 | |
| 81. | दण्डशापः ... ... ... | 21 | 292 |
| 82. | श्रीरामस्यायोध्यां प्रत्यागमनम् ... | 20 | 194 |
| 83. | राजसूयाकरणनिर्धारणम् ... | 20 | 297 |
| 84. | वृत्राख्यानवर्णनम् ... ... | 18 | 299 |

| सर्गः | विषयः | श्लोकसंख्या | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| 85. | वृत्रासुरवधः ... ... ... | 22 | 301 |
| 86. | इन्द्रस्य ब्रह्महत्यातरणम् ... | 20 | 304 |
| 87. | इलोपाख्यानम् ... ... | 29 | 306 |
| 88. | किंपुरुषोत्पत्तिः ... ... | 24 | 309 |
| 89. | पुरूरवस उत्पत्तिः ... ... | 25 | 312 |
| 90. | अश्वमेधेनेलस्य सार्वकालिकपुंस्त्वप्राप्तिः | 25 | 314 |
| 91. | श्रीरामस्याश्वमेधसंविधानम् ... | 26 | 317 |
| 92. | हयचर्या ... ... ... | 18 | 320 |
| 93. | वाल्मीकिना रामायणगाननियोगः | 18 | 322 |
| 94. | कुशलवाभ्यां रामायणगानम् ... | 29 | 324 |
| 95. | वाल्मीकये दूतप्रेषणम् ... ... | 15 | 328 |
| 96. | वाल्मीकिना सीताप्रत्ययदानकथनम् | 22 | 330 |
| 97. | सीताया सातलप्रवेशः... ... | 26 | 332 |
| 98. | श्रीरामक्रोधशमनम् ... ... | 27 | 335 |
| | त्रिंशेऽह्नि गीताः श्लोकाः | 405 | |
| 99. | कौसल्यादिस्वर्गमनम् ... ... | 18 | 338 |
| 100. | भरतस्य गन्धर्वविजययात्रा ... | 25 | 340 |
| 101. | भरतपुत्रयो राज्याभिषेकः ... | 18 | 343 |
| 102. | लक्ष्मणपुत्रयो राज्याभिषेकः ... | 17 | 345 |
| 103. | कालरुद्रागमनम् ... ... | 17 | 347 |
| 104. | ब्रह्मसन्देशकथनम् ... ... | 19 | 349 |
| 105. | दुर्वाससस्समागमः ... ... | 19 | 352 |
| | एकत्रिंशेऽह्नि गीताः श्लोकाः | 133 | |

| सर्गः | विषयः | श्लोकसंख्या | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| 106. | लक्ष्मणत्यागः लक्ष्मणस्वर्गमनं च... | 18 | 354 |
| 107. | कुशलवयोरभिषेकः ... ... | 20 | 356 |
| 108. | शत्रुघ्नपुत्रयोरभिषेकः हनुमद्राद्यादेशश्च | 30 | 358 |
| 109. | श्रीरामस्य महाप्रस्थानम् ... | 22 | 362 |
| 110. | श्रीरामस्य वैष्णवतेजःप्रवेशः, फलनिरूपणं च | 38 | 364 |
| | द्वात्रिंशेह्नि गीताः श्लोकाः | 128 | |
| | | 3276 | |




॥ ॐ ॥

॥ अथ स्मार्तानां श्रीरामायणपठनोपक्रमेऽनुसन्धेयाः श्लोकाः ॥

शुक्लाम्बरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम् ।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत्सर्वविघ्नोपशान्तये ॥ १ ॥

वागीशाद्याः सुमनसः सर्वार्थानामुपक्रमे ।
यं नत्वा कृतकृत्याः स्युस्तं नमामि गजाननम् ॥ २ ॥

दोर्भिर्युक्ता चतुर्भिः स्फटिकमणिमयीमक्षमालांदधाना
हस्तेनैकेन पद्मं सितमपि च शुकं पुस्तकं चापरेण ।
भासा कुन्देन्दुशङ्खस्फटिकमणिनिभा भासमानाऽसमाना
सा मे वाग्देवतेयं निवसतु वदने सर्वदा सुप्रसन्ना ॥

कूजन्तं राम रामेति मधुरं मधुराक्षरम् ।
आरुह्य कविताशाखां वन्दे वाल्मीकिकोकिलम् ॥ ४ ॥

वाल्मीकेर्मुनिसिंहस्य कवितावनचारिणः ।
शृण्वन् रामकथानादं को न याति परां गतिम् ॥ ५ ॥

यः पिबन् सततं रामचरितामृतसागरम् ।
अतृप्तस्तं मुनिं वन्दे प्राचेतसमकल्मषम् ॥ ६ ॥

गोष्पदीकृतवाराशिं मशकीकृतराक्षसम् ।
रामायणमहामालारत्नं वन्देऽनिलात्मजम् ॥ ७ ॥

अञ्जनानन्दनं वीरं जानकीशोकनाशनम् ।
कपीशमक्षहन्तारं वन्दे लङ्काभयङ्करम् ॥ ८ ॥

उल्लङ्घ्य सिन्धोः सलिलं सलीलं
यः शोकवह्निं जनकात्मजायाः ।
आदाय तेनैव ददाह लङ्कां
नमामि तं प्राञ्जलिराञ्जनेयम् ॥ ९ ॥

आञ्जनेयमतिपाटलाननं काञ्चनाद्रिकमनीयविग्रहम् ।
पारिजाततरुमूलवासिनं भावयामि पवमाननन्दनम् ॥
यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं तत्र तत्र कृतमस्तकाञ्जलिम् ।
बाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं मारुतिं नमत राक्षसान्तकम् ॥
मनोजवं मारुततुल्यवेगं जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम् ।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं श्रीरामदूतं शिरसा नमामि ॥
यः कर्णाञ्जलिसंपुटैरहरहः सम्यक् पिबत्यादरात्
वाल्मीकेर्वदनारविन्दगलितं रामायणाख्यं मधु ।
जन्मव्याधिजराविपत्तिमरणैरत्यन्तसोपद्रवं
संसारं स विहाय गच्छति पुमान्विष्णोः पदं शाश्वतम् ॥
तदुपगतसमाससन्धियोगं सममधुरोपनतार्थवाक्यबद्धम् ।
रघुवरचरितं मुनिप्रणीतं दशशिरसश्च वधं निशामयध्वम् ॥
वाल्मीकिगिरिसंभूता रामसागरगामिनी ।
पुनातु भुवनं पुण्या रामायणमहानदी ॥ १५ ॥
श्लोकसङ्घजलाकीर्णं सर्गकल्लोलसङ्कुलम् ।
काण्डग्राहमहामीनं वन्दे रामायणार्णवम् ॥ १६ ॥
वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे ।
वेदः प्राचेतसादासीत्साक्षाद्रामायणात्मना ॥ १७ ॥

वैदेहीसहितं सुरद्रुमतले हैमे महामण्डपे
मध्येपुष्पकमासने मणिमये वीरासने सुस्थितम् ।
अग्रे वाचयति प्रभञ्जनसुते तत्त्वं मुनिभ्यः परं
व्याख्यान्तं भरतादिभिः परिवृतं रामं भजे श्यामलम् ॥

वामे भूमिसुता पुरश्च हनुमान् पश्चात्सुमित्रासुतः
शत्रुघ्नो भरतश्च पार्श्वदलयोर्वाय्वादिकोणेषु च ।
सुग्रीवश्च विभीषणश्च युवराट् तारासुतो जाम्बवान्
मध्ये नीलसरोजकोमलरुचिं रामं भजे श्यामलम् ॥

नमोऽस्तु रामाय सलक्ष्मणाय देव्यै च तस्यै जनकात्मजायै ॥
नमोऽस्तु रुद्रेन्द्रयमानिलेभ्यो नमोऽस्तु चन्द्रार्कमरुद्गणेभ्यः॥

॥ पारायणसमापनसमये अनुसन्धेयश्लोकक्रमः ॥

स्वस्ति प्रजाभ्यः परिपालयन्तां
न्याय्येन मार्गेण महीं महीशाः ।
गोब्राह्मणेभ्यः शुभमस्तु नित्यं
लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु ॥ १ ॥

काले वर्षतु पर्जन्यः पृथिवी सस्यशालिनी ।
देशोऽयं क्षोभरहितो ब्राह्मणास्सन्तु निर्भयाः ॥ २ ॥

अपुत्राः पुत्रिणः सन्तु पुत्रिणः सन्तु पौत्रिणः ।
अधनाः सधनाः सन्तु जीवन्तु शरदां शतम् ॥ ३ ॥

चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम् ।
एकैकमक्षरं प्रोक्तं महापातकनाशनम् ॥ ४ ॥

शृण्वन् रामायणं भक्त्या यः पादं पदमेव वा ।
स याति ब्रह्मणः स्थानं ब्रह्मणा पूज्यते सदा ॥ ५ ॥

रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे ।
रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः ॥ ६ ॥

यन्मङ्गलं सहस्राक्षे सर्वदेवनमस्कृते ।
वृत्रनाशे समभवत्तत्ते भवतु मङ्गलम् ॥ ७ ॥

यन्मङ्गलं सुपर्णस्य विनताऽकल्पयत्पुरा ।
अमृतं प्रार्थयानस्य तत्ते भवतु मङ्गलम् ॥ ८ ॥

अमृतोत्पादने दैत्यान् घ्नतो वज्रधरस्य यत् ।
अदितिर्मङ्गलं प्रादात्तत्ते भवतु मङ्गलम् ॥ ९ ॥

त्रीन्विक्रमान् प्रक्रमतो विष्णोरमिततेजसः ।
यदासीन्मङ्गलं राम तत्ते भवतु मङ्गलम् ॥ १० ॥

ऋतवः सागरा द्वीपा वेदा लोका दिशश्च ते ।
मङ्गलानि महाबाहो दिशन्तु तव सर्वदा ॥ ११ ॥

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा
बुध्याऽऽत्मना वा प्रकृतेः स्वभावात् ।
करोमि यद्यत्सकलं परस्मै
नारायणायेति समर्पयामि ॥ १२ ॥



॥ श्रीवैष्णवानां श्रीरामायणपठनोपक्रमेनुसन्धेयाः श्लोकाः ॥

कूजन्तं राम रामेति मधुरं मधुराक्षरम् ।
आरुह्य कविताशाखां वन्दे वाल्मीकिकोकिलम् ॥ १ ॥

वाल्मीकेर्मुनिसिंहस्य कवितावनचारिणः ।
शृण्वन् रामकथानादं को न याति परां गतिम् ॥ २ ॥

यः पिबन् सततं रामचरितामृतसागरम् ।
अतृप्तस्तं मुनिं वन्दे प्राचेतसमकल्मषम् ॥ ३ ॥

गोष्पदीकृतवाराशिं मशकीकृतराक्षसम् ।
रामायणमहामालारत्नं वन्देऽनिलात्मजम् ॥ ४ ॥

अञ्जनानन्दनं वीरं जानकीशोकनाशनम् ।
कपीशमक्षहन्तारं वन्दे लङ्काभयङ्करम् ॥ ५ ॥

मनोजवं मारुततुल्यवेगं जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम् ।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं श्रीरामदूतं शिरसा नमामि ॥

उल्लङ्घ्य सिन्धोः सलिलं सलीलं
यः शोकवह्निं जनकात्मजायाः ।
आदाय तेनैव ददाह लङ्कां
नमामि तं प्राञ्जलिराञ्जनेयम् ॥ ७ ॥

आञ्जनेयमतिपाटलाननं काञ्चनाद्रिकमनीयविग्रहम् ।
पारिजाततरुमूलवासिनं भावयामि पवमाननन्दनम् ॥

यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं तत्र तत्र कृतमस्तकाञ्जलिम् ।
बाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं मारुतिं नमत राक्षसान्तकम् ॥

वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे ।
वेदः प्राचेतसादासीत्साक्षाद्रामायणात्मना ॥ १० ॥

तदुपगतसमाससन्धियोगं सममधुरोपनतार्थवाक्यबद्धम् ।
रघुवरचरितं मुनिप्रणीतं दशशिरसश्च वधं निशामयध्वम् ॥

श्रीराघवं दशरथात्मजमप्रमेयं
सीतापतिं रघुकुलान्वयरत्नदीपम् ।
आजानुबाहुमरविन्ददलायताक्षं
रामं निशाचरविनाशकरं नमामि ॥ १२ ॥

वैदेहीसहितं सुरद्रुमतले हैमे महामण्डपे
मध्येपुष्पकमासने मणिमये वीरासने सुस्थितम् ।
अग्रे वाचयति प्रभञ्जनसुते तत्त्वं मुनिभ्यः परं
व्याख्यान्तं भरतादिभिः परिवृतं रामं भजे श्यामलम् ॥



॥ पारायणसमापनक्रमः ॥

एवमेतत्पुरावृत्तमाख्यानं भद्रमस्तु वः ।
प्रव्याहरत विस्रब्धं बलं विष्णोः प्रवर्धताम् ॥ १ ॥

लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराभवः ।
येषामिन्दीवरश्यामो हृदये सुप्रतिष्ठितः ॥ २ ॥

काले वर्षतु पर्जन्यः पृथिवी सस्यशालिनी ।
देशोऽयं क्षोभरहितो ब्राह्मणास्सन्तु निर्भयाः ॥ ३ ॥

कावेरी वर्धतां काले काले वर्षतु वासवः ।
श्रीरङ्गनाथो जयतु श्रीरङ्गश्रीश्च वर्धताम् ॥ ४ ॥

स्वस्ति प्रजाभ्यः परिपालयन्तां
न्याय्येन मार्गेण महीं महीशाः ।
गोब्राह्मणेभ्यः शुभमस्तु नित्यं
लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु ॥ ५ ॥

मङ्गलं कोसलेन्द्राय महनीयगुणाब्धये ।
चक्रवर्तितनूजाय सार्वभौमाय मङ्गलम् ॥ ६ ॥

वेदवेदान्तवेद्याय मेघश्यामलमूर्तये ।
पुंसां मोहनरूपाय पुण्यश्लोकाय मङ्गलम् ॥ ७ ॥

विश्वामित्रान्तरङ्गाय मिथिलानगरीपतेः ।
भाग्यानां परिपाकाय भव्यरूपाय मङ्गलम् ॥ ८ ॥

पितृभक्ताय सततं भ्रातृभिः सह सीतया ।
नन्दितात्रिलोकाय रामभद्राय मङ्गलम् ॥ ९ ॥

त्यक्तसाकेतवासाय चित्रकूटविहारिणे ।
सेव्याय सर्वयमिनां धीरोदाराय मङ्गलम् ॥ १० ॥

सौमित्रिणा च जानक्या चापबाणासिधारिणे ।
संसेव्याय सदा भक्त्या स्वामिने मम मङ्गलम् ॥ ११ ॥

दण्डकारण्यवासाय खण्डितामरशत्रवे ।
गृध्रराजाय भक्ताय मुक्तिदायास्तु मङ्गलम् ॥ १२ ॥

सादरं शबरीदत्तफलमूलाभिलाषिणे ।
सौलभ्यपरिपूर्णाय सच्चोद्रिक्ताय मङ्गलम् ॥ १३ ॥

हनुमत्समवेताय हरीशाभीष्टदायिने ।
वालिप्रमथनायास्तु महाधीराय मङ्गलम् ॥ १४ ॥

श्रीमते रघुवीराय सेतूल्लङ्घितसिन्धवे ।
जितराक्षसराजाय रणधीराय मङ्गलम् ॥ १५ ॥

आसाद्य नगरीं दिव्यामभिषिक्ताय सीतया ।
राजाधिराजराजाय रामभद्राय मङ्गलम् ॥ १६ ॥

मङ्गलाशासनपरैर्मदाचार्यपुरोगमैः ।
सर्वैश्च पूर्वैराचार्यैः सत्कृतायास्तु मङ्गलम् ॥ १७ ॥

॥ अथ माध्वानां रामायणपठनोपक्रमेऽनुसन्धेयाः श्लोकाः ॥

शुक्लांबरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम् ।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत्सर्वविघ्नोपशान्तये ॥ १ ॥

लक्ष्मीनारायणं वन्दे तद्भक्तप्रवरो हि यः ।
श्रीमदानन्दतीर्थाख्यो गुरुस्तं च नमाम्यहम् ॥ २ ॥

वेदे रामायणे चैव पुराणे भारते तथा ।
आदावन्ते च मध्ये च विष्णुः सर्वत्र गीयते ॥ ३ ॥

सर्वविघ्नप्रशमनं सर्वसिद्धिकरं परम् ।
सर्वजीवप्रणेतारं वन्दे विजयदं हरिम् ॥ ४ ॥

सर्वाभीष्टप्रदं रामं सर्वारिष्टनिवारकम् ।
जानकीजानिमनिशं वन्दे मद्गुरुवन्दितम् ॥ ५ ॥

अभ्रमं भङ्गरहितमजडं विमलं सदा ।
आनन्दतीर्थमतुलं भजे तापत्रयापहम् ॥ ६ ॥

भवति यदनुभावादेडमूकोऽपि वाग्मी
जडमतिरपि जन्तुर्जायते प्राज्ञमौलिः ।
सकलवचनचेतोदेवता भारती सा
मम वचसि विधत्तां सन्निधिं मानसे च ॥ ७ ॥

मिथ्यासिद्धान्तदुर्ध्वान्तविध्वंसनविचक्षणः ।
जयतीर्थाख्यतरणिर्भासतां नो हृदम्बरे ॥ ८ ॥

चित्रैः पदैश्च गम्भीरैर्वाक्यैर्मानैरखण्डितैः ।
गुरुभावं व्यञ्जयन्ती भाति श्रीजयतीर्थवाक् ॥ ९ ॥

कूजन्तं राम रामेति मधुरं मधुराक्षरम् ।
आरुह्य कविताशाखां वन्दे वाल्मीकिकोकिलम् ॥ १० ॥

वाल्मीकेर्मुनिसिंहस्य कवितावनचारिणः ।
शृण्वन् रामकथानादं को न याति परां गतिम् ॥ ११ ॥

यः पिबन् सततं रामचरितामृतसागरम् ।
अतृप्तस्तं मुनिं वन्दे प्राचेतसमकल्मषम् ॥ १२ ॥

गोष्पदीकृतवारार्शि मशकीकृतराक्षसम् ।
रामायणमहामालारत्नं वन्देऽनिलात्मजम् ॥ १३ ॥

अञ्जनानन्दनं वीरं जानकीशोकनाशनम् ।
कपीशमक्षहन्तारं वन्दे लङ्काभयङ्करम् ॥ १४ ॥

मनोजवं मारुततुल्यवेगं जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम् ।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं श्रीरामदूतं शिरसा नमामि ॥

उल्लङ्घ्य सिन्धोः सलिलं सलीलं यः शोकवह्निं जनकात्मजायाः ।
आदाय तेनैव ददाह लङ्कां नमामि तं प्राञ्जलिराञ्जनेयम् ॥

आञ्जनेयमतिपाटलाननं काञ्चनाद्रिकमनीयविग्रहम् ।
पारिजाततरुमूलवासिनं भावयामि पवमाननन्दनम् ॥

यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं तत्र तत्र कृतमस्तकाञ्जलिम् ।
बाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं मारुतिं नमत राक्षसान्तकम् ॥

वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे ।
वेदः प्राचेतसादासीत्साक्षाद्रामायणात्मना ॥ १९ ॥

आपदामपहर्तारं दातारं सर्वसम्पदाम् ।
लोकाभिरामं श्रीरामं भूयो भूयो नमाम्यहम् ॥ २० ॥

तदुपगतसमाससन्धियोगं समधुरोपनतार्थवाक्यबद्धम् ।
रघुवरचरितं मुनिप्रणीतं दशशिरसश्च वधं निशामयध्वम् ॥

वैदेहीसहितं सुरद्रुमतले हैमे महामण्डपे
मध्येपुष्पकमासने मणिमये वीरासने सुस्थितम् ।
अग्रे वाचयति प्रभञ्जनसुते तत्त्वं मुनिभ्यः परं
व्याख्यान्तं भरतादिभिः परिवृतं रामं भजे श्यामलम् ॥

वन्दे वन्द्यं विधिभवमहेन्द्रादिबृन्दारकेन्द्रैः
व्यक्तं व्याप्तं स्वगुणगणतो देशतः कालतश्च ।
धूतावद्यं सुखचितिमयैर्मङ्गलैर्युक्तमङ्गैः
सानाथ्यं नो विदधदधिकं ब्रह्म नारायणाख्यम् ॥

भूषारत्नं भुवनवलयस्याखिलाश्चर्यरत्नं
लीलारत्नं जलधिदुहितुर्देवतामौलिरत्नम् ।
चिन्तारत्नं जगति भजतां सत्सरोजद्युरत्नं
कौसल्याया लसतु मम हृन्मण्डले पुत्ररत्नम् ॥ २४ ॥

महाव्याकरणाम्भोधिमन्थमानसमन्दरम् ।
कवयन्तं रामकीर्त्या हनुमन्तमुपास्महे ॥ २५ ॥

मुख्यप्राणाय भीमाय नमो यस्य भुजान्तरम् ।
नानावीरसुवर्णानां निकषाश्मायितं बभौ ॥ २६ ॥

स्वान्तस्थानन्तशय्याय पूर्णज्ञानमहार्णसे ।
उत्तुङ्गवाक्तरङ्गाय मध्वदुग्धाब्धये नमः ॥ २७ ॥

वाल्मीकेर्गौः पुनीयान्नो महीधरपदाश्रया ।
यद्दुग्धमुपजीवन्ति कवयस्तर्णका इव ॥ २८ ॥

सूक्तिरत्नाकरे रम्ये मूलरामायणार्णवे ।
विहरन्तो महीयांसः प्रीयन्तां गुरवो मम ॥ २९ ॥

हयग्रीव हयग्रीव हयग्रीवेति यो वदेत् ।
तस्य निःसरते वाणी जह्नुकन्याप्रवाहवत् ॥ ३० ॥



स्वस्ति प्रजाभ्यः परिपालयन्तां
न्याय्येन मार्गेण महीं महीशाः ।
गोब्राह्मणेभ्यः शुभमस्तु नित्यं
लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु

काले वर्षतु पर्जन्यः पृथिवी सस्यशालिनी ।
देशोऽयं क्षोभरहितो ब्राह्मणास्सन्तु निर्भयाः ।

लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराभवः ।
येषामिन्दीवरश्यामो हृदये सुप्रतिष्ठितः ।

मङ्गलं कोसलेन्द्राय महनीयगुणाब्धये ।
चक्रवर्तितनूजाय सार्वभौमाय मङ्गलम् ।

इत्यादिश्लोकाः श्रीवैष्णवपद्धतिवदनुसन्धेयाः ॥





श्रीराम-दरबार

THE GITA PRESS, GORAKHPUR.

No. 1016.

ॐ

॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥

श्रीसीतालक्ष्मणभरतशत्रुघ्नहनुमत्समेतश्रीरामचन्द्रस्वामिने नमः ॥

# ॥ श्रीमद्वाल्मीकिरामायणम् ॥

## ॥ उत्तरकाण्डम् ॥



[ पूरा कुशलवाभ्यां श्रीरामसन्निधावश्वमेधयज्ञवाटे द्वात्रिंशति दिनेषु गीते श्रीमद्रामायणे षड्विंशतितमेऽह्नि उत्तरकाण्डे प्रथमसर्गमारभ्य विंशसर्गपर्यन्तं (20725—21491 श्लोकाः) गीतम्। तस्मिन् दिने गीताः श्लोकाः 767]

### प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

श्रीरामप्रश्नः ॥

प्राप्तराज्यस्य रामस्य राक्षसानां वधे कृते ।
आजग्मुर्ऋषयः सर्वे राघवं प्रतिनन्दितुम् ॥ १ ॥
कौशिकोऽथ यवक्रीतो गार्ग्यो गालव एव च ।
कण्वो मेधातिथेः पुत्रः पूर्वस्यां दिशि ये श्रिताः ॥ २ ॥
स्वस्त्यात्रेयोऽथ भगवान्नमुचिः प्रमुचिस्तथा ।
अगस्त्योऽत्रिश्च भगवान् सुमुखो विमुखस्तथा ॥
आजग्मुस्ते सहागस्त्या ये स्थिता दक्षिणां दिशम् ॥ ३ ॥

नृषद्गुः कवषो धौम्यो रौद्रेयश्च महानृषिः ।
तेऽप्याजग्मुः सशिष्या वै ये श्रिताः पश्चिमां दिशम् ॥ ४ ॥

वसिष्ठः कश्यपोऽथात्रिर्विश्वामित्रः सगौतमः ।
जमदग्निर्भरद्वाजस्तेऽपि सप्तर्षयस्तथा ॥
उदीच्यां दिशि ये विप्रा नित्यमेव निवासिनः ॥ ५ ॥

सम्प्राप्य ते महात्मानो राघवस्य निवेशनम् ।
विष्ठिताः प्रतिहारार्थं हुताशनसमप्रभाः ॥ ६ ॥

द्वाःस्थं प्रोवाच धर्मात्मा ह्यगस्त्यो मुनिसत्तमः ।
निवेद्यतां दाशरथेर्ऋषयो वयमागताः ॥ ७ ॥

प्रतीहारस्ततस्तूर्णमगस्त्यवचनोदितः ।
समीपं राघवस्यैव प्रविवेश महात्मनः ॥ ८ ॥

स रामं दृश्य सहसा पूर्णचन्द्रसमद्युतिम् ।
अगस्त्यं कथयामास सम्प्राप्तमृषिभिः सह ॥ ९ ॥

श्रुत्वा प्राप्तान् मुनींस्तांस्तु प्रत्युत्थाय कृताञ्जलिः ।
रामोऽभिवाद्य प्रयत आसनान्यादिदेश ह ॥ १० ॥

तेषु काञ्चनचित्रेषु महत्सु च वरेषु च ।
यथार्हमुपविष्टास्ते आसनेष्वृषिपुङ्गवाः ॥ ११ ॥

रामेण कुशलं पृष्टाः सशिष्याः सपुरोगमाः ।
महर्षयो वेदविदो रामं वचनमब्रुवन् ॥ १२ ॥

कुशलं नो महाबाहो सर्वत्र रघुनन्दन ।
त्वां तु दिष्ट्या कुशलिनं पश्यामो हतशात्रवम् ॥ १३ ॥

न हि भारः स ते राम रावणः पुत्रपौत्रवान् ॥ १४ ॥

सधनुस्त्वं हि लोकांस्त्रीन् विजयेथा न संशयः ।
दिष्ट्या त्वया हतो राम रावणो राक्षसेश्वरः ॥ १५ ॥

दिष्ट्या विजयिनं त्वाऽद्य पश्यामः सह सीतया ॥ १६ ॥

दिष्ट्या प्रहस्तो विकटो विरूपाक्षो महोदरः ।
अकम्पनश्च दुर्धर्षो निहतास्ते निशाचराः ॥ १७ ॥

यस्य प्रमाणाद्विपुलं प्रमाणं नेह विद्यते ।
दिष्ट्या ते समरे राम कुम्भकर्णो निपातितः ॥ १८ ॥

त्रिशिराश्चातिकायश्च देवान्तकनरान्तकौ ।
दिष्ट्या ते निहता राम महावीर्या निशाचराः ॥ १९ ॥

कुम्भश्चैव निकुम्भश्च राक्षसौ भीमदर्शनौ ।
दिष्ट्या तौ निहतौ राम कुम्भकर्णसुतौ मृधे ॥ २० ॥

युद्धोन्मत्तश्च मत्तश्च कालान्तकयमोपमौ ।
यज्ञकोपश्च धूम्राक्षो जम्बुमाली महोदरः ॥ २१ ॥

कुर्वन्तः कदनं घोरमेते शस्त्रास्त्रपारगाः ।
अन्तकप्रतिमैर्बाणैर्दिष्ट्या विनिहतास्त्वया ॥ २२ ॥

दिष्ट्या त्वं राक्षसेन्द्रेण द्वन्द्वयुद्धमुपागतः ।
देवतानामवध्येन विजयं प्राप्तवानसि ॥ २३ ॥

सह्यमेतन्महाबाहो रावणस्य निबर्हणम् ।
असह्यमेतत्संप्राप्तं रावणेयनिबर्हणम् ॥ २४ ॥

सङ्क्षये तस्य न किञ्चित्तु रावणस्य पराभवः ।
द्वन्द्वयुद्धमनुप्राप्तो दिष्ट्या ते रावणिर्हतः ॥ २५ ॥

दिष्ट्या तस्य महाबाहो कालस्येवाभिधावतः ।
मुक्तः सुरारिपोर्वीर प्राप्तश्च विजयस्त्वया ॥ २६ ॥

सोऽवध्यः सर्वभूतानां महामायाधरो युधि ।
विस्मयस्त्वेष चास्माकं तच्छ्रुत्वेन्द्रजितं हतम् ॥ २७ ॥

एते चान्ये च बहवो राक्षसाः कामरूपिणः ।
दिष्ट्या त्वया हता वीरा रघूणां कुलवर्धन ॥ २८ ॥

दत्त्वा पुण्यामिमां वीर सौम्यामभयदक्षिणाम् ।
दिष्ट्या वर्धसि काकुत्स्थ जयेनामित्रकर्शन ॥ २९ ॥

श्रुत्वा तु तेषां वचनमृषीणां भावितात्मनाम् ।
विस्मयं परमं गत्वा रामः प्राञ्जलिरब्रवीत् ॥ ३० ॥

भगवन्तः कुम्भकर्णं रावणं च निशाचरम् ।
अतिक्रम्य महावीर्यौ किं प्रशंसथ रावणिम् ॥ ३१ ॥

महोदरं प्रहस्तं च विरूपाक्षं च राक्षसम् ।
मत्तोन्मत्तौ च दुर्धर्षौ देवान्तकनरान्तकौ ॥ ३२ ॥

अतिकायं त्रिशिरसं धूम्राक्षं च निशाचरम् ।
अतिक्रम्य महावीर्यान् किं प्रशंसथ रावणिम् ॥ ३३ ॥

कीदृशो वै प्रभावोऽस्य किं बलं कः पराक्रमः ।
केन वा कारणेनैष रावणादतिरिच्यते ॥ ३४ ॥

शक्रोऽपि विजितस्तेन कथं लब्धवरश्च सः ।
कथं च बलवान् पुत्रो न पिता तस्य रावणः ॥ ३५ ॥

शक्यं यदि मया श्रोतुं न खल्वाज्ञापयामि वः ।
यदि गुह्यं न चेद्वक्तुं श्रोतुमिच्छामि कथ्यताम् ॥ ३६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे प्रथमः सर्गः

आदितः श्लोकाः 20760 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 36



## द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

### पौलस्त्यजन्म ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राघवस्य महात्मनः ।
कुम्भयोनिर्महातेजा राममेतदुवाच ह ॥ १ ॥

शृणु राम यथावृत्तं तस्य तेजो बलं महत् ।
जघान शत्रून् येनासौ न च वध्यः स शत्रुभिः ॥ २ ॥

जयं ते रावणस्याहं कुलं जन्म च राघव ।
वरप्रदानं च तथा तस्मै दत्तं ब्रवीमि ते ॥ ३ ॥

पुरा कृतयुगे राम प्रजापतिसुतः प्रभुः ।
पुलस्त्यो नाम ब्रह्मर्षिः साक्षादिव पितामहः ॥ ४ ॥

नानुकीर्त्या गुणास्तस्य धर्मतः शीलतस्तथा ।
प्रजापतेः पुत्र इति वक्तुं शक्यं हि नामतः ॥ ५ ॥

स तु धर्मप्रसङ्गेन मेरोः पार्श्वं महागिरेः ।
तृणबिन्दाश्रमं गत्वा न्यवसन्मुनिपुङ्गवः ॥ ६ ॥

तपस्तेपे स धर्मात्मा स्वाध्यायनियतेन्द्रियः ॥ ७ ॥

देवपन्नगकन्याश्च राजर्षितनयाश्च याः ।
क्रीडन्त्योऽप्सरसश्चैव तं देशमुपपेदिरे ॥ ८ ॥

सर्वर्तुषूपभोग्यत्वाद्रम्यत्वात् काननस्य च ।
नित्यशस्तास्तु तं देशं गत्वा क्रीडन्ति कन्यकाः ॥ ९ ॥

पायन्त्यो वादयन्त्यश्च लासयन्त्यस्तथैव च ।
मुनेस्तपस्विनस्तस्य विघ्नं चक्रुरनिन्दिताः ॥ १० ॥

अथ क्रुद्धो महातेजा व्याजहार महामुनिः ।
या मे दर्शनमागच्छेत् सा गर्भं धारयिष्यति ॥ ११ ॥

तास्तु सर्वाः प्रतिश्रुत्य तस्य वाक्यं महात्मनः ।
ब्रह्मशापभयाद्भीतास्तं देशं नोपचक्रमुः ॥ १२ ॥

तृणबिन्दोस्तु राजर्षेस्तनया न शृणोति तत् ॥ १३ ॥

गत्वाऽऽश्रमपदं तत्र विचचार सुनिर्भया ॥ १४ ॥

तस्मिन् काले महातेजाः प्राजापत्यो महानृषिः ।
स्वाध्यायमकरोत्तत्र तपसा भावितः स्वयम् ॥ १५ ॥

सा तु वेदश्रुतिं श्रुत्वा दृष्ट्वा वै तपसो निधिम् ।
अभवत्पाण्डुदेहा सा सुव्यञ्जितशरीरजा ॥ १६ ॥

बभूव च समुद्विग्ना दृष्ट्वा तद्दोषमात्मनः ।
इदं मे किं त्विति ज्ञात्वा पितुर्गत्वाऽऽश्रमे स्थिता ॥ १७ ॥

तां तु दृष्ट्वा तथाभूतां तृणबिन्दुरथाब्रवीत् ।
किं त्वमेतत्त्वसदृशं धारयस्यात्मनो वपुः ॥ १८ ॥

सा तु कृत्वाऽञ्जलिं दीना कन्योवाच तपोधनम् ।
न जाने कारणं तात येन मे रूपमीदृशम् ॥ १९ ॥

किं तु पूर्वं गताऽभ्येका महर्षेर्भावितात्मनः ।
पुलस्त्यस्याश्रमं दिव्यमन्वेष्टुं स्वसखीजनम् ॥ २० ॥

न च पश्याम्यहं तत्र काञ्चिदभ्यागतां सखीम् ।
रूपस्य तु विपर्यासं दृष्ट्वा त्रासादिहागता ॥ २१ ॥

तृणबिन्दुस्तु राजर्षिस्तपसा द्योतितप्रभः ।
ध्यानं विवेश तच्चापि ह्यपश्यद्दृषिकर्मजम् ॥ २२ ॥

स तु विज्ञाय तं शापं महर्षेर्भावितात्मनः ।
गृहीत्वा तनयां गत्वा पुलस्त्यमिदमब्रवीत् ॥ २३ ॥

भगवंस्तनयां मे त्वं गुणैः स्वैरेव भूषिताम् ।
भिक्षां प्रतिगृहाणेमां महर्षे स्वयमुद्यताम् ॥ २४ ॥

तपश्चरणयुक्तस्य श्रम्यमाणेन्द्रियस्य ते ।
शुश्रूषणपरा नित्यं भविष्यति न संशयः ॥ २५ ॥

तं ब्रुवाणं तु तद्वाक्यं राजर्षिं धार्मिकं तदा ।
जिघृक्षुरब्रवीत् कन्यां बाढमित्येव स द्विजः ॥ २६ ॥

दत्वा तु तनयां राजा स्वमाश्रमपदं गतः ।
साऽपि तत्रावसत् कन्या तोषयन्ती पतिं गुणैः ॥ २७ ॥

तस्यास्तु शीलवृत्ताभ्यां तुतोष मुनिपुङ्गवः ।
प्रीतः स तु महातेजा वाक्यमेतदुवाच ह ॥ २८ ॥

परितुष्टोऽस्मि सुश्रोणि गुणानां सम्पदा भृशम् ।
तस्मादेवि ददाम्यद्य पुत्रमात्मसमं तव ॥
उभयोर्वंशकर्तारं पौलस्त्य इति विश्रुतम् ॥ २९ ॥

यस्मात्तु विश्रुतो वेदस्त्वयैषोऽध्ययतो मम ।
तस्मात् स विश्रवा नाम भविष्यति न संशयः ॥ ३० ॥

एवमुक्ता तु सा देवी प्रहृष्टेनान्तरात्मना ।
अचिरेणैव कालेनासूत विश्रवसं सुतम् ॥
त्रिषु लोकेषु विख्यातं यशोधर्मसमन्वितम् ॥ ३१ ॥

श्रुतिमान् समदर्शी च व्रताचाररतस्तथा ।
पितेव तपसा युक्तो ह्यभवद्विश्रवा मुनिः ॥ ३२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥





## तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

### वैश्रवणोत्पत्तिः लङ्कादिप्राप्तिश्च ॥

अथ पुत्रः पुलस्त्यस्य विश्रवा मुनिपुङ्गवः ।
अचिरेणैव कालेन पितेव तपसि स्थितः ॥ १ ॥

सत्यवाञ्छीलवाञ्छान्तः स्वाध्यायनिरतः शुचिः ।
सर्वभोगेष्वसंसक्तो नित्यं धर्मपरायणः ॥ २ ॥

ज्ञात्वा तस्य तु तद्वृत्तं भरद्वाजो महामुनिः ।
ददौ विश्रवसे भार्यां स्वसुतां देववर्णिनीम् ॥ ३ ॥

प्रतिगृह्य तु धर्मेण भरद्वाजसुतां तदा ।
मुदा परमया युक्तो विश्रवा मुनिपुङ्गवः ॥ ४ ॥

स तस्यां वीर्यसम्पन्नमपत्यं परमाद्भुतम् ।
जनयामास धर्मज्ञः सर्वैर्ब्रह्मगुणैर्युतम् ॥ ५ ॥

तस्मिञ्जाते तु संहृष्टः सम्बभूव पितामहः ।
प्रजान्वेषिकया बुद्ध्या श्रेयो ह्यस्य विचिन्तयन् ॥ ६ ॥

दृष्ट्वा श्रेयस्करीं बुद्धिं धनाध्यक्षो भविष्यति ।
नाम तस्याकरोत् प्रीतः सार्धं देवर्षिभिस्तदा ॥ ७ ॥

यस्माद्विश्रवसोऽपत्यं सादृश्याद्विश्रवा इव ।
तस्माद्वैश्रवणो नाम भविष्यत्येष विश्रुतः ॥ ८ ॥

स तु वैश्रवणस्तत्र तपोवनगतस्तदा ।
अवर्धताहुतिहुतो महातेजा यथाऽनलः ॥ ९ ॥

तस्याश्रमपदस्थस्य बुद्धिर्जज्ञे महात्मनः ।
चरिष्ये परमं धर्मं धर्मो हि परमा गतिः ॥ १० ॥

स तु वर्षसहस्राणि तपस्तप्त्वा महावने ।
यन्त्रितो नियमैरुग्रैश्चकार सुमहत्तपः ॥ ११ ॥

पूर्णे वर्षसहस्रान्ते तं तं विधिमकल्पयत् ।
जलाशी मारुताहारो निराहारस्तथैव च ॥
एवं वर्षसहस्राणि जग्मुस्तान्येकवर्षवत् ॥ १२ ॥

अथ प्रीतो महातेजाः सेन्द्रैः सुरगणैः सह ।
गत्वा तस्याश्रमपदं ब्रह्मेदं वाक्यमब्रवीत् ॥ १३ ॥

परितुष्टोऽस्मि ते वत्स कर्मणाऽनेन सुव्रत ।
वरं वृणीष्व भद्रं ते वरार्हस्त्वं महामते ॥ १४ ॥

अथाब्रवीद्वैश्रवणः पितामहमुपस्थितम् ।
भगवंल्लोकपालत्वमिच्छेयं वित्तरक्षणम् ॥ १५ ॥

अथाब्रवीद्वैश्रवणं परितुष्टेन चेतसा ।
ब्रह्मा सुरगणैः सार्धं बाढमित्येव हृष्टवत् ॥ १६ ॥

अहं वै लोकपालानां चतुर्थं स्रष्टुमुद्यतः ॥ १७ ॥

यमेन्द्रवरुणानां च पदं यत्तव चेप्सितम् ।
तद्गच्छ त्वं हि धर्मज्ञ निधीशत्वमवाप्नुहि ॥
शक्राम्बुपयमानां च चतुर्थस्त्वं भविष्यसि ॥ १८ ॥

एतच्च पुष्पकं नाम विमानं सूर्यसन्निभम् ।
प्रतिगृह्णीष्व यानार्थं त्रिदशैः समतां व्रज ॥ १९ ॥

स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामः सर्व एव यथागतम् ।
कृतकृत्या वयं तात दत्त्वा तव वरद्वयम् ॥ २० ॥

इत्युक्त्वा स गतो ब्रह्मा स्वस्थानं त्रिदशैः सह ॥ २१ ॥

गतेषु ब्रह्मपूर्वेषु देवेष्वथ नभःस्थलम् ।
धनेशः पितरं प्राह प्राञ्जलिः प्रयतात्मवान् ॥ २२ ॥

निवासनं न मे देवो विदधे स प्रजापतिः ।
भगवन् लब्धवानस्मि वरमिष्टं पितामहात् ॥ २३ ॥

तं पश्य भगवन् कञ्चिन्निवासं साधु मे प्रभो ।
न च पीडा भवेद्यत्र प्राणिनो यस्य कस्यचित् ॥ २४ ॥

एवमुक्तस्तु पुत्रेण विश्रवा मुनिपुङ्गवः ।
वचनं प्राह धर्मज्ञः श्रूयतामिति सत्तमः ॥ २५ ॥

दक्षिणस्योदधेस्तीरे त्रिकूटो नाम पर्वतः ।
तस्याग्रे तु विशाला सा महेन्द्रस्य पुरी यथा ॥
लङ्का नाम पुरी रम्या निर्मिता विश्वकर्मणा ॥ २६ ॥

राक्षसानां निवासार्थं यथेन्द्रस्यामरावती ।
हेमप्राकारपरिघा यन्त्रशस्त्रसमावृता ॥
रमणीया पुरी सा हि रुक्मवैडूर्यतोरणा ॥ २७ ॥

राक्षसैः सा परित्यक्ता पुरा विष्णुभयार्दितैः ।
शून्या रक्षोगणैः सर्वैः रसातलतलं गतैः ॥ २८ ॥

शून्या सम्प्रति लङ्का सा प्रभुस्तस्या न विद्यते ।
स त्वं तत्र निवासाय गच्छ पुत्र यथासुखम् ॥ २९ ॥

निर्दोषस्तत्र ते वासो न बाधा तत्र कस्यचित् ॥ ३० ॥

एवमुक्तस्तु धर्मात्मा पित्रा धर्म्यमिदं वचः ।
निवेशयामास तदा लङ्कां पर्वतमूर्धनि ॥
नैर्ऋतानां सहस्रैस्तु हृष्टैः प्रमुदितैः सह ॥ ३१ ॥

अचिरेणैव कालेन संपूर्णा तस्य शासनात् ॥ ३२ ॥

स तु तत्रावसत् प्रीतो धर्मात्मा नैर्ऋतर्षभः ।
समुद्रपरिघायां तु लङ्कायां विश्रवात्मजः ॥ ३३ ॥

काले काले तु धर्मात्मा पुष्पकेण धनेश्वरः ।
अभ्यागच्छत्सुसंहृष्टः पितरं मातरं च हि ॥ ३४ ॥

स देवगन्धर्वगणैरभिष्टुतस्तथैव सिद्धैः सह चारणैरपि ।
गभस्तिभिः सूर्य इवौजसा वृतः पितुः समीपं प्रययौ श्रिया वृत ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे तृतीयः सर्गः ॥

## चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

### सुकेशराक्षसोत्पत्तिः ॥

श्रुत्वाऽगस्त्येरितं वाक्यं रामो विस्मयमागतः ।
कथमासीत्तु लङ्कायां रक्षसामिति सम्भवः ॥ १ ॥

ततः शिरः कम्पयित्वा त्रेताग्निसमविग्रहम् ।
तमगस्त्यं मुहुर्दृष्ट्वा स्मयमानोऽभ्यभाषत ॥ २ ॥

भगवन्पूर्वमप्येषा लङ्काऽऽसीत्पिशिताशिनाम् ।
श्रुत्वेदं भगवद्वाक्यं जातो मे विस्मयः परः ॥ ३ ॥

पुलस्त्यवंशादुद्भूता राक्षसा इति नः श्रुतम् ।
इदानीमन्यतश्चापि संभवः कीर्तितस्त्वया ॥ ४ ॥

रावणात्कुम्भकर्णाच्च प्रहस्ताद्विकटादपि ।
रावणस्य च पुत्रेभ्यः किं नु ते बलवत्तराः ॥ ५ ॥

क एषां पूर्वको ब्रह्मन् किं नाम च बलोत्कटः ।
अपराधं च कं प्राप्य विष्णुना द्राविताः कथम् ॥ ६ ॥

एतद्विस्तरतः सर्वं कथयस्व ममानघ ।
कौतूहलमिदं मह्यं नुद भानुर्यथा तमः ॥ ७ ॥

राघवस्य वचः श्रुत्वा संस्कारालंकृतं शुभम् ।
ईषद्विस्मयमानस्तमगस्त्यः प्राह राघवम् ॥ ८ ॥

प्रजापतिः पुरा सृष्ट्वा ह्यपः सलिलसंभवः ।
तासां गोपायने सत्त्वानसृजत्पद्मसंभवः ॥ ९ ॥

ते सत्त्वाः सत्त्वकर्तारं विनीतवदुपस्थिताः ।
किं कुर्म इति भाषन्तः क्षुत्पिपासाभयार्दिताः ॥ १० ॥

प्रजापतिस्तु तान्याह सत्त्वानि प्रहसन्निव ।
आभाष्य वाचा यत्नेन रक्षध्वमिति मानदः ॥ ११ ॥

रक्षामेति च तत्रान्ये जक्षाम इति चापरे ।
भुक्षिताभुक्षितैरुक्तस्ततस्तानाह भूतकृत् ॥ १२ ॥

रक्षामेति च यैरुक्तं राक्षसास्ते भवन्तु वः ।
जक्षाम इति यैरुक्तं यक्षा एव भवन्तु वः ॥ १३ ॥

तत्र हेतिः प्रहेतिश्च भ्रातरौ राक्षसाधिपौ ।
मधुकैटभसङ्काशौ बभूवतुररिन्दमौ ॥ १४ ॥

प्रहेतिर्धार्मिकस्तत्र तपोवनगतस्तदा ।
हेतिर्दारक्रियार्थे तु परं यत्नमथाकरोत् ॥ १५ ॥

स कालभगिनीं कन्यां भयां नाम भयावहाम् ।
उदावहदमेयात्मा स्वयमेव महामतिः ॥ १६ ॥

स तस्यां जनयामास हेती राक्षसपुङ्गवः ।
पुत्रं पुत्रवतां श्रेष्ठो विद्युत्केश इति श्रुतम् ॥ १७ ॥

विद्युत्केशो हेतिपुत्रः स दीप्तार्कसमप्रभः ।
व्यवर्धत महातेजास्तोयमध्य इवाम्बुदः ॥ १८ ॥

स यदा यौवनं भद्रमनुप्राप्तो निशाचरः ।
ततो दारक्रियां तस्य कर्तुं व्यवसितः पिता ॥ १९ ॥

सन्ध्यायास्तनयां सोऽथ सन्ध्यातुल्यां प्रभावतः ।
वरयामास पुत्रार्थं हेती राक्षसपुङ्गवः ॥ २० ॥

अवश्यमेव दातव्या परस्मै सेति सन्ध्यया ।
चिन्तयित्वा सुता दत्ता विद्युत्केशाय राघव ॥ २१ ॥

सन्ध्यायास्तनयां लब्ध्वा विद्युत्केशो निशाचरः ।
रमते स्म तया सार्धं पौलोम्या मघवानिव ॥ २२ ॥

केनचित्त्वथ कालेन राम सालकटङ्कटा ।
विद्युत्केशाद्गर्भमाप घनराजिरिवार्णवात् ॥ २३ ॥

ततः सा राक्षसी गर्भं घनगर्भसमप्रभम् ।
प्रसूता मन्दरं गत्वा गङ्गा गर्भमिवाग्निजम् ॥ २४ ॥

तमुत्सृज्य तु सा गर्भं विद्युत्केशरतार्थिनी ।
रेमे तु सार्धं पतिना विस्मृत्य सुतमात्मजम् ॥ २५ ॥

उत्सृष्टस्तु तदा गर्भो घनशब्दसमस्वनः ।
निधायास्ये स्वयं मुष्टिं रुरोद शनकैस्तदा ॥ २६ ॥

ततो वृषभमास्थाय पार्वत्या सहितः शिवः ।
वायुमार्गेण गच्छन्वै शुश्राव रुदितस्वनम् ॥ २७ ॥

अपश्यदुमया सार्धं रुदन्तं राक्षसात्मजम् ।
कारुण्यभावात्पार्वत्या भवस्त्रिपुरसूदनः ॥ २८ ॥

तं राक्षसात्मजं चक्रे मातुरेव वयःसमम् ।
अमरं चैव तं कृत्वा महादेवोऽक्षरोऽव्ययः ॥ २९ ॥

पुरमाकाशगं प्रादात्पार्वत्याः प्रियकाम्यया ।
उमयाऽपि वरो दत्तो राक्षसानां नृपात्मज ॥ ३० ॥

सद्योपलब्धिर्गर्भस्य प्रसूति सद्य एव च ।
सद्य एव वयःप्राप्तिर्मातुरेव वयः समम् ॥ ३१ ॥

ततः सुकेशो वरदानगर्वितः श्रियं प्रभोः प्राप्य हरस्य पार्श्वतः ।
चचार सर्वत्र महान्महामतिः खगं पुरं प्राप्य पुरन्दरो यथा ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 20859 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 135



## पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

माल्यवदाद्युत्पत्तिः ॥

सुकेशं धार्मिकं दृष्ट्वा वरलब्धं च राक्षसम् ।
ग्रामणीर्नाम गन्धर्वो विश्वावसुसमप्रभः ॥ १ ॥

तस्य देववती नाम द्वितीया श्रीरिवात्मजा ।
त्रिषु लोकेषु विख्याता रूपयौवनशालिनी ॥ २ ॥

तां सुकेशाय धर्मेण ददौ रक्षःश्रियं यथा ॥ ३ ॥

वरदानकृतैश्वर्यं सा तं प्राप्य पतिं प्रियम् ।
आसीद्देववती तुष्टा धनं प्राप्येव दुर्गतः ॥ ४ ॥

स तया सह संयुक्तो रराज रजनीचरः ।
अञ्जनादभिनिष्क्रान्तः करेणेव महागजः ॥ ५ ॥

देववत्यां सुकेशस्तु जनयामास राघव ।
त्रींस्त्रिनेत्रसमान्पुत्रान्राक्षसान्राक्षसाधिपः ॥
माल्यवन्तं सुमालिं च मालिं च बलिनां वरम् ॥ ६ ॥

त्रयः सुकेशस्य सुतास्त्रेताग्निसमतेजसः ।
विवृद्धिमगमंस्तत्र व्याधयोपेक्षिता इव ॥ ७ ॥

वरप्राप्तिं पितुस्ते तु ज्ञात्वेश्वरतपोबलात् ।
तपस्तप्तुं गता मेरुं भ्रातरः कृतनिश्चयाः ॥ ८ ॥

प्रगृह्य नियमान्घोरान्राक्षसा नृपसत्तम ।
विचेरुस्ते तपो घोरं सर्वभूतभयावहम् ॥ ९ ॥

सत्यार्जवशमोपेतैस्तपोभिरतिदुष्करैः ।
सन्तापयन्तस्त्रींल्लोकान्सदेवासुरमानुषान् ॥ १० ॥

ततो विभुश्चतुर्वक्त्रो विमानवरमास्थितः ।
सुकेशपुत्रानामन्त्र्य वरदोऽस्मीत्यभाषत ॥ ११ ॥

ब्रह्माणं वरदं ज्ञात्वा सेन्द्रैर्देवगणैर्वृतम् ।
ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे वेपमाना इव द्रुमाः ॥ १२ ॥

तपसाऽऽराधितो देव यदि नो दिशसे वरम् ।
अजेयाः शत्रुहन्तारस्तथैव चिरजीविनः ॥
प्रभविष्णवो भवामेति परस्परमनुव्रताः ॥ १३ ॥

एवं भविष्यतीत्युक्त्वा सुकेशतनयान्विभुः ।
स ययौ ब्रह्मलोकाय ब्रह्मा ब्राह्मणवत्सलः ॥ १४ ॥
वरं लब्ध्वा तु ते सर्वे राम रात्रिञ्चरास्तदा ।
सुरासुरान्प्रबाधन्ते वरदानसुनिर्भयाः ॥ १५ ॥
तैर्बध्यमानास्त्रिदशाः सर्षिसङ्घाः सचारणाः ।
त्रातारं नाधिगच्छन्ति निरयस्था यथा नराः ॥ १६ ॥
अथ ते विश्वकर्माणं शिल्पिनां वरमव्ययम् ।
ऊचुः समेत्य संहृष्टा राक्षसा रघुसत्तम ॥ १७ ॥
गृहकर्ता भवानेव देवानां हृदयेप्सितम् ॥ १८ ॥
अस्माकमपि तावत्त्वं गृहं कुरु महामते ।
हिमवन्तमपाश्रित्य मेरुं मन्दरमेव वा ॥
महेश्वरगृहप्रख्यं गृहं नः क्रियतां महत् ॥ १९ ॥
विश्वकर्मा ततस्तेषां राक्षसानां महाभुजः ।
निवासं कथयामास शक्रस्येवामरावतीम् ॥ २० ॥
दक्षिणस्योदधेस्तीरे त्रिकूटो नाम पर्वतः ।
सुवेल इति चाप्यन्यो द्वितीयस्तत्र सत्तमाः ॥ २१ ॥
शिखरे तस्य शैलस्य मध्यमेऽम्बुदसन्निभे ।
शकुनैरपि दुष्प्रापे टङ्कच्छिन्नचतुर्दिशि ॥ २२ ॥
त्रिंशद्योजनविस्तीर्णा शतयोजनमायता ।
स्वर्णप्राकारसंवीता हेमतोरणसंवृता ॥
मया लङ्केति नगरी शक्राज्ञप्तेन निर्मिता ॥ २३ ॥

तस्यां वसत दुर्धर्षा यूयं राक्षसपुङ्गवाः ॥ २४ ॥

सेन्द्रा दिवौकस इव समासाद्यामरावतीम् ।
लङ्कादुर्गं समासाद्य राक्षसैर्बहुभिर्वृताः ॥
भविष्यथ दुराधर्षाः शत्रूणां शत्रुसूदनाः ॥ २५ ॥

विश्वकर्मवचः श्रुत्वा ततस्ते राक्षसोत्तमाः ।
सहस्रानुचरा भूत्वा गत्वा तामवसन्पुरीम् ॥ २६ ॥

दृढप्राकारपरिखां हैमैर्गृहशतैर्युताम् ।
लङ्कामवाप्य ते हृष्टा न्यवसन्रजनीचराः ॥ २७ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु यथाकामं च राघव ।
नर्मदा नाम गन्धर्वी बभूव रघुनन्दन ॥ २८ ॥

तस्याः कन्यात्रयं ह्यासीद्धीश्रीकीर्तिसमद्युति ॥ २९ ॥

ज्येष्ठक्रमेण सा तेषां राक्षसानामराक्षसी ।
कन्यास्ताः प्रददौ हृष्टा पूर्णचन्द्रनिभाननाः ॥
त्रयाणां राक्षसेन्द्राणां तिस्रो गन्धर्वकन्यकाः ॥ ३० ॥

दत्ता मात्रा महाभागा नक्षत्रे भगदैवते ॥ ३१ ॥

कृतदारास्तु ते राम सुकेशतनयास्तदा ।
चिक्रीडुः सह भार्याभिरप्सरोभिरिवामराः ॥ ३२ ॥

ततो माल्यवतो भार्या सुन्दरी नाम सुन्दरी ॥ ३३ ॥

स तस्यां जनयामास यदपत्यं निबोध तत् ॥ ३४ ॥

वज्रमुष्टिर्विरूपाक्षो दुर्मुखश्चैव राक्षसः ।
सुप्तघ्नो यज्ञकोपश्च मत्तोन्मत्तौ तथैव च ॥
अनला चाभवत्कन्या सुन्दर्यां राम सुन्दरी ॥ ३५ ॥

सुमालिनोऽपि भार्याऽऽसीत्पूर्णचन्द्रनिभानना ।
नाम्ना केतुमती नाम प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ॥ ३६ ॥

सुमाली जनयामास यदपत्यं निशाचरः ।
केतुमत्यां महाराज तन्निबोधानुपूर्वशः ॥ ३७ ॥

प्रहस्तोऽकम्पनश्चैव विकटः कालकार्मुकः ।
धूम्राक्षश्चैव दण्डश्च सुपार्श्वश्च महाबलः ॥ ३८ ॥

संह्रादिः प्रघसश्चैव भासकर्णश्च राक्षसः ।
राका पुष्पोत्कटा चैव कैकसी च शुचिस्मिता ॥ ३९ ॥

कुम्भीनसी च इत्येते सुमालेः प्रसवाः स्मृताः ॥ ४० ॥

मालेस्तु वसुधा नाम गन्धर्वी रूपशालिनी ।
भार्याऽऽसीत्पद्मपत्राक्षी स्वक्षी यक्षीवरोपमा ॥ ४१ ॥

सुमालेरजस्तस्यां जनयामास यत्प्रभो ।
अपत्यं कथ्यमानं तु मया त्वं शृणु राघव ॥ ४२ ॥

अनिलश्चानलश्चैव हरः सम्पातिरेव च ।
एते विभीषणामात्या मालेयास्तु निशाचराः ॥ ४३ ॥

ततस्तु ते राक्षसपुङ्गवास्त्रयो निशाचरैः पुत्रशतैश्च संवृताः ।
सुरान्सहेन्द्रानृषिनागयक्षान्बबाधिरे तान्बलवीर्यदर्पिताः ॥

जगद्भ्रमन्तोऽनिलवद्दुरासदा रणेषु मृत्युप्रतिमाः समाहिताः ।
वरप्रदानादतिगर्विता भृशं क्रतुक्रियाणां प्रशमङ्कराः सदा ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे पञ्चमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 20904 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 180



## षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

विष्णुमाल्यवदादियुद्धम् ॥

तैर्बध्यमाना देवाश्च ऋषयश्च तपोधनाः ।
भयार्ताः शरणं जग्मुर्देवदेवं महेश्वरम् ॥ १ ॥

ते समेत्य तु कामारिं त्रिपुरारिं त्रिलोचनम् ।
ऊचुः प्राञ्जलयो देवा भयगद्गदभाषिणः ॥ २ ॥

सुकेशपुत्रैर्भगवन्पितामहवरोद्धतैः ।
प्रजाध्यक्ष प्रजाः सर्वा बाध्यन्ते रिपुबाधनैः ॥ ३ ॥

शरण्यान्यशरण्यानि ह्याश्रमाणि कृतानि नः ।
स्वर्गाच्च देवान्प्रच्याव्य स्वर्गे क्रीडन्ति देववत् ॥ ४ ॥

अहं विष्णुरहं रुद्रो ब्रह्माहं देवराडहम् ।
अहं यमश्च वरुणश्चन्द्रोऽहं रविरप्यहम् ॥ ५ ॥

इति ते राक्षसा देवान् वरदानेन दर्पिताः ।
बाधन्ते समरोद्धर्षा ये च तेषां पुरस्सराः ॥ ६ ॥

तन्नो देव भयार्तानामभयं दातुमर्हसि ।
अशिवं वपुरास्थाय जहि वै देवकण्टकान् ॥ ७ ॥

इत्युक्तस्तु सुरैः सर्वैः कपर्दी नीललोहितः ।
सुकेशं प्रति सापेक्षः प्राह देवगणान्प्रभुः ॥ ८ ॥

अहं तान्न हनिष्यामि मयाऽवध्या हि तेऽसुराः ।
किंतु मन्त्रं प्रदास्यामि यो वै तान्निहनिष्यति ॥ ९ ॥

यूयमिन्द्रं महाभागं पुरस्कृत्य सुरर्षयः ।
गच्छध्वं शरणं विष्णुं हनिष्यति स तान्प्रभुः ॥ १० ॥

ततस्तु जयशब्देन प्रतिनन्द्य महेश्वरम् ।
विष्णोः समीपमाजग्मुर्निशाचरभयार्दिताः ॥ ११ ॥

शङ्खचक्रधरं देवं प्रणम्य बहुमान्य च ।
ऊचुः संभ्रान्तवद्भावयं सुकेशतनयान्प्रति ॥ १२ ॥

सुकेशतनयैर्देव त्रिभिस्त्रेताग्निसन्निभैः ।
आक्रम्य वरदानेन स्थानान्यपहृतानि नः ॥ १३ ॥

लङ्का नाम पुरी दुर्गा त्रिकूटशिखरे स्थिता ।
तत्र स्थिताः प्रबाधन्ते सर्वान्नः क्षणदाचराः ॥ १४ ॥

स त्वमस्मद्धितार्थाय जहि तान्मधुसूदन ।
शरणं त्वां वयं प्राप्ता गतिर्भव सुरेश्वर ॥ १५ ॥

चक्रकृत्तास्यकमलान्निवेदय यमाय वै ।
भयेष्वभयदोऽस्माकं नान्योऽस्ति भवता विना ॥ १६ ॥

राक्षसान्समरे दुष्टान्सानुबन्धान्मदोद्धतान् ।
नुद त्वं नो भयं देव नीहारमिव भास्करः ॥ १७ ॥

इत्येवं दैवतैरुक्तो देवदेवो जनार्दनः ।
अभयं भयदोऽरीणां दत्त्वा देवानुवाच ह ॥ १८ ॥

सुकेशं राक्षसं जाने ईशानवरदर्पितम् ।
तांश्चास्य तनयाञ्जाने येषां ज्येष्ठः स माल्यवान् ॥ १९ ॥

तानहं समतिक्रान्तमर्यादान्राक्षसाधमान् ।
निहनिष्यामि संक्रुद्धः सुरा भवत विज्वराः ॥ २० ॥

इत्युक्तास्ते सुराः सर्वे विष्णुना प्रभविष्णुना ।
यथावासं ययुर्हृष्टाः प्रशंसन्तो जनार्दनम् ॥ २१ ॥

विबुधानां समुद्योगं माल्यवांस्तु निशाचरः ।
श्रुत्वा तौ भ्रातरौ वीराविदं वचनमब्रवीत् ॥ २२ ॥

अमरा ऋषयश्चैव सङ्गम्य किल शङ्करम् ।
अस्मद्वधं परीप्सन्त इदं वचनमब्रुवन् ॥ २३ ॥

सुकेशतनया देव वरदानबलोद्धताः ।
बाधन्तेऽस्मान्समुद्दृप्ता घोररूपाः पदे पदे ॥ २४ ॥

राक्षसैरभिभूताः स्म न शक्ताः स्म प्रजापते ।
स्वेषु सद्मसु संस्थातुं भयात्तेषां दुरात्मनाम् ॥ २५ ॥

तदस्माकं हितार्थाय जहि तांश्च त्रिलोचन ।
राक्षसानुद्धतानेव दह प्रदहतां वर ॥ २६ ॥

इत्येवं त्रिदशैरुक्तो निशम्यान्धकसूदनः ।
शिरः करं च धून्वान इदं वचनमब्रवीत् ॥ २७ ॥

अवध्या मम ते देवाः सुकेशतनया रणे ।
मन्त्रं तु वः प्रदास्यामि यस्तान्वै निहनिष्यति ॥ २८ ॥

योऽसौ चक्रगदापाणिः पीतवासा जनार्दनः ।
हरिर्नारायणः श्रीमाञ्च्छरणं तं प्रपद्यथ ॥ २९ ॥

हरादवाप्य ते मन्त्रं कामारिमभिवाद्य च ।
नारायणालयं प्राप्य तस्मै सर्वं न्यवेदयन् ॥ ३० ॥

ततो नारायणेनोक्ता देवा इन्द्रपुरोगमाः ।
सुरारींस्तान्हनिष्यामि सुरा भवत विज्वराः ॥ ३१ ॥

देवानां भयभीतानां हरिणा राक्षसर्षभौ ।
प्रतिज्ञातो वधोऽस्माकं चिन्त्यतां यदिह क्षमम् ॥ ३२ ॥

ततः सुमाली माली च श्रुत्वा माल्यवतो वचः ।
ऊचतुर्भ्रातरं ज्येष्ठं भगांशाविव वासवम् ॥ ३३ ॥

स्वर्धातं दत्तमिष्टं तु चैश्वर्यं परिपालितम् ।
आयुर्निरामयं प्राप्तं सुधर्मः प्रापितः पथि ॥ ३४ ॥

देवसागरमक्षोभ्यं शस्त्रैः समवगाह्य च ।
जिता द्विषो ह्यप्रतिमास्तन्नो मृत्युकृतं भयम् ॥ ३५ ॥

नारायणश्च रुद्रश्च शक्रश्चापि यमस्तथा ।
अस्माकं प्रमुखे स्थातुं सर्वे बिभ्यति सर्वदा ॥ ३६ ॥

विष्णोर्द्वेषस्य नास्त्येव कारणं राक्षसेश्वर ।
देवानामेव दोषेण विष्णोः प्रचलित मनः ॥ ३७ ॥

तस्मादद्य समुद्युक्ताः सर्वसैन्यसमावृताः ।
देवानेव जिघांसाम एभ्यो दोषः समुत्थितः ॥ ३८ ॥

उद्योगं घोषयित्वा तु सर्वे नैर्ऋतपुङ्गवाः ।
युद्धाय निर्ययुः क्रुद्धा जृम्भवृत्रबला इव ॥ ३९ ॥

स्यन्दनैर्वारणैश्चैव हयैश्च गिरिसन्निभैः ।
खरैर्गोभी रथोष्ट्रैश्च शिशुमारैर्भुजङ्गमैः ॥ ४० ॥

मकरैः कच्छपैर्मीनैर्विहङ्गैर्गरुडोपमैः ।
सिंहैर्व्याघ्रैर्वराहैश्च सृमरैश्चमरैरपि ॥ ४१ ॥

रथैर्हयैरुह्यमानाः शतधा च सहस्रधा ।
प्रयाता राक्षसास्तूर्णं देवलोकजिघांसवः ॥ ४२ ॥

त्यक्त्वा लङ्कां गताः सर्वे राक्षसा बलगर्विताः ।
प्रयता देवलोकाय योद्धुं दैवतशत्रवः ॥ ४३ ॥

लङ्काविपर्ययं दृष्ट्वा यानि लङ्कालयान्यथ ।
रक्षसामेव मार्गेण दैवतान्यपचक्रमुः ॥ ४४ ॥

भूतानि भयदर्शीनि विषमस्थानि सर्वशः ।
भौमाश्चैवान्तरिक्षाश्च कालाज्ञप्ता भयावहाः ॥
उत्पाता राक्षसेन्द्राणामभावाय समुत्थिताः ॥ ४५ ॥

अस्थीनि मेघा वसृषुरुष्णं शोणितमेव च ।
वेलां समुद्राश्चोत्क्रान्ताश्चेलुश्चाप्यथ भूधराः ॥ ४६ ॥

अट्टहासान्विमुञ्चन्तो घननादसमस्वनाः ।
वाश्यन्त्यश्च शिवास्तत्र दारुणं घोरदर्शनाः ॥ ४७ ॥

गृध्रचक्रं महच्चात्र ज्वलनोद्गारिभिर्मुखैः ।
रक्षोगणस्योपरिष्टात्परिबभ्राम कालवत् ॥ ४८ ॥

काका वाश्यन्ति तत्रैव बिडाला वै द्विपादयः ।
कपोता रक्तपादाश्च शारिका विद्रुता ययुः ॥ ४९ ॥

उत्पातांस्तानना दृत्य राक्षसा बलगर्विताः ।
यान्त्येव न निवर्तन्ते मृत्युपाशावपाशिताः ॥ ५० ॥

माल्यवांश्च सुमाली च माली च सुमहाबलाः ।
आसन्पुरःसरास्तेषां क्रतूनामिव पावकाः ॥ ५१ ॥

माल्यवन्तं च ते सर्वे माल्यवन्तमिवाचलम् ।
निशाचरा ह्याश्रयन्ति धातारमिव देवताः ॥ ५२ ॥

तद्बलं राक्षसेन्द्राणां महाभ्रघननादितम् ।
जयेप्सया देवलोकं ययौ मालिवशे स्थितम् ॥ ५३ ॥

राक्षसानां समुद्योगं तं तु नारायणः प्रभुः ।
देवदूतादुपश्रुत्य चक्रे युद्धे तदा मनः ॥ ५४ ॥

स सज्जायुधतूणीरो वैनतेयोपरि स्थितः ।
आसज्य कवचं दिव्यं सहस्रार्कसमद्युति ॥ ५५ ॥

आबध्य शरसम्पूर्णे इषुधी विमले तदा ।
श्रोणीसूत्रं च खड्गं च विमलं कमलेक्षणः ॥ ५६ ॥

शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गखड्गासिप्रवरायुधः ।
राक्षसानामभावाय ययौ तूर्णतरं प्रभुः ॥ ५७ ॥

सुपर्णपृष्ठे स बभौ श्यामः पीताम्बरो हरिः ।
काञ्चनस्य गिरेः शृङ्गे सतडित्तोयदो यथा ॥ ५८ ॥

स सिद्धदेवर्षिमहोरगैश्च गन्धर्वयक्षैरुपगीयमानः ।
समाससादासुरसैन्यशत्रूंश्चक्रासिशार्ङ्गायुधशङ्खपाणिः ॥

सुपर्णपक्षानिलनुन्नपक्षं भ्रमत्पताकं प्रविकीर्णशस्त्रम् ।
चचाल तद्राक्षसराजसैन्यं चलोपलं नील इवाचलेन्द्रः ॥

ततः शरैः शोणितमांसरूषितैर्युगान्तवैश्वानरतुल्यविग्रहैः ।
निशाचराः संपरिवार्य माधवं वरायुधैर्निर्बिभिदुः सहस्रशः ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे षष्ठः सर्गः ॥





## सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

मालिवधः ॥

नारायणगिरिं ते तु गर्जन्तो राक्षसाम्बुदाः ।
ववर्षुः शरवर्षेण वर्षेणेवाद्रिमम्बुदाः ॥ १ ॥

श्यामावदातस्तैर्विष्णुर्नीलैर्नक्तञ्चरोत्तमैः ।
वृतोऽञ्जनगिरीवासीद्वर्षमाणैः पयोधरैः ॥ २ ॥

शलभा इव केदारं मशका इव पर्वतम् ।
यथाऽमृतघटं दंशा मकरा इव चार्णवम् ॥ ३ ॥

तथा रक्षोधनुर्मुक्ता वज्रानिलमनोजवाः ।
हरिं विशन्ति स्म शरा लोका इव विपर्यये ॥ ४ ॥

स्यन्दनैः स्यन्दनगता गजैश्च गजपृष्ठगाः ।
अश्वारोहास्तथाऽश्वैश्च पादाताश्चाम्बरे स्थिताः ॥ ५ ॥

राक्षसेन्द्रा गिरिनिभाः शरैः शक्त्यृष्टितोमरैः ।
निरुच्छ्वासं हरिं चक्रुः प्राणायामा इव द्विजम् ॥ ६ ॥

निशाचरैस्ताड्यमाने मीनैरिव महोदधिः ।
शार्ङ्गमायम्य दुर्धर्षो राक्षसेभ्योऽसृजच्छरान् ॥ ७ ॥

शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैर्वज्रवक्त्रैर्मनोजवैः ।
चिच्छेद विष्णुर्निशितैः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ८ ॥

विद्राव्य शरवर्षेण वर्षं वायुरिवोत्थितम् ।
पाञ्चजन्यं महाशङ्खं प्रदध्मौ पुरुषोत्तमः ॥ ९ ॥

सोऽम्बुजो हरिणा ध्मातः सर्वप्राणेन शङ्खराट् ।
ररास भीमनिर्ह्रादस्त्रैलोक्यं व्यथयन्निव ॥ १० ॥

शङ्खराजरवः सोऽथ त्रासयामास राक्षसान् ।
मृगराज इवारण्ये समदानिव कुञ्जरान् ॥ ११ ॥

न शेकुरश्वाः संस्थातुं विमदाः कुञ्जराऽभवन् ।
स्यन्दनेभ्यश्च्युता वीराः शङ्खरावितदुर्बलाः ॥ १२ ॥

शार्ङ्गचापविनिर्मुक्ता वज्रतुल्याननाः शराः ।
विशीर्य तानि रक्षांसि सुपुङ्खा विविशुः क्षितिम् ॥ १३ ॥

भिद्यमानाः शरैः सङ्ख्ये नारायणकरच्युतैः ।
निपेतू राक्षसा भूमौ शैला वज्रहता इव ॥ १४ ॥

व्रणानि परगात्रेभ्यो विष्णुचक्रकृतानि वै ।
असृक् क्षरन्ति धाराभिः स्वर्णधारा इवाचलाः ॥ १५ ॥

शङ्खराजरवश्चापि शार्ङ्गचापरवस्तथा ।
राक्षसानां रवांश्चापि ग्रसते वैष्णवो रवः ॥ १६ ॥

तेषां शिरोधरान्धूताञ्छिरध्वजधनूंषि च ।
रथान्पताकास्तूणीरांश्चिच्छेद स हरिः शरैः ॥ १७ ॥

सूर्यादिव करा घोरा ऊर्मयः सागरादिव ।
पर्वतादिव नागेन्द्रा धारौघा इव चाम्बुदात् ॥ १८ ॥

तथा शार्ङ्गविनिर्मुक्ताः शरा नारायणेरिताः ।
निर्धावन्तीषवस्तूर्णं शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १९ ॥

शरभेण यथा सिंहाः सिंहेन द्विरदा यथा ।
द्विरदेन यथा व्याघ्रा व्याघ्रेण द्वीपिनो यथा ॥ २० ॥

द्वीपिनेव यथा श्वानः शुना मार्जारका यथा ।
मार्जारेण यथा सर्पाः सर्पेण च यथाऽऽखवः ॥ २१ ॥

तथा ते राक्षसाः सर्वे विष्णुना प्रभविष्णुना ।
द्रवन्ति द्राविताश्चान्ये शायिताश्च महीतले ॥ २२ ॥

राक्षसानां सहस्राणि निहत्य मधुसूदनः ।
वारिजं पूरयामास तोयदं सुरराडिव ॥ २३ ॥

नारायणशरत्रस्तं शङ्खनादसुविह्वलम् ।
ययौ लङ्कामभिमुखं प्रभग्नं राक्षसं बलम् ॥ २४ ॥

प्रभग्ने राक्षसबले नारायणशराहते ।
सुमाली शरवर्षेण निववार रणे हरिम् ॥ २५ ॥

उत्क्षिप्य लम्बाभरणं धुन्वन्करमिव द्विपः ।
ररास राक्षसो हर्षात्सतडित्तोयदो यथा ॥ २६ ॥

सुमालेर्नर्दतस्तस्य शिरो ज्वलितकुण्डलम् ।
चिच्छेद यन्तुरश्वाश्च भ्रान्तास्तस्य तु रक्षसः ॥ २७ ॥

तैरश्वैर्भ्राम्यते भ्रान्तैः सुमाली राक्षसेश्वरः ।
इन्द्रियाश्वैः परिभ्रान्तैर्धृतिहीनो यथा नरः ॥ २८ ॥

हते सुमालेरश्वैश्च रथे विष्णुरथं प्रति ।
माली चाभ्यद्रवद्युक्तः प्रगृह्य सशरं धनुः ॥ २९ ॥

मालेर्धनुश्च्युता बाणाः कार्तस्वरविभूषिताः ।
विविशुर्हरिमासाद्य क्रौञ्चं पत्ररथा इव ॥ ३० ॥

अर्द्यमानः शरैः सोऽथ मालिमुक्तैः सहस्रशः ।
चुक्षुभे न रणे विष्णुर्जितेन्द्रिय इवाधिभिः ॥ ३१ ॥

अथ मौर्वीस्वनं श्रुत्वा भगवान्भूतभावनः ।
मालिनं प्रति बाणौघान्ससर्जारिनिषूदनः ॥ ३२ ॥

ते मालिदेहमासाद्य वज्रविद्युत्प्रभाः शराः ।
पिबन्ति रुधिरं तस्य नागा इव सुधारसम् ॥ ३३ ॥

मालिनं विमुखं कृत्वा शङ्खचक्रगदाधरः ।
मालिमौलिं ध्वजं चापं वाजिनश्चाप्यपातयत् ॥ ३४ ॥

विरथस्तु गदां गृह्य माली नक्तञ्चरोत्तमः ।
आपुप्लुवे गदापाणिर्गिर्यग्रादिव केसरी ॥ ३५ ॥

गदया गरुडेशानमीशानमिव चान्तकः ।
ललाटदेशेऽभ्यहनद्वज्रेणेन्द्रो यथाऽचलम् ॥ ३६ ॥

गदयाऽभिहतस्तेन मालिना गरुडो भृशम् ।
रणात्पराङ्मुखं देवं कृतवान्वेदनातुरः ॥ ३७ ॥

पराङ्मुखे कृते देवे मालिना गरुडेन वै ।
उदतिष्ठन्महाञ्च्छब्दो रक्षसामभिनर्दताम् ॥३८॥

रक्षसां रवतां रावं श्रुत्वा हरिहयानुजः ।
तिर्यगास्थाय संक्रुद्धः पक्षीशे भगवान्हरिः ॥
पराङ्मुखोऽप्युत्ससर्ज मालेश्चक्रं जिघांसया ॥ ३९ ॥

तत्सूर्यमण्डलाभासं स्वभासा भासयन्नभः ।
कालचक्रनिभं चक्रं मालेः शीर्षमपातयत् ॥ ४० ॥

तच्छिरो राक्षसेन्द्रस्य चक्रकृत्तं विभीषणम् ।
पपात रुधिरोद्गारि पुरा राहुशिरो यथा ॥ ४१ ॥

ततः सुरैः सुसंहृष्टैः सर्वप्राणसमीरितः ।
सिंहनादरवोन्मुक्तः साधु देवेति वादिभिः ॥ ४२ ॥

मालिनं निहतं दृष्ट्वा सुमाली माल्यवानपि ।
सबलौ शोकसन्तप्तौ लङ्कामेव प्रधावितौ ॥ ४३ ॥

गरुडस्तु समाश्वस्तः सन्निवृत्य यथा पुरा ।
राक्षसान्द्रावयामास पक्षवातेन कोपितः ॥ ४४ ॥

नारायणो बाणवराशनीभिर्विदारयामास धनुर्विमुक्तैः ।
नक्तञ्चरान्मुक्तविधूतकेशान्यथाऽशनीभिः सतडिन्महाभ्राः ॥

भिन्नातपत्रं पतमानमस्त्रं शरैरपध्वस्तविनीतवेषम् ।
विनिस्रुतान्त्रं भयलोलनेत्रं बलं तदुन्मत्ततरं बभूव ॥

सिंहार्दितानामिव कुञ्जराणां निशाचराणां सहकुञ्जराणाम् ।
रवाश्च वेगाश्च समं बभूवुः पुराणसिंहेन विमर्दितानाम् ॥

सम्बाध्यमाना हरिबाणजालैः सबाणजालानि समुत्सृजन्तः ।
धावन्ति नक्तञ्चरकालमेघा वायुप्रभिन्ना इव कालमेघाः ॥

चक्रप्रहारैर्विनिकृत्तशीर्षाः संचूर्णिताङ्गाश्च गदाप्रहारैः ।
असिप्रहारैर्द्विधा विभिन्नाः पतन्ति शैला इव राक्षसेन्द्राः ॥

चक्रकृत्तास्यकमला गदासंचूर्णितोरसः ।
लाङ्गूलग्लपितग्रीवा मुसलैर्भिन्नमस्तकाः ॥ ५० ॥

केचिच्चैत्रासिना छिन्नास्तथाऽन्ये शरपीडिताः ।
निपेतुरम्बराच्चूर्णं राक्षसाः सागराम्भसि ॥ ५१ ॥

विलम्बमानैर्मणिहारकुण्डलैर्निशाचरैर्नीलबलाहकोपमैः ।
निपात्यमानैर्ददृशे निरन्तरं निपात्यमानैरिव नीलपर्वतैः ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 21017 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 293



अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

माल्यादिपराजयः ॥

हन्यमाने बले तस्मिन्पद्मनाभेन पृष्ठतः ।
माल्यवान्संनिवृत्तोऽथ वेलामेत्य महार्णवः ॥ १ ॥

संरक्तनयनः कोपाच्चलन्मौलिर्निशाचरः ।
पद्मनाभमिदं प्राह वचनं पुरुषोत्तमम् ॥ २ ॥

नारायण न जानीषे क्षात्रधर्मं पुरातनम् ।
अयुद्धमनसो भीतानस्मान्हंसि यथेतरः ॥ ३ ॥

पराङ्मुखवधं पापं यः करोत्यसुरेतरः ।
स हन्ता न गतः स्वर्गं लभते पुण्यकर्मणाम् ॥ ४ ॥

युद्धश्रद्धाऽथवा तेऽस्ति शङ्खचक्रगदाधर ।
अहं स्थितोऽस्मि पश्यामि बलं दर्शय यत्तव ॥ ५ ॥

माल्यवन्तं स्थितं दृष्ट्वा माल्यवन्तमिवाचलम् ।
उवाच राक्षसेन्द्रं तं देवराजानुजो बली ॥ ६ ॥

युष्मत्तो भयभीतानां देवानां वै मयाऽभयम् ।
राक्षसोत्सादनं दत्तं तदेतदनुपाल्यते ॥ ७ ॥

प्राणैरपि प्रियं कार्यं देवानां हि सदा मया ।
सोऽहं वो निहनिष्यामि रसातलगतानपि ॥ ८ ॥

देवदेवं ब्रुवाणं तं रक्ताम्बुरुहलोचनम् ।
शक्त्या बिभेद संक्रुद्धो राक्षसेन्द्रो भुजान्तरे ॥ ९ ॥

माल्यवद्भुजनिर्मुक्ता शक्तिर्घण्टाकृतस्वना ।
हरेरुरसि बभ्राज मेघस्थेव शतह्रदा ॥ १० ॥

ततस्तामेव चोत्कृष्य शक्तिं शक्तिधरप्रियः ।
माल्यवन्तं समुद्दिश्य चिक्षेपाम्बुरुहेक्षणः ॥ ११ ॥

स्कन्दोत्सृष्टेव सा शक्तिर्गोविन्दकरनिःसृता ।
काङ्क्षन्ती राक्षसं प्रायान्माहेन्द्रीवाञ्जनाचलम् ॥ १२ ॥

सा तस्योरसि विस्तीर्णे हारभासाऽवभासिते ।
अपतद्राक्षसेन्द्रस्य गिरिकूट इवाशनिः ॥ १३ ॥

तया भिन्नतनुत्राणः प्राविशद्विपुलं तमः ।
माल्यवान्पुनराश्वस्तस्तस्थौ गिरिरिवाचलः ॥ १४ ॥

ततः काष्णायसं शूलं कण्टकैर्बहुभिर्वृतम् ।
प्रगृह्याभ्यहनद्देवं स्तनयोरन्तरे दृढम् ॥ १५ ॥

तथैव रणरक्तस्तु मुष्टिना वासवानुजम् ।
ताडयित्वा धनुर्मात्रमपक्रान्तो निशाचरः ॥ १६ ॥

ततोऽम्बरे महाञ्च्छब्दः साधु साध्विति चोदितः ।
आहत्य राक्षसा विष्णुं गरुडं चाप्यताडयत् ॥ १७ ॥

वैनतेयस्ततः क्रुद्धः पक्षवातेन राक्षसम् ।
व्यपोहद्बलवान्वायुः शुष्कपर्णचयं यथा ॥ १८ ॥

द्विजेन्द्रपक्षवातेन द्रावितं दृश्य पूर्वजम् ।
सुमाली स्वबलैः सार्धं लङ्कामभिमुखो ययौ ॥ १९ ॥

पक्षवातबलोद्धूतो माल्यवानपि राक्षसः ।
स्वबलेन समागम्य ययौ लङ्कां ह्रिया वृतः ॥ २० ॥

एवं ते राक्षसास्तेन हरिणा कमलेक्षण ।
बहुशः संयुगे भग्ना हतप्रवरनायकाः ॥ २१ ॥

अशक्नुवन्तस्ते विष्णुं प्रतियोद्धुं भयार्दिताः ।
त्यक्त्वा लङ्कां गता वस्तुं पातालं सहपत्नयः ॥ २२ ॥

सुमालिनं समासाद्य राक्षसं रघुसत्तम ।
स्थिताः प्रख्यातवीर्यास्ते वंशे सालकटङ्कटे ॥ २३ ॥

ये त्वया निहतास्ते तु पौलस्त्या नाम राक्षसाः ।
सुमाली माल्यवान्माली ये च तेषां पुरःसराः ॥
सर्वे तेभ्यो महाभाग रावणाद्बलवत्तराः ॥ २४ ॥

न चान्यो राक्षसान्हन्ता सुरारीन्देवकण्टकान् ।
ऋते नारायणं देवं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ २५ ॥

भवान्नारायणो देवश्चतुर्बाहुः सनातनः ।
राक्षसान्हन्तुमुत्पन्नो ह्यजेयः प्रभुरव्ययः ॥ २६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे अष्टमः सर्गः



## नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

रावणाद्युत्पत्तिः ॥

केनचित्त्वथ कालेन सुमाली नाम राक्षसः ।
रसातलान्मर्त्यलोकं सर्वं वै विचचार ह ॥ १ ॥

नीलजीमूतसङ्काशस्तप्तकाञ्चनकुण्डलः ।
कन्यां दुहितरं गृह्य विना पद्ममिव श्रियम् ॥ २ ॥

राक्षसेन्द्रः स तु यदा व्यचरद्वै महीतलम् ।
तदाऽपश्यच्च गच्छन्तं पुष्पकेण धनेश्वरम् ॥ ३ ॥

तं दृष्ट्वाऽमरसङ्काशं स्वच्छन्दं तपनोपमम् ।
रसातलं प्रविष्टः सन्मर्त्यलोकात्सविस्मयः ॥
हितार्थं चिन्तयामास राक्षसानां महामतिः ॥ ४ ॥

किं कृतं श्रेय इत्येव वर्धेमहि कथं वयम् ।
अथाब्रवीत्सुतां रक्षः कैकसीं नाम नामतः ॥ ५ ॥

पुत्रि प्रदानकालोऽयं यौवनं तेऽतिवर्तते ।
प्रत्याख्यानाच्च भीतैस्त्वं न वरैः प्रतिगृह्यसे ॥ ६ ॥

त्वत्कृते च वयं सर्वे यन्त्रिता धर्मबुद्धयः ।
त्वं हि सर्वगुणोपेता श्रीः साक्षादिव पुत्रिके ॥ ७ ॥

कन्यापितृत्वं दुःखं हि सर्वेषां मानकाङ्क्षिणाम् ॥ ८ ॥

न ज्ञायते च कः कन्यां वरयेदिति कन्यके ॥ ९ ॥

मातुः कुल पितृकुलं यत्र चैव प्रदीयते ।
कुलत्रयं सदा कन्या संशये स्थाप्य तिष्ठति ॥ १० ॥

सा त्वं मुनिवरं श्रेष्ठं प्रजापतिकुलोद्भवम् ।
भज विश्रवसं पुत्रि पौलस्त्यं वरय स्वयम् ॥ ११ ॥

ईदृशास्ते भविष्यन्ति पुत्राः पुत्रि न संशयः ।
तेजसा भास्करसमो यादृशोऽयं धनेश्वरः ॥ १२ ॥

सा तु तद्वचनं श्रुत्वा कन्यका पितृगौरवात् ।
तत्रोपागम्य सा तस्थौ विश्रवा यत्र तप्यते ॥ १३ ॥

एतस्मिन्नन्तरे राम पुलस्त्यतनयो द्विजः ।
अग्निहोत्रमुपातिष्ठच्चतुर्थ इव पावकः ॥ १४ ॥

सा तु तां दारुणां वेलां विचिन्त्य पितृगौरवात् ।
उपसृत्याग्रतस्तस्य चरणाधोमुखी स्थिता ॥
विलिखन्ती मुहुर्भूमिमङ्गुष्ठाग्रेण भामिनी ॥ १५ ॥

स तु तां प्रेक्ष्य सुश्रोणीं पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ।
अब्रवीत्परमोदारो दीप्यमानां स्वतेजसा ॥ १६ ॥

भद्रे कस्यासि दुहिता कुतो वा त्वमिहागता ।
किं कार्यं कस्य वा हेतोस्तत्त्वतो ब्रूहि शोभने ॥ १७ ॥

एवमुक्ता तु सा कन्या कृताञ्जलिरथाब्रवीत् ।
आत्मप्रभावेन मुने ज्ञातुमर्हसि मे मतम् ॥ १८ ॥

किं तु मां विद्धि ब्रह्मर्षे शासनात्पितुरागताम् ।
कैकसी नाम नाम्नाऽहं शेषं त्वं ज्ञातुमर्हसि ॥ १९ ॥

स तु गत्वा मुनिर्ध्यानं वाक्यमेतदुवाच ह ।
विज्ञातं ते मया भद्रे कारणं यन्मनोगतम् ॥ २० ॥

सुताभिलाषो मत्तस्ते मत्तमातङ्गगामिनि ।
दारुणायां तु वेलायां यस्माच्चं मामुपस्थिता ॥ २१ ॥

शृणु तस्मात्सुतान्भद्रे यादृशाञ्जनयिष्यसि ।
दारुणान्दारुणाकारान्दारुणाभिजनप्रियान् ॥ २२ ॥

प्रसविष्यसि सुश्रोणि राक्षसान्क्रूरकर्मणः ।
सा तु तद्वचनं श्रुत्वा प्रणिपत्याब्रवीद्वचः ॥ २३ ॥

भगवन्नीदृशान्पुत्रांस्त्वत्तोऽहं ब्रह्मवादिनः ।
नेच्छामि सुदुराचारान्प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ २४ ॥

कन्यया त्वेवमुक्तस्तु विश्रवा मुनिपुङ्गवः ।
उवाच कैकसीं भूयः पूर्णेन्दुरिव रोहिणीम् ॥ २५ ॥

अथाब्रवीन्मुनिस्तत्र पश्चिमो यस्तवात्मजः ।
मम वंशानुरूपः स धर्मात्मा च भविष्यति ॥ २६ ॥

एवमुक्ता तु सा कन्या राम कालेन केनचित् ।
जनयामास बीभत्सं रक्षोरूपं सुदारुणम् ॥ २७ ॥

दशग्रीवं महादंष्ट्रं नीलाञ्जनचयोपमम् ।
ताम्रोष्ठं विंशतिभुजं महास्यं दीप्तमूर्धजम् ॥ २८ ॥

तस्मिञ्जाते तु तत्काले सज्वालकबलाः शिवाः ।
क्रव्यादाश्चापसव्यानि मण्डलानि प्रचक्रमुः ॥ २९ ॥

ववर्ष रुधिरं देवो मेघाश्च खरनिस्वनाः ।
न प्रभाति च खे सूर्यो महोल्काश्चापतन्क्षितौ ॥ ३० ॥

अथ नामाकरोत्तस्य पितामहसमः पिता ।
दशग्रीवः प्रसूतोऽयं दशग्रीवो भविष्यति ॥ ३१ ॥

तस्य त्वनन्तरं जातः कुम्भकर्णो महाबलः ।
प्रमाणाद्यस्य विपुलं प्रमाणं नेह विद्यते ॥ ३२ ॥

ततः शूर्पणखा नाम सञ्जज्ञे विकृताननाः ।
विभीषणश्च धर्मात्मा कैकस्याः पश्चिमः सुतः ॥ ३३ ॥

तौ तु तत्र महारण्ये वर्धाते महौजसौ ।
कुम्भकर्णदशग्रीवौ लोकोद्वेगकरौ तदा ॥ ३४ ॥

कुम्भकर्णः प्रमत्तस्तु महर्षीन्धर्मवत्सलान् ।
त्रैलोक्यं भक्षयन्नित्यं संतुष्टो विचचार ह ॥ ३५ ॥

विभीषणस्तु धर्मात्मा नित्यं धर्मे व्यवस्थितः ।
स्वाध्यायनियताहार उवास विजितेन्द्रियः ॥ ३६ ॥

अथ वैश्रवणो देवस्तत्र कालेन केनचित् ।
आगतः पितरं द्रष्टुं पुष्पकेण धनेश्वरः ॥ ३७ ॥

तं दृष्ट्वा कैकसी तत्र ज्वलन्तमिव तेजसा ।
आस्थाय राक्षसीं बुद्धिं दशग्रीवमुवाच ह ॥ ३८ ॥

पुत्र वैश्रवणं पश्य भ्रातरं तेजसा वृतम् ।
भ्रातृभावे समे चापि पश्यात्मानं त्वमीदृशम् ॥ ३९ ॥

दशग्रीव तथा यत्नं कुरुष्वामितविक्रम ।
यथा त्वमसि मे पुत्र भव वैश्रवणोपमः ॥ ४० ॥

मातुस्तद्वचनं श्रुत्वा दशग्रीवः प्रतापवान् ।
अमर्षमतुलं लेभे प्रतिज्ञां चाकरोत्तदा ॥ ४१ ॥

सत्यं ते प्रतिजानामि भ्रातृतुल्योऽधिकोऽपि वा ।
भविष्याम्यचिरान्मातः सन्तापं त्यज हृद्गतम् ॥ ४२ ॥

इत्युक्त्वा मातरं राम दशग्रीवः सहानुजः ।
आगच्छदर्थसिद्ध्यर्थं गोकर्णं नाम पर्वतम् ॥ ४३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे नवमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 21086 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 362



दशमः सर्गः ॥ १० ॥

रावणादिवरप्राप्तिः ॥

अथाब्रवीद्द्विजं रामः कथान्ते भ्रातरो वने ।
कीदृशं तु तदा ब्रह्मंस्तपश्चेरुर्महाव्रताः ॥ १ ॥

अगस्त्यस्त्वब्रवीत्तत्र रामं सुप्रीतमानसम् ।
तांस्तान्धर्मविधींस्तत्र भ्रातरस्ते समाविशन् ॥ २ ॥

कुम्भकर्णस्ततो यत्तो नित्यं धर्मपथे स्थितः ।
तताप ग्रैष्मके काले वीरः पञ्चाग्निमध्यगः ॥ ३ ॥

मेघाम्बुसिक्तो वर्षासु वीरासनमसेवत ।
नित्यं च शिशिरे काले जलमध्यप्रतिश्रयः ॥ ४ ॥

एवं वर्षसहस्राणि दश तस्यातिचक्रमुः ।
धर्मे प्रयतमानस्य सत्पथे निष्ठितस्य च ॥ ५ ॥

विभीषणस्तु धर्मात्मा नित्यं धर्मपरः शुचिः ।
पञ्च वर्षसहस्राणि पादेनैकेन तस्थिवान् ॥ ६ ॥

समाप्ते नियमे तस्य ननृतुश्चाप्सरोगणाः ।
पपात पुष्पवर्षं च क्षुभिताश्चापि देवताः ॥ ७ ॥

पञ्च वर्षसहस्राणि सूर्यं चैवान्ववर्तत ।
तस्थौ चोर्ध्वशिरोबाहुः स्वाध्यायधृतमानसः ॥ ८ ॥

एवं विभीषणस्यापि स्वर्गस्थस्येव नन्दने ।
दश वर्षसहस्राणि गतानि नियतात्मनः ॥ ९ ॥

दश वर्षसहस्राणि निराहारो दशाननः ।
पूर्णे वर्षसहस्रे तु शिरश्चाग्नौ जुहाव सः ॥ १० ॥

एवं वर्षसहस्राणि नव तस्यातिचक्रमुः ।
शिरांसि नव चाप्यस्य प्रविष्टानि हुताशनम् ॥ ११ ॥

अथ वर्षसहस्रे तु दशमे दशमं शिरः ।
छेत्तुकामे दशग्रीवे प्राप्तस्तत्र पितामहः ॥ १२ ॥

पितामहस्तु धर्मात्मा सार्धं देवैरुपस्थितः ।
तात वत्स दशग्रीव प्रीतोऽस्मीत्यभ्यभाषत ॥ १३ ॥

शीघ्रं वरय धर्मज्ञ वरो यस्तेऽभिकाङ्क्षितः ।
तं ते कामं करोम्यद्य न वृथा ते परिश्रमः ॥ १४ ॥

अथाब्रवीद्दशग्रीवः पितामहमुपागतम् ।
प्रणम्य शिरसा देवं हर्षगद्गदया गिरा ॥ १५ ॥

भगवन्प्राणिनां नित्यं नान्यत्र मरणाद्भयम् ।
नास्ति मृत्युसमः शत्रुरमरत्वमहं वृणे ॥ १६ ॥

एवमुक्तस्तदा ब्रह्मा दशग्रीवमुवाच ह ।
नास्ति सर्वामरत्वं ते वरमन्यं वृणीष्व मे ॥ १७ ॥
सुपर्णनागयक्षाणां दैत्यदानवरक्षसाम् ।
अवध्योऽहं प्रजाध्यक्ष देवतानां च शाश्वत ॥ १८ ॥
न हि चिन्ता ममान्येषु प्राणिष्वमरपूजित ।
तृणभूता हि ते मन्ये प्राणिनो मानुषादयः ॥ १९ ॥
एवमुक्तस्तु धर्मात्मा दशग्रीवेण रक्षसा ।
उवाच वचनं देवः सह देवैः पितामहः ॥
भविष्यत्येवमेतत्ते वचो राक्षसपुङ्गव ॥ २० ॥
शृणु चापि वचो भूयः प्रीतस्येह शुभं मम ॥ २१ ॥
हुतानि यानि शीर्षाणि पूर्वमग्नौ त्वयाऽनघ ।
पुनस्तानि भविष्यन्ति तथैव तव राक्षस ॥ २२ ॥
वितरामीह ते सौम्य वरं चान्यं दुरासदम् ॥ २३ ॥
छन्दतस्तव रूपं च मनसा यद्यथेप्सितम् ।
भविष्यति न संदेहो मद्वरात्तव राक्षस ॥ २४ ॥
एवं पितामहोक्तस्य दशग्रीवस्य रक्षसः ।
अग्नौ हुतानि शीर्षाणि यानि तान्युत्थितानि वै ॥ २५ ॥
एवमुक्त्वा तु तं राम दशग्रीवं पितामहः ।
विभीषणमथोवाच वाक्यं लोकपितामहः ॥ २६ ॥
विभीषण त्वया वत्स धर्मसंहितबुद्धिना ।
परितुष्टोऽस्मि धर्मात्मन्वरं वरय सुव्रत ॥ २७ ॥

विभीषणस्तु धर्मात्मा प्रोवाच प्रणतो वचः ।
वृतः सर्वगुणैर्नित्यं चन्द्रमा रश्मिभिर्यथा ॥ २८ ॥
भगवन्कृतकृत्योऽहं यन्मे लोकगुरुः स्वयम् ।
प्रीतेन यदि दातव्यो वरो मे शृणु सुव्रत ॥ २९ ॥
परमापद्गतस्यापि धर्मे मम मतिर्भवेत् ।
अशिक्षितं च ब्रह्मास्त्रं भगवन्प्रतिभातु मे ॥ ३० ॥
या या मे जायते बुद्धिर्येषु येष्वाश्रमेषु च ।
सा सा भवतु धर्मिष्ठा तं तु धर्मं च पालये ॥ ३१ ॥
एष मे परमोदार वरः परमको मतः ।
न हि धर्माभिरक्तानां लोके किञ्चन दुर्लभम् ॥ ३२ ॥
पुनः प्रजापतिः प्रीतो विभीषणमुवाच ह ।
धर्मिष्ठस्त्वं यथा वत्स तथा चैतद्भविष्यति ॥ ३३ ॥
यस्माद्राक्षसयोनौ ते जातस्यामित्रनाशन ।
नाधर्मे जायते बुद्धिरमरत्वं ददामि ते ॥ ३४ ॥
कुम्भकर्णाय तु वरं प्रयच्छन्तमरिन्दम ।
प्रजापतिं सुराः सर्वे वाक्यं प्राञ्जलयोऽब्रुवन् ॥ ३५ ॥
न तावत्कुम्भकर्णाय प्रदातव्यो वरस्त्वया ।
जानीषे हि यथा लोकांस्त्रासयत्येष दुर्मतिः ॥ ३६ ॥
नन्दनेऽप्सरसः सप्त महेन्द्रानुचरा दश ।
अनेन भक्षिता ब्रह्मन्नृषयो मानुषादयः ॥ ३७ ॥
वरव्याजेन मोहो हि दीयतामस्य रक्षसः ।
लोकानां स्वस्ति चैवं स्याद्भवेदस्य च सम्मतिः ॥ ३८ ॥

एवमुक्तः सुरैर्ब्रह्मा देवीमेवान्वचिन्तयत् ।
चिन्तिता चोपतस्थेऽस्य पार्श्वं देवी सरस्वती ॥ ३९ ॥
प्राञ्जलिः सा तु पार्श्वस्था प्राह वाक्यं सरस्वती ।
इयमभ्यागता देव किं कार्यं करवाण्यहम् ॥ ४० ॥
प्रजापतिस्तु तां प्राप्तां प्राह वाक्यं सरस्वतीम् ।
वाणि त्वं राक्षसेन्द्रास्ये भव या देवतेप्सिता ॥ ४१ ॥
तथेत्युक्त्वा प्रविष्टा सा प्रजापतिरथाब्रवीत् ।
कुम्भकर्ण महाबाहो वरं वरय यो मतः ॥ ४२ ॥
कुम्भकर्णस्तु तद्वाक्यं श्रुत्वा वचनमब्रवीत् ।
स्वप्तुं वर्षाण्यनेकानि देवदेव ममेप्सितम् ॥ ४३ ॥
एवमस्त्विति तं चोक्त्वा प्रायाद्ब्रह्मा सुरैः समम् ।
देवी सरस्वती चैव राक्षसं तं जहौ पुनः ॥ ४४ ॥
ब्रह्मणा सह देवेषु गतेषु च नभःस्थलम् ।
विमुक्तोऽसौ सरस्वत्या स्वां संज्ञां च ततो गतः ॥ ४५ ॥
कुम्भकर्णस्तु दुष्टात्मा चिन्तयामास दुःखितः ।
ईदृशं किमिदं वाक्यं ममाद्य वदनाच्च्युतम् ॥ ४६ ॥
अहं व्यामोहितो देवैरिति मन्ये तदागतैः ।
एवं लब्धवराः सर्वे भ्रातरो दीप्ततेजसः ॥
श्लेष्मातकवनं गत्वा तत्र ते न्यवसन्सुखम् ॥ ४७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे दशमः सर्गः ॥

## एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

### रावणस्य लङ्काप्राप्तिः ॥

सुमाली वरलब्धांस्तु ज्ञात्वा चैतान्निशाचरान् ।
उदतिष्ठद्भयं त्यक्त्वा सानुगः स रसातलात् ॥ १ ॥

मारीचश्च प्रहस्तश्च विरूपाक्षो महोदरः ।
उदतिष्ठन्सुसंरब्धाः सचिवास्तस्य रक्षसः ॥ २ ॥

सुमाली सचिवैः सार्धं वृतो राक्षसपुङ्गवैः ।
अभिगम्य दशग्रीवं परिष्वज्येदमब्रवीत् ॥ ३ ॥

दिष्ट्या ते वत्स संप्राप्तश्चिन्तितोऽयं मनोरथः ।
यस्त्वं त्रिभुवनश्रेष्ठाल्लब्धवान्वरमुत्तमम् ॥ ४ ॥

यत्कृते च वयं लङ्कां त्यक्त्वा याता रसातलम् ।
तद्वृत्तं नो महाबाहो महद्विष्णुकृतं भयम् ॥ ५ ॥

असकृत्तद्भयाद्भीताः परित्यज्य स्वमालयम् ।
विद्रुताः सहिताः सर्वे प्रविष्टाः स्म रसातलम् ॥ ६ ॥

अस्मदीया च लङ्केयं नगरी राक्षसोचिता ।
निवेशिता तव भ्रात्रा धनाध्यक्षेण धीमता ॥ ७ ॥

यदि नामात्र शक्यं स्यात्साम्ना दानेन वाऽनघ ।
तरसा वा महाबाहो प्रत्यानेतुं कृतं भवेत् ॥ ८ ॥

त्वं तु लङ्केश्वरस्तात भविष्यसि न संशयः ।
सर्वेषां नः प्रभुश्चैव भविष्यसि महाबल ॥ ९ ॥

अथाब्रवीद्दशग्रीवो मातामहमुपस्थितम् ।
वित्तेशो गुरुरस्माकं नार्हसे वक्तुमीदृशम् ॥ १० ॥

साम्नाऽपि राक्षसेन्द्रेण प्रत्याख्यातो गरीयसा ।
किञ्चिन्नाह तदा रक्षो ज्ञात्वा तस्य चिकीर्षितम् ॥ ११ ॥

कस्यचित्त्वथ कालस्य वसन्तं रावणं ततः ।
उक्तवन्तं तथा वाक्यं दशग्रीवं निशाचरः
प्रहस्तः प्रश्रितं वाक्यमिदमाह सकारणम् ॥ १२ ॥

दशग्रीव महाबाहो नार्हस्त्वं वक्तुमीदृशम् ।
सौभ्रात्रं नास्ति शूराणां शृणु चेदं वचो मम ॥ १३ ॥

अदितिश्च दितिश्चैव भगिन्यौ सहिते हिते ।
भार्ये परमरूपिण्यौ कश्यपस्य प्रजापतेः ॥ १४ ॥

अदितिर्जनयामास देवांस्त्रिभुवनेश्वरान् ।
दितिस्त्वजनयत्पुत्रान्कश्यपस्यात्मसंभवान् ॥ १५ ॥

दैत्यानां किल धर्मज्ञ पुरीयं सवनार्णवा ।
सपर्वता मही वीर तेऽभवन्प्रभविष्णवः ॥ १६ ॥

निहत्य तांस्तु समरे विष्णुना प्रभविष्णुना ।
देवानां वशमानीतं त्रैलोक्यमिदमव्ययम् ॥ १७ ॥

नैतदेको भवानेव करिष्यति विपर्ययम् ।
सुरासुरैराचरितं तत्कुरुष्व वचो मम ॥ १८ ॥

एवमुक्तो दशग्रीवः प्रहृष्टेनान्तरात्मना ।
चिन्तयित्वा मुहूर्तं वै बाढमित्येव सोऽब्रवीत् ॥ १९ ॥

स तु तेनैव हर्षेण तस्मिन्नहनि वीर्यवान् ।
वनं गतो दशग्रीवः सह तैः क्षणदाचरैः ॥ २० ॥

त्रिकूटस्थः स तु तदा दशग्रीवो निशाचरः ।
प्रेषयामास दूत्येन प्रहस्तं वाक्यकोविदम् ॥ २१ ॥

प्रहस्त शीघ्रं गच्छ त्वं ब्रूहि नैर्ऋतपुङ्गवम् ।
वचसा मम वित्तेशं सामपूर्वमिदं वचः ॥ २२ ॥

इयं लङ्कापुरी राजन्राक्षसानां महात्मनाम् ।
त्वया निवेशिता सौम्य नैतच्चुक्तं तवानघ ॥ २३ ॥

तद्भवान्यदि नो ह्यद्य दद्यादतुलविक्रम ।
कृता भवेन्मम प्रीतिर्धर्मश्चैवानुपालितः ॥ २४ ॥

स तु गत्वा पुरीं लङ्कां धनदेन सुरक्षिताम् ।
अब्रवीत्परमोदारं वित्तपालमिदं वचः ॥ २५ ॥

प्रेषितोऽहं तव भ्रात्रा दशग्रीवेण सुव्रत ।
त्वत्समीपं महाबाहो सर्वशस्त्रभृतां वर ॥ २६ ॥

तच्छ्रूयतां महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ।
वचनं मम वित्तेश यद्ब्रवीति दशाननः ॥ २७ ॥

इयं किल पुरी रम्या सुमालिप्रमुखैः पुरा ।
भुक्तपूर्वा विशालाक्ष राक्षसैर्भीमविक्रमैः ॥ २८ ॥

तेन विज्ञाप्यते सोऽयं सांप्रतं विश्रवात्मज ।
तदेषा दीयतां तात याचतस्तस्य सामतः ॥ २९ ॥

प्रहस्तादभिसंश्रुत्य देवो वैश्रवणा वचः ।
प्रत्युवाच प्रहस्तं तं वाक्यं वाक्यविशारदः ॥ ३० ॥

दत्ता ममेयं पित्रा तु लङ्का शून्या निशाचरैः ।
निवासिते च मे यक्षैर्दानमानादिभिर्गुणैः ॥ ३१ ॥

ब्रूहि गच्छ दशग्रीवं पुरं राज्यं च यन्मम ।
तवाप्येतन्महाबाहो भुङ्क्ष्व राज्यमकण्टकम् ॥
अविभक्तं त्वया सार्धं राज्यं यच्चापि मे वसु ॥ ३२ ॥

एवमुक्त्वा धनाध्यक्षो जगाम पितुरन्तिकम् ॥ ३३ ॥

अभिवाद्य गुरुं प्राह रावणस्य यदीप्सितम् ॥ ३४ ॥

एष तात दशग्रीवो दूतं प्रेषितवान्मम ।
दीयतां नगरी लङ्का पूर्वं रक्षोगणोषिता ॥ ३५ ॥

मयाऽत्र यदनुष्ठेयं तन्ममाचक्ष्व सुव्रत ॥ ३६ ॥

ब्रह्मर्षिस्त्वेवमुक्तोऽसौ विश्रवा मुनिपुङ्गवः ।
प्राञ्जलिं धनदं प्राह शृणु पुत्र वचो मम ॥ ३८ ॥

दशग्रीवो महाबाहुरुक्तवान्मम सन्निधौ ।
मया निर्भर्त्सितश्चासीद्बहुशोक्तः सुदुर्मतिः ॥ ३८ ॥

स क्रोधेन मया चोक्तो ध्वंसते च पुनः पुनः ।
श्रेयोऽभियुक्तं धर्म्यं च शृणु पुत्र वचो मम ॥ ३९ ॥

वरप्रदानात्संमूढो मान्यामान्यान्स दुर्मतिः ।
न वेत्ति मम शापाच्च प्रकृतिं दारुणां गतः ॥ ४० ॥

तस्माद्गच्छ महाबाहो कैलासं धरणीधरम् ।
निवेशय निवासार्थं त्यक्त्वा लङ्कां सहानुगः ॥ ४१ ॥

तत्र मन्दाकिनी रम्या नदीनामुत्तमा नदी ।
काञ्चनैः सूर्यसङ्काशैः पङ्कजैः संवृतोदका ॥
कुमुदैरुत्पलैश्चैव तथाऽन्यैश्च सुगन्धिभिः ॥ ४२ ॥

तत्र देवाः सगन्धर्वाः साप्सरोरगकिन्नराः ।
विहारशीलाः सततं रमन्ते सर्वदाऽऽश्रिताः ॥ ४३ ॥

न हि क्षमं तवानेन वैरं धनद रक्षसा ।
जानीषे हि यथाऽनेन लब्धः परमको वरः ॥ ४४ ॥

एवमुक्तो गृहीत्वाऽशु तद्वचः पितृगौरवात् ।
सदारपुत्रः सामात्यः सवाहनधनो गतः ॥ ४५ ॥

प्रहस्तोऽथ दशग्रीवं गत्वा वचनमब्रवीत् ।
प्रहृष्टात्मा महात्मानं सहामात्यं सहानुजम् ॥ ४६ ॥

शून्या सा नगरी लङ्का त्यक्त्वैनां धनदो गतः ।
प्रविश्य तां सहास्माभिः स्वधर्मं प्रतिपालय ॥ ४७ ॥

एवमुक्तो दशग्रीवः प्रहस्तेन महाबलः ।
विवेश नगरीं लङ्कां भ्रातृभिः सबलानुगैः ॥
धनदेन परित्यक्तां सुविभक्तमहापथाम् ॥ ४८ ॥

स चाभिषिक्तः क्षणदाचरैस्तदा
निवेशयामास पुरीं दशाननः ।
निकामपूर्णा च बभूव सा पुरी
निशाचरैर्नीलबलाहकोपमैः ॥ ४९ ॥

धनेश्वरस्त्वथ पितृवाक्यगौरवा-
न्न्यवेशयच्छशिविमले गिरौ पुरीम् ।
स्वलंकृतैर्भवनवरैर्विभूषितां
पुरन्दरस्येव तदाऽमरावतीम् ॥ ५० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे एकादशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 21183 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 489



द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

रावणादिविवाहः ॥

राक्षसेन्द्रोऽभिषिक्तस्तु भ्रातृभ्यां सहितस्तदा ।
ततः प्रदानं राक्षस्या भगिन्याः समचिन्तयत् ॥ १ ॥

स्वसारं कालकेयाय दानवेन्द्राय राक्षसीम् ।
ददौ शूर्पणखां नाम विद्युज्जिह्वाय नामतः ॥ २ ॥

अथ दत्त्वा स्वसारं स मृगयां पर्यटन्नृप ॥ ३ ॥

तत्रापश्यत्ततो राम मयं नाम दितेः सुतम् ॥ ४ ॥

कन्यासहायं तं दृष्ट्वा दशग्रीवो निशाचरः ।
अपृच्छत्को भवानेको निर्मानुष्यमृगे वने ॥
अनया मृगशावाक्ष्या किमर्थं सह तिष्ठसि ॥ ५ ॥

मयस्त्वथाब्रवीद्रामं पृच्छन्तं तं निशाचरम् ।
श्रूयतां सर्वमाख्यास्ये यथावृत्तमिदं मम ॥ ६ ॥

हेमा नामाप्सरास्तात श्रुतपूर्वा यदि त्वया ।
दैवतैर्मम सा दत्ता पौलोमीव शतक्रतोः ॥ ७ ॥

तस्यां सक्तमनास्तात पञ्च वर्षशतान्यहम् ।
सा च दैवतकार्येण त्रयोदश समा गताः ॥ ८ ॥

वर्षे चतुर्दशं चैव ततो हेममयं पुरम् ।
वज्रवैडूर्यचित्रं च मायया निर्मितं मया ॥ ९ ॥

तत्राहमवसं दीनस्तया हीनः सुदुःखितः ।
तस्मात्पुराद्दुहितरं गृहीत्वा वनमागतः ॥ १० ॥

इयं ममात्मजा राजंस्तस्याः कुक्षौ विवर्धिता ।
भर्तारमनया सार्धमस्याः प्राप्तोऽस्मि मार्गितुम् ॥ ११ ॥

कन्यापितृत्वं दुःखं हि सर्वेषां मानकाङ्क्षिणाम् ।
कन्या हि द्वे कुले नित्यं संशये स्थाप्य तिष्ठति ॥ १२ ॥

द्वौ सुतौ हि मम त्वस्यां भार्यायां संबभूवतुः ।
मायावी प्रथमस्तात दुन्दुभिस्तदनन्तरः ॥ १३ ॥

एवं ते सर्वमाख्यातं यथातत्त्वेन पृच्छतः ।
त्वामिदानीं कथं तात जानीयां को भवानिति ॥ १४ ॥

एवमुक्तं तु तद्रक्षो विनीतमिदमब्रवीत् ।
अहं पौलस्त्यतनयो दशग्रीवश्च नामतः ॥
मुनेर्विश्रवसो यस्तु तृतीयो ब्रह्मणोऽभवत् ॥ १५ ॥

एवमुक्तस्तदा राम राक्षसेन्द्रेण दानवः ।
महर्षेस्तनयं ज्ञात्वा मयो हर्षमुपागतः ॥
दातुं दुहितरं तस्मै रोचयमास तत्र वै ॥ १६ ॥

करेण तु करं तस्या ग्राहयित्वा मयस्तदा ।
प्रहसन्प्राह दैत्येन्द्रो राक्षसेन्द्रमिदं वचः ॥ १७ ॥

इयं ममात्मजा राजन्हेमयाऽप्सरसा धृता ।
कन्या मन्दोदरी नाम पत्न्यर्थं प्रतिगृह्यताम् ॥ १८ ॥

बाढमित्येव तं राम दशग्रीवोऽभ्यभाषत ।
प्रज्वाल्य तत्र चैवाग्निमकरोत्पाणिसंग्रहम् ॥ १९ ॥

स हि तस्य मयो राम शापाभिज्ञस्तपोधनात् ।
विदित्वा तेन सा दत्ता तस्य पैतामहं कुलम् ॥ २० ॥

अमोघां तस्य शक्तिं च प्रददौ परमाद्भुताम् ।
परेण तपसा लब्धां जघ्निर्याँल्लक्ष्मणं यया ॥ २१ ॥

एवं स्वीकृतदारो वै लङ्काया ईश्वरः प्रभुः ।
गत्वा तु नगरीं भार्ये भ्रातृभ्यां समुपाहरत् ॥ २२ ॥

वैरोचनस्य दौहित्रीं वज्रज्वालेति नामतः ।
तां भार्यां कुम्भकर्णस्य रावणः समकल्पयत् ॥ २३ ॥
गन्धर्वराजस्य सुतां शैलूषस्य महात्मनः ।
सरमां नाम धर्मज्ञां लेभे भार्यां विभीषणः ॥ २४ ॥
तीरे तु सरसो वै तु सञ्जज्ञे मानसस्य हि ।
सरस्तदा मानसं तु ववृधे जलदागमे ॥ २५ ॥
मात्रा तु तस्याः कन्यायाः स्नेहेनाक्रन्दितं वचः ।
सरो मा वर्धयस्वेति ततः सा सरमाऽभवत् ॥ २६ ॥
एवं ते कृतदारा वै रेमिरे तत्र राक्षसाः ।
स्वां स्वां भार्यामुपागम्य गन्धर्वा इव नन्दने ॥ २७ ॥
ततो मन्दोदरी पुत्रं मेघनादमजीजनत् ।
स एष इन्द्रजिन्नाम युष्माभिरभिधीयते ॥ २८ ॥
जातमात्रेण हि पुरा तेन रावणसूनुना ।
रुदता सुमहान्मुक्तो नादो जलधरोपमः ॥ २९ ॥
जडीकृता च सा लङ्का तस्य नादेन राघव ।
पिता तस्याकरोन्नाम मेघनाद इति स्वयम् ॥ ३० ॥
सोऽवर्धत तदा राम रावणान्तःपुरे शुभे ।
रक्ष्यमाणो वरस्त्रीभिश्छन्नः काष्ठैरिवानलः ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे द्वादशः सर्गः ॥

## त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

### कुबेरदूतवधः ॥

अथ लोकेश्वरोत्सृष्टा तत्र कालेन केनचित् ।
निद्रा समभवत्तीव्रा कुम्भकर्णस्य रूपिणी ॥ १ ॥

ततो भ्रातरमासीनं कुम्भकर्णोऽब्रवीद्वचः ।
निद्रा मां बाधते राजन्कारयस्व ममालयम् ॥ २ ॥

विनियुक्तास्ततो राज्ञा शिल्पिनो विश्वकर्मवत् ।
अकुर्वन् कुम्भकर्णस्य कैलाससममालयम् ॥ ३ ॥

विस्तीर्णं योजनं शुभ्रं ततो द्विगुणमायतम् ।
दर्शनीयं निराबाधं कुम्भकर्णस्य चक्रिरे ॥ ४ ॥

स्फाटिकैः काञ्चनैश्चित्रैः स्तम्भैः सर्वत्र शोभितम् ।
वैडूर्यकृतसोपानं किङ्किणीजालकं तथा ॥ ५ ॥

दान्ततोरणविन्यस्तं वज्रस्फटिकवेदिकम् ।
मनोहरं सर्वसुखं कारयामास राक्षसः ॥
सर्वत्र सुखदं नित्यं मेरोः पुण्यां गुहामिव ॥ ६ ॥

तत्र निद्रासमाविष्टः कुम्भकर्णो महाबलः ।
बहून्यब्दसहस्राणि शयानो न प्रबुध्यते ॥ ७ ॥

निद्राभिभूते तु तदा कुम्भकर्णे दशाननः ।
देवर्षियक्षगन्धर्वान्सञ्जघ्ने हि निरङ्कुशः ॥ ८ ॥

उद्यानानि च चित्राणि नन्दनादीनि यानि च ।
तानि गत्वा सुसंक्रुद्धो भिनत्ति स्म दशाननः ॥ ९ ॥

नदीं गज इव क्रीडन्वृक्षान्वायुरिव क्षिपन् ।
नगान्वज्र इवोत्सृष्टो विध्वंसयति राक्षसः ॥ १० ॥

तथावृत्तं तु विज्ञाय दशग्रीवं धनेश्वरः ।
कुलानुरूपं धर्मज्ञो वृत्तं संस्मृत्य चात्मनः ॥ ११ ॥

सौभ्रात्रदर्शनार्थं तु दूतं वैश्रवणस्तदा ।
लङ्कां संप्रेषयामास दशग्रीवस्य वै हितम् ॥ १२ ॥

स गत्वा नगरीं लङ्कामाससाद विभीषणम् ।
मानितस्तेन धर्मेण पृष्टश्चागमनं प्रति ॥ १३ ॥

पृष्ट्वा च कुशलं राज्ञो ज्ञातीनां च विभीषणः ।
सभायां दर्शयामास तमासीनं दशाननम् ॥ १४ ॥

स दृष्ट्वा तत्र राजानं दीप्यमानं स्वतेजसा ।
जयेति वाचा संपूज्य तूष्णीं समभवत्तदा ॥ १५ ॥

तं तत्रोत्तमपर्यङ्के वरास्तरणशोभिते ।
उपविष्टं दशग्रीवं दूतो वाक्यमथाब्रवीत् ॥ १६ ॥

राजन्वदामि ते सर्वं भ्राता तव यदब्रवीत् ।
उभयोः सदृशं वीर वृत्तस्य च कुलस्य च ॥ १७ ॥

साधु पर्याप्तमेतावत्कृतश्चारित्रसंग्रहः ।
साधुधर्मे व्यवस्थानं क्रियतां यदि शक्यते ॥ १८ ॥

दृष्टं मे नन्दनं भग्नमृषयो निहताः श्रुताः ।
देवतानां समुद्योगस्त्वत्तो राजन्मम श्रुतः ॥ १९ ॥

निराकृतश्च बहुशस्त्वयाऽहं राक्षसाधिप ।
सापराधोऽपि बालो हि रक्षितव्यः स्वबान्धवैः ॥ २० ॥

अहं तु हिमवत्पृष्ठं गतो धर्ममुपासितुम् ।
रौद्रं वृत्तं समास्थाय नियतो नियतेन्द्रियः ॥ २१ ॥

तत्र देवो मया दृष्टः सह देव्या मया प्रभुः ।
सव्यं चक्षुर्मया दैवात्तत्र देव्यां निपातितम् ॥ २२ ॥

का स्त्रियं स्यादिति शुभा न खल्वन्येन हेतुना ।
रूपं ह्यनुपमं कृत्वा रुद्राणी तत्र तिष्ठति ॥ २३ ॥

देव्या दिव्यप्रभावेन दग्धं सव्यं ममेक्षणम् ।
रेणुध्वस्तमिव ज्योतिः पिङ्गलत्वमुपागतम् ॥ २४ ॥

ततोऽहमन्यद्विस्तीर्णं गत्वा तस्य गिरेस्तटम् ।
तूष्णीं वर्षशतान्यष्टौ समाधारं महाव्रतम् ॥ २५ ॥

समाप्ते नियमे तस्मिंस्तत्र देवो महेश्वरः ।
प्रीतः प्रीतेन मनसा प्राह वाक्यमिदं प्रभुः ॥ २६ ॥

प्रीतोऽस्मि तव धर्मज्ञ तपसा तेन सुव्रत ॥ २७ ॥

मया चैतद्व्रतं चीर्णं त्वया चैव धनाधिप ।
तृतीयः पुरुषो नास्ति यश्चरेद्व्रतमीदृशम् ॥
व्रतं सुनिश्चयं ह्येतन्मया ह्युत्पादितं पुरा ॥ २८ ॥

तत्सखित्वं मया सौम्य रोचयस्व धनेश्वर ॥ २९ ॥

तपसा निर्जितश्चैव सखा मम भवानघ ॥ ३० ॥

देव्या दग्धं प्रभावेन यच्च सव्यं तवेक्षणम् ।
पैङ्गल्यं यदवाप्तं हि देव्या रूपनिरीक्षणात् ॥
एकाक्षिपिङ्गलेत्येवं नाम स्थास्यति शाश्वतम् ॥ ३१ ॥

एवं तेन सखित्वं च प्राप्यानुज्ञां च शङ्करात् ।
आगतेन मया चायं श्रुतस्ते पापनिश्चयः ॥ ३२ ॥

तदधर्मिष्ठसंयोगान्निवर्त कुलदूषणात् ।
चिन्त्यते हि वधोपायः सर्षिसङ्घैः सुरैस्तव ॥ ३३ ॥

एवमुक्तो दशग्रीवः क्रुद्धः सरक्तलोचनः ।
हस्तौ दन्तांश्च संपीड्य वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ३४ ॥

विज्ञातं ते मया दूत वाक्यं यस्य प्रभाषसे ।
नैतत्त्वमसि नैवासौ भ्रात्रा येनासि चोदितः ॥ ३५ ॥

हितं नैष ममैतद्धि ब्रवीति धनरक्षकः ।
महेश्वरसखित्वं तु मूढ श्रावयसे किल ॥ ३६ ॥

न चेदं क्षमणीयं मे यदेतद्भाषितं त्वया ॥ ३७ ॥

न हन्तव्यो गुरुर्ज्येष्ठो ममायमिति मन्यते ।
तस्य त्विदानीं श्रुत्वा मे वाक्यमेषा कृता मतिः ॥
त्रीन्लोकानपि जेष्यामि बाहुवीर्यमुपाश्रितः ॥ ३८ ॥

एतन्मुहूर्तमेवाहं तस्यैकस्य तु वै कृते ।
चतुरो लोकपालांस्तान्नयिष्यामि यमक्षयम् ॥ ३९ ॥

एवमुक्त्वा तु लङ्केशो दूतं खड्गेन जघ्निवान् ।
ददौ भक्षयितुं ह्येनं राक्षसानां दुरात्मनाम् ॥ ४० ॥

एवं कृतस्वस्त्ययनो रथमारुह्य रावणः ।
त्रैलोक्यविजयाकाङ्क्षी ययौ यत्र धनेश्वरः ॥ ४१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे त्रयोदशः सर्गः ॥



## चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

यक्षराक्षसयुद्धम् ॥

ततस्तु सचिवैः सार्धं षड्भिर्नित्यं बलोद्धतैः ।
महोदरप्रहस्ताभ्यां मारीचशुकसारणैः ॥ १ ॥

धूम्राक्षेण च वीरेण नित्यं समरगृध्नुना ।
संवृतः प्रययौ श्रीमान्क्रोधाल्लोकान्दहन्निव ॥ २ ॥

पुराणि स नदीः शैलान्वनान्युपवनानि च ।
अतिक्रम्य मुहूर्तेन कैलासं गिरिमागमत् ॥ ३ ॥

सन्निविष्टं गिरौ तस्मिन्राक्षसेन्द्रं निशम्य तु ।
युद्धेऽत्यर्थकृतोत्साहं दुरात्मानं समन्त्रिणम् ॥ ४ ॥

यक्षा न शेकुः संस्थातुं प्रमुखे तस्य रक्षसः ।
राज्ञो भ्रातेति विज्ञाय गता यत्र धनेश्वरः ॥ ५ ॥

ते गत्वा सर्वमाचख्युर्भ्रातुस्तस्य चिकीर्षितम् ।
अनुज्ञाता ययुर्हृष्टा युद्धाय धनदेन ते ॥ ६ ॥

ततो बलानां संक्षोभो व्यवर्धत महोदधेः ।
तस्य नैर्ऋतराजस्य शैलं सञ्चालयन्निव ॥ ७ ॥

ततो युद्धं समभवद्यक्षराक्षससंकुलम् ।
व्यथिताश्चाभवंस्तत्र सचिवा राक्षसस्य ते ॥ ८ ॥

स दृष्ट्वा तादृशं सैन्यं दशग्रीवो निशाचरः ।
हर्षनादान्बहून्कृत्वा स क्रोधादभ्यधावत ॥ ९ ॥

ये तु ते राक्षसेन्द्रस्य सचिवा घोरविक्रमाः ।
तेषां सहस्रमेकैकं यक्षाणां समयोधयन् ॥ १० ॥

ततो गदाभिर्मुसलैरसिभिः शक्तितोमरैः ।
हन्यमानो दशग्रीवस्तत्सैन्यं समगाहत ॥ ११ ॥

स निरुच्छ्वासवत्तत्र वध्यमानो दशाननः ।
वर्षद्भिरिव जीमूतैर्धाराभिरवरुध्यत ॥ १२ ॥

न चकार व्यथां चैव यक्षशस्त्रैः समाहतः ।
महीधर इवाम्भोदैर्धाराशतसमुक्षितः ॥ १३ ॥

स दुरात्मा समुद्यम्य कालदण्डोपमां गदाम् ।
प्रविवेश ततः सैन्यं नयन्यक्षान्यमक्षयम् ॥ १४ ॥

स कक्षमिव विस्तीर्णं शुष्केन्धनमिवाकुलम् ।
वातेनाग्निरिवायत्तो यक्षसैन्यं ददाह तत् ॥ १५ ॥
तैस्तु तत्र महामात्यैर्महोदरशुकादिभिः ।
अल्पावशेषास्ते यक्षाः कृता वातैरिवाम्बुदाः ॥ १६ ॥
केचित्समाहता भग्नाः पतिताः समरक्षितौ ।
ओष्ठांश्च दशनैस्तीक्ष्णैरदशन्कुपिता रणे ॥ १७ ॥
श्रान्ताश्चान्योन्यमालिङ्ग्य भ्रष्टशस्त्रा रणाजिरे ।
सीदन्ति च तदा यक्षाः कूला इव जलेन ह ॥ १८ ॥
हतानां गच्छतां स्वर्गं युद्ध्यतां पृथिवीतले ।
प्रेक्षतामृषिसङ्घानां न बभूवान्तरं दिवि ॥ १९ ॥
एतस्मिन्नन्तरे राम विस्तीर्णबलवाहनः ।
प्रेषितो न्यपतद्यक्षो नाम्ना संयोधकण्टकः ॥ २० ॥
तेन चक्रेण मारीचो विष्णुनेव रणे हतः ।
पातितो भूतले शैलात्क्षीणपुण्य इव ग्रहः ॥ २१ ॥
ससंज्ञस्तु मुहूर्तेन स विश्रम्य निशाचरः ।
तं यक्षं योधयामास स च भग्नः प्रदुद्रुवे ॥ २२ ॥
ततः काञ्चनचित्राङ्गं वैडूर्यरजसोक्षितम् ।
मर्यादां प्रतिहाराणां तोरणान्तरमाविशत् ॥ २३ ॥
तं तु राजन्दशग्रीवं प्रविशन्तं निशाचरम् ।
सूर्यभानुरिति ख्यातो द्वारपालो न्यवारयत् ॥
यदा तु वारितो राम न व्यतिष्ठत्स राक्षसः ॥ २४ ॥

ततस्तोरणमुत्पाट्य तेन यक्षेण ताडितः ।
रुधिरं प्रस्रवन्भाति शैलो धातुस्रवैरिव ॥ २५ ॥

स शैलशिखराभेण तोरणेन समाहतः ।
जगाम न क्षतिं वीरो वरदानात्स्वयंभुवः ॥ २६ ॥

तेनैव तोरणेनाथ यक्षस्तेनाभिताडितः ।
नादृश्यत तदा यक्षो भस्मीकृततनुस्तदा ॥ २७ ॥

ततः प्रदुद्रुवुः सर्वे दृष्ट्वा रक्षःपराक्रमम् ।
ततो नदीर्गुहाश्चैव विविशुर्भयपीडिताः ॥ २८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे चतुर्दशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 21283 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 559



## पञ्चदशः सर्गः ॥ १५ ॥

### पुष्पकापहरणम् ॥

ततस्तांल्लुब्ध्य वित्रस्तान्यक्षेन्द्रांश्च सहस्रशः ।
स्वयमेव धनाध्यक्षो निर्जगाम रणं प्रति ॥ १ ॥

तत्र माणिचरो नाम यक्षः परमदुर्जयः ।
वृतो यक्षसहस्रैस्तु चतुर्भिः समयोधयत् ॥ २ ॥

ते गदामुसलप्रासैः शक्तितोमरमुद्गरैः ।
अभिघ्नन्तस्तदा यक्षा राक्षसान्समुपाद्रवन् ॥ ३ ॥

यक्षाणां तु प्रहस्तेन सहस्रं निहतं रणे ।
महोदरेण चानिन्द्यं सहस्रमपरं हतम् ॥ ४ ॥

क्रुद्धेन च तदा राजन्मारीचेन युयुत्सुना ।
निमेषान्तरमात्रेण द्वे सहस्रे निपातिते ॥ ५ ॥

धूम्राक्षेण समागम्य माणिभद्रो महारणे ।
मुसलेनोरसि क्रोधात्ताडितो न च कम्पितः ॥ ६ ॥

ततो गदां समाविध्य माणिभद्रेण राक्षसः ।
धूम्राक्षस्ताडितो मूर्ध्नि विह्वलः स पपात ह ॥ ७ ॥

धूम्राक्षं ताडितं दृष्ट्वा पतितं शोणितोक्षितम् ।
अभ्यधावत संग्रामे माणिभद्रं दशाननः ॥ ८ ॥

तं क्रुद्धमभिधावन्तं माणिभद्रो दशाननम् ।
शक्तिभिस्ताडयामास तिसृभिर्यक्षपुङ्गवः ॥ ९ ॥

ताडितो माणिभद्रस्य मुकुटे प्राहरद्रणे ।
तस्य तेन प्रहारेण मुकुटं पार्श्वमागतम् ॥ १० ॥

ततः संयुध्यमानेन विष्टब्धो न व्यकम्पत ।
तदाप्रभृति यक्षोऽसौ पार्श्वमौलिरिति स्मृतः ॥ ११ ॥

तस्मिंस्तु विमुखे यक्षे माणिभद्रे महात्मनि ।
सन्नादः सुमहान्राजंस्तस्मिञ्च्छैलेऽभ्यवर्तत ॥ १२ ॥

ततो दूरात्ददृशे धनाध्यक्षो गदाधरः ।
शुक्रमोष्ठपदाभ्यां च पद्मशङ्खसमावृतः ॥ १३ ॥

स दृष्ट्वा भ्रातरं सङ्ख्ये शापाद्विभ्रष्टगौरवम् ।
उवाच वचनं धीमान्युक्तं पैतामहे कुले ॥ १४ ॥

यन्मया वार्यमाणस्त्वं नावगच्छसि दुर्मते ।
पश्चादस्य फलं प्राप्य ज्ञास्यसे निरयं गतः ॥ १५ ॥

यो हि मोहाद्विषं पीत्वा नावगच्छति मानवः ।
स तस्य परिणामान्ते जानीते कर्मणः फलम् ॥ १६ ॥

देवता नाभिनन्दन्ति धर्मयुक्तेन केनचित् ।
येन त्वमीदृशं भावं नीतः सन्नावबुध्यसे ॥ १७ ॥

यो हि मातृपितृभ्रातृनाचार्यं चावमन्यते ।
स पश्यति फलं तस्य प्रेतराजवशं गतः ॥ १८ ॥

अध्रुवे हि शरीरे यो न करोति तपोर्जनम् ।
स पश्चात्तप्यते मूढो मृतो दृष्ट्वाऽऽत्मनो गतिम् ॥ १९ ॥

कस्यचिन्न हि दुर्बुद्धेश्छन्दतो जायते मतिः ।
यादृशं कुरुते कर्म तादृशं फलमश्नुते ॥ २० ॥

बुद्धिरूपं फलं पुत्राञ्च्छौर्यं धीरत्वमेव च ।
प्राप्नुवन्ति नराः सर्वे स्वकृतैः पूर्वकर्मभिः ॥ २१ ॥

एवं निरयगामी त्वं यस्य ते मतिरीदृशी ।
न त्वां समभिभाषिष्ये दुर्वृत्तस्यैष निर्णयः ॥ २२ ॥

एवमुक्तस्ततस्तेन तस्यामात्याः समाहिताः ।
संक्रुद्धान्राक्षसान्क्रूरान्निजघ्नुः संयुगे तदा ॥
मारीचप्रमुखाः सर्वे विमुखा विप्रदुद्रुवुः ॥ २३ ॥

ततस्तेन दशग्रीवो यक्षेन्द्रेण महात्मना ।
गदयाऽभिहतो मूर्ध्नि न च स्थानात्प्रकम्पितः ॥ २४ ॥
ततस्तौ राम निघ्नन्तौ तदाऽन्योन्यं महामृधे ।
न विह्वलौ न च श्रान्तौ बभूवतुरमर्षणौ ॥ २५ ॥
आग्नेयमस्त्रं तस्मै स मुमोच धनदस्तदा ।
राक्षसेन्द्रो वारुणेन तदस्त्रं प्रत्यवारयत् ॥ २६ ॥
ततो मायां प्रविष्टोऽसौ राक्षसीं राक्षसेश्वरः ।
जघान मूर्ध्नि धनदं व्याविध्य महतीं गदाम् ॥ २७ ॥
एवं स तेनाभिहतो विह्वलः शोणितोक्षितः ।
कृत्तमूल इवाशोको निपपात धनाधिपः ॥ २८ ॥
ततः पद्मादिभिस्तत्र निधिभिः स तदाऽऽवृतः ।
धनदोच्छ्वासितस्तैस्तु वनमानीय नन्दनम् ॥ २९ ॥
निर्जित्य राक्षसेन्द्रस्तं धनदं हृष्टमानसः ।
पुष्पकं तस्य जग्राह विमानं जयलक्षणम् ॥ ३० ॥
काञ्चनस्तम्भसंवीतं वैडूर्यमणितोरणम् ।
मुक्ताजालप्रतिच्छन्नं सर्वकामफलप्रदम् ॥ ३१ ॥
स तं राजा समारुह्य कामगं वीर्यनिर्जितम् ।
जित्वा वैश्रवणं देवं कैलासात्समवातरत् ॥ ३२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे पञ्चदशः सर्गः

आदितः श्लोकाः 21315 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 591

षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

रावणनामप्राप्तिः ॥

स जित्वा धनदं राम भ्रातरं राक्षसाधिपः ।
महासेनप्रसूतिं तद्ययौ शरवणं महत् ॥ १ ॥

अथापश्यद्दशग्रीवो रौक्मं शरवणं महत् ।
गभस्तिजालसंवीतं द्वितीयमिव भास्करम् ॥ २ ॥

स पर्वतं समारुह्य कञ्चिद्रम्यवनान्तरम् ।
अपश्यत्पुष्पकं तत्र राम विष्टम्भितं तदा ॥ ३ ॥

विष्टब्धं पुष्पकं दृष्ट्वा ह्यगमं कामगं कृतम् ।
अचिन्तयद्राक्षसेन्द्रः सचिवैस्तैः समावृतः ॥ ४ ॥

किंनिमित्तं चेच्छया मे नेदं गच्छति पुष्पकम् ।
पर्वतस्योपरिष्टस्य कर्मेदं कस्यचिद्भवेत् ॥ ५ ॥

ततोऽब्रवीत्तदा राम मारीचो बुद्धिकोविदः ।
नेदं निष्कारणं राजन्पुष्पकं यन्न गच्छति ॥ ६ ॥

अथ वा पुष्पकमिदं धनदान्नान्यवाहनम् ।
अतो निष्पन्दमभवद्धनाध्यक्षविनाकृतम् ॥ ७ ॥

ततः पार्श्वमुपागम्य भवस्यानुचरोऽब्रवीत् ।
नन्दीश्वरो वचश्चेदं राक्षसेन्द्रमशङ्कितः ॥
निवर्तस्व दशग्रीव शैले क्रीडति शङ्करः ॥ ८ ॥

सुपर्णनागयक्षाणां देवगन्धर्वरक्षसाम् ।
सर्वेषामेव भूतानामगम्यः पर्वतः कृतः ॥
तन्निवर्तस्व दुर्बुद्धे मा विनाशमवाप्स्यसि ॥ ९ ॥
रोषात्तु ताम्रनयनः पुष्पकादवरुह्य सः ।
कोऽयं शङ्कर इत्युक्त्वा शैलमूलमुपागतः ॥ १० ॥
सोऽपश्यन्नन्दिनं तत्र देवस्यादूरतः स्थितम् ।
दीप्तं शूलमवष्टभ्य द्वितीयमिव शङ्करम् ॥ ११ ॥
तं दृष्ट्वा वानरमुखमवज्ञाय स राक्षसः ।
प्रहासं मुमुचे तत्र सतोय इव तोयदः ॥ १२ ॥
तं क्रुद्धो भगवान्नन्दी शङ्करस्यापरा तनुः ।
अब्रवीत्तत्र तद्रक्षो दशाननमुपस्थितम् ॥ १३ ॥
यस्माद्वानरमूर्तिं मां दृष्ट्वा राक्षस दुर्मते ।
मौर्ख्यात्त्वमवजानीषे परिहासं च मुञ्चसि ॥ १४ ॥
तस्मान्मद्रूपसंपन्ना मद्वीर्यसमतेजसः ।
उत्पत्स्यन्ति वधार्थं हि कुलस्य तव वानराः ॥ १५ ॥
किं त्विदानीं मया शक्यं हन्तुं त्वां हे निशाचर ।
न हन्तव्यो हतस्त्वं हि पूर्वमेव स्वकर्मभिः॥ १६ ॥
अचिन्तयित्वा स तदा नन्दिवाक्यं निशाचरः ।
पर्वतं तु समासाद्य वाक्यमेतदुवाच ह ॥ १७ ॥
पुष्पकस्य गतिश्छिन्ना यत्कृते मम गच्छतः ।
तमिमं शैलमुन्मूलं करोमि तव गोपते ॥ १८ ॥

केन प्रभावेन भवो नित्यं क्रीडति राजवत् ।
विज्ञातव्यं न जानीते भयस्थानमुपस्थितम् ॥ १९ ॥

एवमुक्त्वा ततो राम भुजान्विक्षिप्य पर्वते ।
तोलयामास तं शैलं समृगव्यालपादपम् ॥ २० ॥

चालनात्पर्वतस्यैव गणा देवस्य कम्पिताः ।
चचाल पार्वती चापि तदाऽऽश्लिष्टा महेश्वरम् ॥ २१ ॥

ततो राम महादेवो देवानां प्रवरो हरः ।
पादाङ्गुष्ठेन तं शैलं पीडयामास लीलया ॥ २२ ॥

पीडितास्तु ततस्तस्य शैलस्याधोगता भुजाः ।
विस्मिताश्चाभवंस्तत्र सचिवास्तस्य रक्षसः ॥ २३ ॥

तेन रक्षोधिपेनात्र वेदनार्तभुजेन वै ।
मुक्तो विरावः सुमहान् त्रैलोक्यं येन पूरितम् ॥ २४ ॥

मेनिरे वज्रनिष्पेषं तस्यामात्या युगक्षये ।
तदाऽऽसनात्प्रचलिता देवा इन्द्रपुरोगमाः ॥ २५ ॥

समुद्राश्चापि संक्षुब्धाश्चलिताश्चापि पर्वताः ।
यक्षा विद्याधराः सिद्धाः किमेतदिति चाब्रुवन् ॥ २६ ॥

अथ ते मन्त्रिणस्तस्य विक्रोशन्तमथाब्रुवन् ।
तोषयस्व महादेवं नीलकण्ठमुमापतिम् ॥ २७ ॥

तमृते शरणं नान्यं पश्यामोऽत्र दशानन ।
स्तुतिभिः प्रणतो भूत्वा तमेव शरणं व्रज ॥
कृपालुः शङ्करस्तुष्टः प्रसादं ते विधास्यति ॥ २८ ॥

एवमुक्तस्तदाऽमात्यैस्तुष्टाव वृषभध्वजम् ।
सामभिर्विविधैः स्तोत्रैः प्रणम्य स दशाननः ॥
कालो महान्नरश्रेष्ठ रुवतो रक्षसो गतः ॥ २९ ॥

ततः प्रीतो महादेवः शैलाग्रे विष्ठितः प्रभुः ।
मुक्त्वा चास्य भुजान्राम प्राह वाक्यं दशाननम् ॥ ३० ॥

प्रीतोऽस्मि तव वीर्यस्य शौण्डीर्याच्च दशानन ।
शैलाक्रान्तेन यो मुक्तस्त्वया रावः सुदारुणः ॥ ३१ ॥

यस्माल्लोकत्रयं चैतद्रावितं भयमागतम् ।
तस्मात्त्वं रावणो नाम नाम्ना तेन भविष्यसि ॥ ३२ ॥

देवता मानुषा यक्षा ये चान्ये जगतीतले ।
एवं त्वामभिधास्यन्ति रावणं लोकरावणम् ॥ ३३ ॥

गच्छ पौलस्त्य विस्रब्धं पथा येन त्वमिच्छसि ।
मया चैवाभ्यनुज्ञातो राक्षसाधिप गम्यताम् ॥ ३४ ॥

एवमुक्तस्तु लङ्केशः शंभुना स्वयमब्रवीत् ।
प्रीतो यदि महादेव वरं मे देहि याचतः ॥ ३५ ॥

अवध्यत्वं मया प्राप्तं देवगन्धर्वदानवैः ।
राक्षसैर्गुह्यकैर्नागैर्ये चान्ये बलवत्तराः ॥ ३६ ॥

मानुषान्न गणे देव स्वल्पास्ते मम संमताः ।
दीर्घमायुश्च मे प्राप्तं ब्रह्मणस्त्रिपुरान्तक ॥
वाञ्छितं चायुषः शेषं शस्त्रं त्वं च प्रयच्छ मे ॥ ३७ ॥

एवमुक्तस्ततस्तेन रावणेन स शङ्करः ।
ददौ खड्गं महादीप्तं चन्द्रहासमिति श्रुतम् ॥
आयुषश्चावशेषं च स्थित्वा भूतपतिस्तदा ॥ ३८ ॥
दत्त्वोवाच ततः शम्भुर्नावज्ञेयमिदं त्वया ।
अवज्ञातं यदि हि ते मामेवैष्यत्यसंशयः ॥ ३९ ॥
एवं महेश्वरेणैव कृतनामा स रावणः ।
अभिवाद्य महादेवमारुरोहाथ पुष्पकम् ॥ ४० ॥
ततो महीतले राम परिचक्राम रावणः ।
क्षत्रियान्सुमहावीर्यान्बाधमान इतस्ततः ॥ ४१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे षोडशः सर्गः ॥



## सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

वेदवतीशापः ॥

अथ राजन्महाबाहुर्विचरन्स महीतले ।
हिमवत्सानुमासाद्य परिचक्राम रावणः ॥ १ ॥
तत्रापश्यत्स वै कन्यां कृष्णाजिनजटाधराम् ।
आर्षेण विधिना युक्तां तपन्तीं देवतामिव ॥ २ ॥
स दृष्ट्वा रूपसंपन्नां कन्यां तां सुमहाव्रताम् ।
काममोहपरीतात्मा पप्रच्छ प्रहसन्निव ॥ ३ ॥

किमिदं वर्तसे भद्रे विरुद्धं यौवनस्य ते ।
न हि युक्ता तवैतस्य रूपस्य तपसः क्रिया ॥ ४ ॥

रूपं तेऽनुपमं भीरु कामोन्मादकरं नृणाम् ।
न युक्तं तपसि स्थातुं निर्गतो ह्येष निर्णयः ॥ ५ ॥

कस्यासि दुहिता भद्रे को वा भर्ता वरानने ।
केन संभुज्यसे भीरु स नरः पुण्यभाग्भुवि ॥
पृच्छतः शंस मे सर्वं कस्य हेतोः श्रमस्तव ॥ ६ ॥

एवमुक्ता तु सा कन्या रावणेन यशस्विनी ।
अब्रवीद्विधिवत्कृत्वा तस्यातिथ्यं तपोधना ॥ ७ ॥

कुशध्वजो मम पिता ब्रह्मर्षिरमितप्रभः ।
बृहस्पतिसुतः श्रीमान्बुद्ध्या तुल्यो बृहस्पतेः ॥ ८ ॥

तस्याहं कुर्वतो नित्यं वेदाभ्यासं महात्मनः ।
संभूता वाङ्मयी कन्या नाम्ना वेदवती स्मृता ॥ ९ ॥

ततो देवाः सगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः ।
तेऽपि गत्वा हि पितरं वरणं रोचयन्ति मे ॥ १० ॥

न च मां स पिता तेभ्यो दत्तवान्राक्षसर्षभ ।
कारणं तद्वदिष्यामि निशाचर निशामय ॥ ११ ॥

पितुस्तु मम जामाता विष्णुः किल सुरेश्वरः ।
अभिप्रेतस्त्रिलोकेशस्तस्मान्नान्यस्य मे पिता ॥ १२ ॥

दातुमिच्छति तस्मै तु तच्छ्रुत्वा बलदर्पितः ।
शम्भुर्नाम ततो राजा दैत्यानां कुपितोऽभवत् ॥ १३ ॥

तेन रात्रौ शयानो मे पिता पापेन हिंसितः ॥ १४ ॥

ततो मे जननी दीना तच्छरीरं पितुर्मम ।
परिष्वज्य महाभागा प्रविष्टा हव्यवाहनम् ॥ १५ ॥

ततो मनोरथं सत्यं पितुर्नारायणं प्रति ।
करोमीति तमेवाहं हृदयेन समुद्वहे ॥ १६ ॥

इति प्रतिज्ञामारुह्य चरामि विपुलं तपः ।
एतत्ते सर्वमाख्यातं मया राक्षसपुङ्गव ॥ १७ ॥

नारायणो मम पतिर्न त्वन्यः पुरुषोत्तमात् ।
आश्रये नियमं घोरं नारायणपरीप्सया ॥ १८ ॥

विज्ञातस्त्वं हि मे राजन्गच्छ पौलस्त्यनन्दन ।
जानामि तपसा सर्वं त्रैलोक्ये यद्धि वर्तते ॥ १९ ॥

सोऽब्रवीद्रावणो भूयस्तां कन्यां सुमहाव्रताम् ।
अवरुह्य विमानाग्रात्कन्दर्पशरपीडितः ॥ २० ॥

अवलिप्ताऽसि सुश्रोणि यस्यास्ते मतिरीदृशी ।
वृद्धानां मृगशावाक्षि भ्राजते धर्मसंग्रहः ॥ २१ ॥

त्वं सर्वगुणसम्पन्ना नार्हसे वक्तुमीदृशम् ।
त्रैलोक्यसुन्दरी भीरु यौवनं तेऽतिवर्तते ॥ २२ ॥

अहं लङ्कापतिर्भद्रे दशग्रीव इति श्रुतः ।
तस्य मे भव भार्या त्वं भुङ्क्ष्व भोगान्यथेप्सितान् ॥

कश्च तावदसौ यं त्वं विष्णुरित्यभिभाषसे ।
वीर्येण तपसा चैव भोगेन च बलेन च ॥
न मया स समो भद्रे यं त्वं कामयसेऽङ्गने ॥ २४ ॥

इत्युक्तवति तस्मिंस्तु राक्षसे वेदवत्यथ ।
मा मैवमिति सा कन्या तमुवाच निशाचरम् ॥ २५ ॥

त्रैलोक्याधिपतिं विष्णुं सर्वलोकनमस्कृतम् ।
त्वदृते राक्षसेन्द्रान्यः कोऽवमन्येत बुद्धिमान् ॥ २६ ॥

एवमुक्तस्तया तत्र वेदवत्या निशाचरः ।
मूर्धजेषु तदा कन्यां कराग्रेण परामृशत् ॥ २७ ॥

ततो वेदवती क्रुद्धा केशान्हस्तेन साऽच्छिनत् ।
असिर्भूत्वा करस्तस्याः केशांश्छिन्नांस्तदाऽकरोत् ॥

सा ज्वलन्तीव रोषेण दहन्तीव निशाचरम् ।
उवाचाग्निं समाधाय मरणाय कृतत्वरा ॥ २९ ॥

धर्षितायास्त्वयाऽनार्य न मे जीवितमिष्यते ।
रक्षस्तस्मात्प्रवेक्ष्यामि पश्यतस्ते हुताशनम् ॥ ३० ॥

यस्मात्तु धर्षिता चाहं त्वया पापात्मना वने ।
तस्मात्तव वधार्थं हि समुत्पत्स्ये ह्यहं पुनः ॥ ३१ ॥

न हि शक्यं स्त्रिया हन्तुं पुरुषः पापनिश्चयः ।
शापे त्वयि मयोत्सृष्टे तपसश्च व्ययो भवेत् ॥ ३२ ॥

यदि त्वस्ति मया किञ्चित्कृतं दत्तं हुतं तथा ।
तस्मात्त्वयानिजा साध्वी भवेयं धर्मिणः सुता ॥ ३३ ॥

एवमुक्त्वा प्रविष्टा सा ज्वलितं जातवेदसम् ।
पपात च दिवो दिव्या पुष्पवृष्टिः समन्ततः ॥ ३४ ॥

सैषा जनकराजस्य प्रसूता तनया प्रभो ।
तव भार्या महाबाहो विष्णुस्त्वं हि सनातनः ॥ ३५ ॥

पूर्वं क्रोधाहितः शत्रुर्यया ऽसौ निहतस्तथा ।
उपाश्रयित्वा शैलाभस्तव वीर्यममानुषम् ॥ ३६ ॥

एवमेषा महाभागा मर्त्येषूत्पत्स्यते पुनः ।
क्षेत्रे हलमुखोत्कृष्टे वेद्यामग्निशिखोपमा ॥ ३७ ॥

एषा वेदवती नाम पूर्वमासीत्कृते युगे ।
त्रेतायुगमनुप्राप्य वधार्थं तस्य रक्षसः ॥ ३८ ॥

उत्पन्ना मैथिलकुले जनकस्य महात्मनः
सीतोत्पन्ना तु सीतेति मानुषैः पुनरुच्यते ॥ ३९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे सप्तदशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 21395 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 671

## अष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

### मरुत्तविजयः ॥

प्रविष्टायां हुताशं तु वेदवत्यां स रावणः ।
पुष्पकं तु समारुह्य परिचक्राम मेदिनीम् ॥ १ ॥

ततो मरुत्तं नृपतिं यजन्तं सह दैवतैः ।
उशीरबीजमासाद्य ददर्श स तु रावणः ॥ २ ॥

संवर्तो नाम ब्रह्मर्षिः साक्षाद्भ्राता बृहस्पतेः ।
याजयामास धर्मज्ञः सर्वैर्देवगणैर्वृतः ॥ ३ ॥

दृष्ट्वा देवास्तु तद्यज्ञो वरदानेन दुर्जयम् ।
तिर्यग्योनिं समाविष्टास्तस्य दर्शनभीरवः ॥ ४ ॥

इन्द्रो मयूरः संवृत्तो धर्मराजस्तु वायसः ।
कृकलासो धनाध्यक्षो हंसश्च वरुणोऽभवत् ॥ ५ ॥

अन्येष्वपि गतेष्वेवं देवेष्वरिनिषूदन ।
रावणः प्राविशद्यज्ञं सारमेय इवाशुचिः ॥ ६ ॥

तं च राजा समासाद्य रावणो राक्षसाधिपः ।
प्राह युद्धं प्रयच्छेति निर्जितोऽस्मीति वा वद ॥ ७ ॥

ततो मरुत्तो नृपतिः को भवानित्युवाच तम् ।
अपहासं ततो मुक्त्वा रावणो वाक्यमब्रवीत् ॥ ८ ॥

अकुतूहलभावेन प्रीतोऽस्मि तव पार्थिव ।
धनदस्यानुजं यो मां नावगच्छसि रावणम् ॥ ९ ॥

त्रिषु लोकेषु कोऽन्योऽस्ति यो न जानाति मे बलम् ।
भ्रातरं येन निर्जित्य विमानमिदमाहृतम् ॥ १० ॥

ततो मरुत्तः स नृपस्तं रावणमथाब्रवीत् ॥ ११ ॥

धन्यः खलु भवान्येन ज्येष्ठो भ्राता रणे जितः ।
न त्वया सदृशः श्लाघ्यस्त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥ १२ ॥

कं त्वं प्राकेवलं धर्मं चरित्वा लब्धवान्वरम् ।
श्रुतपूर्वं हि न मया भाषसे यादृशं स्वयम् ॥ १३ ॥

तिष्ठेदानीं न मे जीवन्प्रतियास्यसि दुर्मते ।
अद्य त्वां निशितैर्बाणैः प्रेषयामि यमक्षयम् ॥ १४ ॥

ततः शरासनं गृह्य सायकांश्च नराधिपः ।
रणाय निर्ययौ क्रुद्धः संवर्तो मार्गमावृणोत् ॥ १५ ॥

सोऽब्रवीत्स्नेहसंयुक्तं मरुत्तं तं महानृषिः ।
श्रोतव्यं यदि मद्वाक्यं संप्रहारो न ते क्षमः ॥ १६ ॥

माहेश्वरमिदं सत्रमलमास्तं कुलं दहेत् ॥ १७ ॥

दीक्षितस्य कुतो युद्धं क्रोधित्वं दीक्षिते कुतः ।
संशयश्च जये नित्यं राक्षसश्च सुदुर्जयः ॥ १८ ॥

स निवृत्तो गुरोर्वाक्यान्मरुत्तः पृथिवीपतिः ।
विसृज्य सशरं चापं स्वस्थो मखमुखोऽभवत् ॥ १९ ॥

ततस्तं निर्जितं मत्वा घोषयामास वै शुकः ।
रावणो जयतीत्युच्चैर्हर्षान्नादं विमुक्तवान् ॥ २० ॥

तान्भक्षयित्वा तत्रस्थान्महर्षीन्यज्ञमागतान् ।
वितृप्तो रुधिरैस्तेषां पुनः सम्प्रययौ महीम् ॥ २१ ॥

रावणे तु गते देवाः सेन्द्राश्चैव दिवौकसः ।
ततः स्वां योनिमासाद्य तानि सत्त्वानि चाब्रुवन् ॥ २२ ॥

हर्षात्तदाऽब्रवीदिन्द्रो मयूरं नीलबर्हिणम् ।
प्रीतोऽस्मि तव धर्मज्ञ उपकाराद्विहङ्गम ॥ २३ ॥

मम नेत्रसहस्रं तु यच्चद्भर्हं भविष्यति ।
वर्षमाणे मयि मुदं प्राप्स्यसे प्रीतिलक्षणाम् ॥
एवमिन्द्रो वरं प्रादान्मयूरस्य सुरेश्वरः ॥ २४ ॥

नीलाः किल पुरा बर्हा मयूराणां नराधिप ।
सुराधिपाद्वरं प्राप्य गताः सर्वे विचित्रताम् ॥ २५ ॥

धर्मराजोऽब्रवीद्राम प्राग्वंशे वायसं स्थितम् ।
पक्षिस्तवास्मि सुप्रीतः प्रीतस्य वचनं शृणु ॥ २६ ॥

यथाऽन्यैर्विविधै रोगैः पीड्यन्ते प्राणिनो मया ।
ते न ते प्रभविष्यन्ति मयि प्रीते न संशयः ॥ २७ ॥

मृत्युतस्ते भयं नास्ति वरान्मम विहङ्गम ।
यावत्त्वां न वधिष्यन्ति नरास्तावद्भविष्यसि ॥ २८ ॥

एते मद्विषयस्था वै मानवाः क्षुद्भयार्दिताः ।
त्वयि भुक्ते तु तृप्तास्ते भविष्यन्ति सबान्धवाः ॥ २९ ॥

वरुणस्त्वब्रवीद्धंसं गङ्गातोयविहारिणम् ।
श्रूयतां प्रीतिसंयुक्तं वचः पत्ररथेश्वर ॥ ३० ॥

वर्णो मनोहरः सौम्य चन्द्रमण्डलसन्निभः ।
भविष्यति तवोदग्रः शुद्धफेनसमप्रभः ॥ ३१ ॥

मच्छरीरं समासाद्य कान्तो नित्यं भविष्यसि ।
प्राप्स्यसे चातुलां प्रीतिमेतन्मे प्रीतिलक्षणम् ॥ ३२ ॥

हंसानां हि पुरा राम नीलवर्णः सपाण्डुरः ।
पक्षा नीलाग्रसंवीताः क्रोडाः शष्पाग्रनिर्मलाः ॥ ३३ ॥

अथाब्रवीद्वैश्रवणः ककलासं गिरौ स्थितम् ।
हैरण्यं सम्प्रयच्छामि वर्णं प्रीतस्तवाप्यहम् ॥ ३४ ॥

सद्रव्यं च शिरो नित्यं भविष्यति तवाक्षयम् ।
एष काञ्चनको वर्णो मत्प्रीत्या ते भविष्यति ॥ ३५ ॥

एवं दत्त्वा वरांस्तेभ्यस्तस्मिन्यज्ञोत्सवे सुराः ।
निवृत्ताः सह राज्ञा ते पुनः स्वभवनं गताः ॥ ३६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे अष्टादशः सर्गः ॥

## एकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥

### अनरण्यशापः ॥

अथ जित्वा मरुत्तं स प्रययौ राक्षसाधिपः ।
नगराणि नरेन्द्राणां युद्धकाङ्क्षी दशाननः ॥ १ ॥

समासाद्य तु राजेन्द्रान्महेन्द्रवरुणोपमान् ।
अब्रवीद्राक्षसेन्द्रस्तु युद्धं मे दीयतामिति ॥ २ ॥

निर्जिताः स्मेति वा ब्रूत एष मे हि सुनिश्चयः ।
अन्यथा कुर्वतामेवं मोक्षो नैवोपपद्यते ॥ ३ ॥

ततस्त्वभीरवः प्राज्ञाः पार्थिवा धर्मनिश्चयाः ।
मन्त्रयित्वा ततोऽन्योन्यं राजानः सुमहाबलाः ॥
निर्जिताः स्मेत्यभाषन्त ज्ञात्वा वरबलं रिपोः ॥ ४ ॥

दुष्यन्तः सुरथो गाधिर्गयो राजा पुरूरवाः ।
एते सर्वेऽब्रुवंस्तात निर्जिताः स्मेति पार्थिवाः ॥ ५ ॥

अथायोध्यां समासाद्य रावणो राक्षसाधिपः ।
सुगुप्तामनरण्येन शक्रेणेवामरावतीम् ॥ ६ ॥

स तं पुरुषशार्दूलं पुरन्दरसमं बले ।
प्राह राजानमासाद्य युद्धं देहीति रावणः ॥
निर्जितोऽस्मीति वा ब्रूहि त्वमेवं मम शासनम् ॥ ७ ॥

अयोध्याधिपतिस्तस्य श्रुत्वा चावमतं वचः ।
अनरण्यस्तु संक्रुद्धो राक्षसेन्द्रमथाब्रवीत् ॥ ८ ॥

दीयते द्वन्द्वयुद्धं ते राक्षसाधिपते मया ।
सन्तिष्ठ क्षिप्रमायत्तो भव चैवं भवाम्यहम् ॥ ९ ॥

अथ पूर्वं श्रुतार्थेन निर्जितं सुमहद्बलम् ।
निष्क्रामत्तन्नरेन्द्रस्य बलं रक्षोवधोद्यतम् ॥ १० ॥

नागानां दशसाहस्रं वाजिनां नियुतं तथा ।
रथानां बहुसाहस्रं पत्तीनां च नरोत्तम ॥
महीं सञ्च्छाद्य निष्क्रान्तं सपदातिरथं रणे ॥ ११ ॥

ततः प्रवृत्तं सुमहद्युद्धं युद्धविशारद ।
अनरण्यस्य नृपते राक्षसेन्द्रस्य चाद्भुतम् ॥ १२ ॥

तद्रावणबलं प्राप्य बलं तस्य महीपतेः ।
प्राणश्यत तदा सर्वं हव्यं हुतमिवानले ॥ १३ ॥

युद्ध्वा च सुचिरं कालं कृत्वा विक्रममुत्तमम् ।
प्रज्वलन्तं समासाद्य क्षिप्रमेवावशेषितम् ॥ १४ ॥

प्राविशत्सङ्कुलं तत्र शलभा इव पावकम् ॥ १५ ॥

सोऽपश्यत्तन्नरेन्द्रस्तु नश्यमानं महाबलम् ।
महार्णवं समासाद्य आपगानां शतं यथा ॥ १६ ॥

ततः शक्रधनुःप्रख्यं धनुर्विस्फारयन्स्वयम् ।
आससाद नरेन्द्रस्तं रावणं क्रोधमूर्च्छितः ॥ १७ ॥

ततो बाणशतान्यष्टौ पातयामास मूर्धनि ।
तस्य राक्षसराजस्य इक्ष्वाकुकुलनन्दनः ॥ १८ ॥

तस्य बाणाः पतन्तस्ते चक्रिरे न क्षतिं क्वचित् ।
वारिधारा इवाभ्रेभ्यः पतन्त्यो गिरिमूर्धनि ॥ १९ ॥

ततो राक्षसराजेन क्रुद्धेन नृपतिस्तदा ।
तलेनाभिहतो मूर्ध्नि स रथान्निपपात ह ॥ २० ॥

स राजा पतितो भूमौ विह्वलाङ्गः प्रवेपितः ।
वज्रदग्ध इवारण्ये सालो निपतितो महान् ॥ २१ ॥

तं प्रहस्याब्रवीद्रक्ष इक्ष्वाकुं पृथिवीपतिम् ।
किमिदानीं फलं प्राप्तं त्वया मां प्रतियुध्यता ॥ २२ ॥

त्रैलोक्ये नास्ति यो द्वन्द्वं मम दद्यान्नराधिप ।
शङ्के प्रसक्तो भोगेषु न शृणोषि बलं मम ॥ २३ ॥

तस्यैवं ब्रुवतो राजा मन्दासुर्वाक्यमब्रवीत् ।
किं शक्यमिह कर्तुं वै कालो हि दुरतिक्रमः ॥ २४ ॥

न ह्यहं निर्जितो रक्षस्त्वया चात्मप्रशंसिना ।
कालेनैव विपन्नोऽहं हेतुभूतस्तु मे भवान् ॥ २५ ॥

किं त्विदानीं मया शक्यं कर्तुं प्राणपरिक्षये ।
न ह्यहं विमुखो रक्षो युध्यमानस्त्वया हतः ॥ २६ ॥

इक्ष्वाकुपरिभावित्वाद्वचो वक्ष्यामि राक्षस ।
यदि दत्तं यदि हुतं यदि मे सुकृतं तपः ॥
यदि गुप्ताः प्रजाः सम्यक्तदा सत्यं वचोऽस्तु मे ॥ २७ ॥

उत्पत्स्यते कुले ह्यस्मिन्निक्ष्वाकूणां महात्मनाम् ।
रामो दाशरथिर्नाम यस्ते प्राणान्हरिष्यति ॥ २८ ॥

ततो जलधरोदग्रस्ताडितो देवदुन्दुभिः ।
तस्मिन्नुदाहृते शापे पुष्पवृष्टिश्च खाच्च्युता ॥ २९ ॥

ततः स राजा राजेन्द्र गतः स्थानं त्रिविष्टपम् ।
स्वर्गते च नृपे तस्मिन्राक्षसः सोऽपसर्पत ॥ ३० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे एकोनविंशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 21461 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 737



## विंशः सर्गः ॥ २० ॥

नारदरावणसंवादः ॥

ततो वित्रासयन्मर्त्यान्पृथिव्यां राक्षसाधिपः ।
आससाद घने तस्मिन्नारदं मुनिपुङ्गवम् ॥ १ ॥

तस्याभिवादनं कृत्वा दशग्रीवो निशाचरः ।
अब्रवीत्कुशलं दृष्ट्वा हेतुमागमनस्य च ॥ २ ॥

नारदस्तु महातेजा देवर्षिरमितप्रभः ।
अब्रवीन्मेघपृष्ठस्थो रावणं पुष्पके स्थितम् ॥ ३ ॥

राक्षसाधिपते सौम्य तिष्ठ विश्रवसः सुत ।
प्रीतोऽस्म्यभिजनोपेतविक्रमैरूर्जितैस्तव ॥ ४ ॥

विष्णुना दैत्यघातैश्च तार्क्ष्यस्योरगधर्षणैः ।
त्वया समं विमर्दैश्च भृशं हि परितोषितः ॥ ५ ॥

किञ्चिद्वक्ष्यामि तावत्ते श्रोतव्यं श्रोष्यसे यदि ।
तन्मे निगदतस्तात समाधिं श्रवणे कुरु ॥ ६ ॥

किमयं वध्यते तात त्वयाऽवध्येन दैवतैः ।
हत एव ह्ययं लोको यदा मृत्युवशं गतः ॥ ७ ॥

नित्यं श्रेयसि संमूढं महद्भिर्व्यसनैर्वृतम् ।
हन्यात्कस्तादृशं लोकं जराव्याधिशतैर्युतम् ॥ ८ ॥

तैस्तैरनिष्टोपगमैरजस्रं यत्र कुत्र कः ।
मतिमान्मानुषे लोके युद्धेन प्रणयी भवेत् ॥ ९ ॥

क्षीयमाणं दैवहतं क्षुत्पिपासाजरादिभिः ।
विषादशोकसंमूढं लोकं त्वं क्षपयस्व मा ॥ १० ॥

पश्य तावन्महाबाहो राक्षसेश्वर मानुषम् ।
लोकमेनं विचित्रार्थं यस्य न ज्ञायते गतिः ॥ ११ ॥

क्वचिद्वादित्रनृत्यादि सेव्यते मुदितैर्जनैः ।
रुद्यते चापरैरार्तैर्धाराश्रुनयनाननैः ॥ १२ ॥

मातापितृसुतस्नेहैर्भार्याबन्धुमनोरमैः ।
मोहितोऽयं जनो ध्वस्तः क्लेशं स्वं नावबुध्यते ॥ १३ ॥

अलमेनं परिक्लिश्य लोकं मोहनिराकृतम् ।
जित एव त्वया सौम्य मर्त्यलोको न संशयः ॥ १४ ॥

एवमुक्तस्तु लङ्केशो दीप्यमानं स्वतेजसा ।
अब्रवीन्नारदं तत्र संप्रहस्याभिवाद्य च ॥ १५ ॥

महर्षे देवगन्धर्वविहार समरप्रिय ।
अहं समुद्यतो गन्तुं विजयार्थं रसातलम् ॥ १६ ॥

ततो लोकत्रयं जित्वा स्थाप्य नागान्सुरान्वशे ।
समुद्रममृतार्थं च मथिष्यामि रसालयम् ॥ १७ ॥

अथाब्रवीद्दशग्रीवं नारदो भगवानृषिः ।
क्व खल्विदानीं मार्गेण त्वया ह्यन्येन गम्यते ॥ १८ ॥

अयं खलु सुदुर्गम्यः प्रेतराजपुरं प्रति ।
मार्गो गच्छति दुर्धर्षो यमस्यामिततेजसः ॥ १९ ॥

स तु शारदमेघाभं हासं मुक्त्वा दशाननः ।
उवाच कृतमित्येव वचनं चेदमब्रवीत् ॥ २० ॥

तस्मादेवमहं ब्रह्मन्वैवस्वतवधोद्यतः ।
गच्छामि दक्षिणामाशां यत्र सूर्यात्मजो नृपः ॥ २१ ॥

मया हि भगवन्क्रोधात्प्रतिज्ञातं रणार्थिना ।
अवजेष्यामि चतुरो लोकपालानिति प्रभो ॥ २२ ॥

तदिह प्रस्थितोऽहं वै प्रेतराजपुरं प्रति ।
प्राणिसंक्लेशकर्तारं योजयिष्यामि मृत्युना ॥ २३ ॥

एवमुक्त्वा दशग्रीवो मुनिं तमभिवाद्य च ।
प्रययौ दक्षिणामाशां प्रहृष्टः सह मन्त्रिभिः ॥ २४ ॥

नारदस्तु महातेजा मुहूर्तं ध्यानमास्थितः ।
चिन्तयामास विप्रेन्द्रो विधूम इव पावकः ॥ २४ ॥

येन लोकास्त्रयः सेन्द्राः क्लिश्यन्ते सचराचराः ।
क्षीणे चायुषि धर्मेण स कालो हिंस्यते कथम् ॥ २६ ॥

स्वदत्तकृतसाक्षी यो द्वितीय इव पावकः ।
लब्धसंज्ञा विजेष्यन्ते लोका यस्य महात्मनः ॥ २७ ॥

यस्य नित्यं त्रयो लोका विद्रवन्ति भयार्दिताः ।
तं कथं राक्षसेन्द्रोऽसौ स्वयमेव गमिष्यति ॥ २८ ॥

यो विधाता च धाता च सुकृतं दुष्कृतं तथा ।
त्रैलोक्यं विजितं येन तं कथं तु विजेष्यते ॥ २९ ॥

अपरं किं तु कृत्वाऽयं विधानं संविधास्यति ।
कौतूहलसमुत्पन्नो यास्यामि यमसादनम् ॥ ३० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे विंशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 21491 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 767

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे षड्विंशेऽद्रि वर्तमानकथाप्रसङ्गः ॥



[ पुरा कुशलवाभ्यां श्रीरामसन्निधावश्वमेधयज्ञवाटे द्वात्रिंशति दिनेषु गीते श्रीमद्रामायणे सप्तविंशेऽह्नि उत्तरकाण्डे एकविंशसर्गमारभ्य चत्वारिंशसर्गपर्यन्तं (21492—22395 श्लोकाः) गीतम्। तस्मिन् दिने गीताः श्लोकाः 904 ]

## एकविंशः सर्गः ॥ २१ ॥

यमरावणसेनायुद्धम् ॥

एवं सञ्चिन्त्य विप्रेन्द्रो जगाम लघुविक्रमः ।
आख्यातुं तद्यथावृत्तं यमस्य सदनं प्रति ॥ १ ॥

अपश्यत्स यमं तत्र देवमग्निपुरस्कृतम् ।
विधानमुपतिष्ठन्तं प्राणिनो यस्य यादृशम् ॥ २ ॥

स तु दृष्ट्वा यमः प्राप्तं महर्षिं तत्र नारदम् ।
अब्रवीत्सुखमासीनमर्घ्यमावेद्य धर्मतः ॥ ३ ॥

कच्चित्क्षेमं तु देवर्षे कच्चिद्धर्मो न नश्यति ।
किमागमनकृत्यं ते देवगन्धर्वसेवित ॥ ४ ॥

अब्रवीत्तु तदा वाक्यं नारदो भगवानृषिः ।
श्रूयतामभिधास्यामि विधानं च विधीयताम् ॥ ५ ॥

एष नाम्ना दशग्रीवः पितृराज निशाचरः ।
उपयाति वशं नेतुं विक्रमैस्त्वां सुदुर्जयम् ॥ ६ ॥

एतेन कारणेनाहं त्वरितो ह्यागतः प्रभो ।
दण्डप्रहरणस्याद्य तव किं नु भविष्यति ॥ ७ ॥

एतस्मिन्नन्तरे दूरादंशुमन्तमिवोदितम् ।
ददर्श दीप्तमायान्तं विमानं तस्य रक्षसः ॥ ८ ॥

तं देशं प्रभया तस्य पुष्पकस्य महाबलः ।
कृत्वा वितिमिरं सर्वं समीपं सोऽभ्यवर्तत ॥ ९ ॥

सोऽपश्यत्सुमहाबाहुर्दशग्रीवस्ततस्ततः ।
प्राणिनः सुकृतं कर्म भुञ्जानांश्चैव दुष्कृतम् ॥ १० ॥

अपश्यत्सैनिकांश्चास्य यमस्यानुचरैः सह ।
यमस्य पुरुषैरुग्रैर्घोररूपैर्भयानकैः ॥ ११ ॥

ददर्श वध्यमानांश्च क्लिश्यमानांश्च देहिनः ।
क्रोशतश्च महानादं तीव्रनिष्टनतत्परान् ॥
कृमिभिर्भक्ष्यमाणांश्च सारमेयैश्च दारुणैः ॥ १२ ॥

श्रोत्रायासकरा वाचो वदतश्च भयावहाः ।
तार्यमाणान्वैतरणीं बहुशः शोणितोदकाम् ॥ १३ ॥

वालुकासु च तप्तासु तप्यमानान्मुहुर्मुहुः ।
असिपत्रवने चैव भिद्यमानानधार्मिकान् ॥ १४ ॥

रौरवे क्षारनद्यां च क्षुरधारासु चैव हि ।
पानीयं याचमानांश्च तृषितान्क्षुधितानपि ॥ १५ ॥

शवभूतान्कृशान्दीनान्विवर्णान्मुक्तमूर्धजान् ।
मलपङ्कधरान्मर्त्यान्वृक्षांश्च परिधावतः ॥
ददर्श रावणो मार्गे शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १६ ॥

कांश्चिच्च गृहमुख्येषु गीतवादित्रनिस्वनैः ।
प्रमोदमानानद्राक्षीद्रावणः सुकृतैः स्वकैः ॥ १७ ॥

गोरसं गोप्रदातारो ह्यन्नं चैवान्नदायिनः ।
गृहांश्च गृहदातारः स्वकर्मफलमश्नतः ॥
सुवर्णमणिमुक्ताभिः प्रमदाभिरलङ्कृतान् ॥ १८ ॥

धार्मिकानपरांस्तत्र दीप्यमानान्स्वतेजसा ।
ददर्श सुमहाबाहू रावणो राक्षसाधिपः ॥ १९ ॥

ततस्तान्भिद्यमानांश्च कर्मभिर्दुष्कृतैः स्वकैः ।
रावणो मोचयामास विक्रमेण बलाद्बली ॥ २० ॥

प्राणिनो मोचितास्तेन दशग्रीवेण रक्षसा ।
सुखमापुर्मुहूर्तं ते ह्यतर्कितमचिन्तितम् ॥ २१ ॥

प्रेतेषु मुच्यमानेषु राक्षसेन महीयसा ।
प्रेतगोपाः सुसंक्रुद्धा राक्षसेन्द्रमभिद्रवन् ॥ २२ ॥

ते प्रासैः परिघैः शूलैर्मुसलैः शक्तितोमरैः ।
पुष्पकं समवर्षन्त शूराः शतसहस्रशः ॥ २३ ॥

तस्यासनानि प्रासादान्वेदिकास्तोरणानि च ।
पुष्पकस्य बभञ्जुस्ते शीघ्रं मधुकरा इव ॥ २४ ॥

देवनिष्ठानगतं तद्विमानं पुष्पकं मृधे ।
भज्यमानं तथैवासीदक्षयं ब्रह्मतेजसा ॥ २५ ॥

असंख्या सुमहत्यासीत्तस्य सेना महात्मनः ।
शूराणामुग्रयातृणां सहस्राणि शतानि च ॥ २६ ॥

ततस्ते सचिवास्तस्य यथाकामं यथाबलम् ।
अयुध्यन्त महावीराः स च राजा दशाननः ॥ २७ ॥

ते तु शोणितदिग्धाङ्गाः सर्वशस्त्रसमाहताः ।
अमात्या राक्षसेन्द्रस्य चक्रुरायोधनं महत् ॥ २८ ॥

अन्योन्यं ते महाभागा जघ्नुः प्रहरणैर्भृशम् ।
यमस्य च महाबाहो रावणस्य च मन्त्रिणः ॥ २९ ॥

अमात्यांस्तांस्तु सन्त्यज्य यमयोधा महाबलाः ।
तमेव चाभ्यधावन्त शूलवर्षैर्दशाननम् ॥ ३० ॥

ततः शोणितदिग्धाङ्गः प्रहारैर्जर्जरीकृतः ।
फुल्लाशोक इवाभाति पुष्पके राक्षसाधिपः ॥ ३१ ॥

स तु शूलगदाप्रासाञ्च्छक्तितोमरसायकान् ।
मुसलानि शिला वृक्षान्मुमोचास्त्रबलाद्बली ॥ ३२ ॥

तरूणां च शिलानां च शस्त्राणां चातिदारुणम् ।
यमसैन्येषु तद्वर्ष पपातातिभयङ्करम् ॥ ३३ ॥

तांस्तु सर्वान्विनिर्भिद्य तदस्त्रमपहत्य च ।
जघ्नुस्ते राक्षसं घोरमेकं शतसहस्रशः ॥ ३४ ॥

परिवार्य च तं सर्वे शैलं मेघोत्करा इव ।
भिन्दिपालैश्च शूलैश्च निरुच्छ्वासमपोथयन् ॥ ३५ ॥

विमुक्तकवचः क्रुद्धः सिक्तः शोणितविस्रवैः ।
ततः स पुष्पकं त्यक्त्वा पृथिव्यामवतिष्ठत ॥ ३६ ॥

ततः स कार्मुकी बाणी समरे चाभिवर्तत ।
लब्धसंज्ञो मुहूर्तेन क्रुद्धस्तस्थौ यथाऽन्तकः ॥ ३७ ॥

ततः पाशुपतं दिव्यमस्त्रं सन्धाय कार्मुके ।
तिष्ठ तिष्ठेति तानुक्त्वा तच्चापं विचकर्ष सः ॥ ३८ ॥

आकर्णात्स विकृष्याथ चापमिन्द्रारिराहवे ।
मुमोच तं शरं क्रुद्धस्त्रिपुरे शङ्करो यथा ॥ ३९ ॥

तस्य रूपं शरस्यासीद्विधूमज्वालमण्डलम् ।
वनं दहिष्यतो घर्मे दावाग्नेरिव मूर्च्छितः ॥ ४० ॥

ज्वालामाली स तु शरः क्रव्यादानुगतो रणे ।
मुक्तो गुल्मान्द्रुमांश्चापि भस्म कृत्वा प्रधावति ॥ ४१ ॥

ते तस्य तेजसा दग्धा सैन्या वैवस्वतस्य तु ।
रणे तस्मिन्निपतिता दावदग्धा नगा इव ॥ ४२ ॥

ततस्तु सचिवैः सार्धं राक्षसो भीमविक्रमः ।
ननाद सुमहानादं कम्पयन्निव मेदिनीम् ॥ ४३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे एकविंशः सर्गः ॥

## द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥

### यमविजयः ॥

स तस्य तु महानादं श्रुत्वा वैवस्वतो यमः ।
शत्रुं विजयिनं मेने स्वबलस्य च संक्षयम् ॥ १ ॥

स हि योधान्हतान्मत्वा क्रोधसंरक्तलोचनः ।
अब्रवीच्चरितं सूतं रथोऽयमुपनीयताम् ॥ २ ॥

तस्य सूतो रथं दिव्यमुपस्थाप्य महास्वनम् ।
स्थितः स च महातेजा आरुरोह महारथम् ॥
पाशमुद्गरहस्तश्च मृत्युस्तस्याग्रतः स्थितः ॥ ३ ॥

येन संक्षिप्यते सर्वं त्रैलोक्यमिदमव्ययम् ।
कालदण्डस्तु पार्श्वस्थो मूर्तिमान्स्यन्दनोत्तमे ॥
यमप्रहरणं दिव्यं प्रदहन्निव तेजसा ॥ ४ ॥

तस्य पार्श्वेषु निच्छिद्राः कालपाशाः प्रतिष्ठिताः ।
पावकस्पर्शसङ्काशः स्थितो मूर्तश्च मुद्गरः ॥ ५ ॥

ततो लोकत्रयं क्षुब्धमकम्पन्त दिवौकसः ।
कालं दृष्ट्वा तथा क्रुद्धं सर्वलोकभयावहम् ॥ ६ ॥

ततः प्रचोदयन्सूतस्तानश्वान्रुधिरप्रभान् ।
प्रययौ भीमसन्नादो यत्र रक्षःपतिः स्थितः ॥ ७ ॥

मुहूर्तेन यमं ते तु हया हरिहयोपमाः ।
प्रापयन्मनसस्तुल्या यत्र तत्स्तुतं रणम् ॥ ८ ॥

दृष्ट्वा तथैव विकृतं रथं मृत्युसमन्वितम् ।
सचिवा राक्षसेन्द्रस्य सहसा विप्रदुद्रुवुः ॥ ९ ॥

लघुसत्त्वतया ते हि नष्टसंज्ञा भयार्दिताः ।
नेह योद्धुं समर्थाः स्म इत्युक्त्वा प्रययुर्दिशः ॥ १० ॥

स तु तं तादृशं दृष्ट्वा रथं लोकभयावहम् ।
नाक्षुभ्यत दशग्रीवो न चापि भयमाविशत् ॥ ११ ॥

स तु रावणमासाद्य व्यसृजच्छक्तितोमरान् ।
यमो मर्माणि संक्रुद्धो रावणस्योपकृन्तत ॥ १२ ॥

मर्मसु छिद्यमानेषु रावणो राक्षसेश्वरः ।
सहंस्तस्थौ रुजं घोरां भिद्यमान इवाचलः ॥ १३ ॥

रावणस्तु ततः स्वस्थः शरवर्षं मुमोच ह ।
तस्मिन्वैवस्वतरथे तोयवर्षमिवाम्बुदः ॥ १४ ॥

शरास्ते वज्रसङ्काशाश्छादयन्ति रणे यमम् ।
यथाऽचलं महाघोरा नानावर्णा बलाहकाः ॥ १५ ॥

तान्निहत्य शरांस्तूर्णं रावणस्य यमः स्वयम् ।
ततः प्रहरणं घोरं मुमोचारिनिषूदनः ॥ १६ ॥

ततो महाशक्तिशरैः पात्यमानो महोरसि ।
नाशक्नोत्प्रतिकर्तुं स राक्षसः शल्यपीडितः ॥ १७ ॥

एवं नानाप्रहरणैर्यमेनामित्रकर्शिना ।
सप्तरात्रं कृतः संख्ये विसंज्ञो विमुखो रिपुः ॥ १८ ॥

तदाऽऽसीत्तुमुलं युद्धं यमराक्षसयोर्द्वयोः ।
जयमाकाङ्क्षतोर्वीर समरेष्वनिवर्तिनोः ॥ १९ ॥

ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
प्रजापतिं पुरस्कृत्य समेतास्तद्रणाजिरम् ॥ २० ॥

संवर्त इव लोकानां क्रुध्यतोरभवत्तदा ।
राक्षसानां च मुख्यस्य प्रेतानामीश्वरस्य च ॥ २१ ॥

राक्षसेन्द्रस्ततः क्रुद्धश्चापमायम्य संयुगे ।
निरन्तरमिवाकाशं कुर्वन्बाणांस्ततोऽसृजत् ॥ २२ ॥

मृत्युं चतुर्भिर्विशिखैः सूतं सप्तभिरर्दयत् ।
यमं शतसहस्रेण शीघ्रं मर्मस्वताडयत् ॥ २३ ॥

ततः क्रुद्धस्य सहसा यमस्याभिविनिःसृतः ।
ज्वालामाली स निश्वासाद्वदनात्क्रोधपावकः ॥ २४ ॥

ततोऽपश्यंस्तदाश्चर्यं दैत्यदानवराक्षसाः ।
क्रोधजं पावकं दीप्तं दिधक्षन्तं रिपोर्बलम् ॥ २५ ॥

मृत्युस्तु परमक्रुद्धो वैवस्वतमथाब्रवीत् ॥ २६ ॥

मुञ्च मां देव शीघ्रं च निहन्मि समरे रिपुम् ॥ २७ ॥

नरकः शम्बरो वृत्रः शम्भुः कार्तस्वरो बली ।
वैरोचनश्च नमुचिस्तावुभौ मधुकैटभौ ॥ २८ ॥

एते चान्ये च बहवो बलवन्तो दुरासदाः ।
विनिपन्ना मया दृष्टाः का चिन्ताऽस्मिन्निशाचरे ॥ २९ ॥

मुञ्च मां साधु धर्मज्ञ यावदेनं निहन्म्यहम् ।
न हि कश्चिन्मया दृष्टो बलवानपि जीवति ॥ ३० ॥

बलं मम न खल्वेतन्मर्यादैषा निसर्गतः ।
स दृष्टो न मया कालं मुहूर्तमपि जीवति ॥ ३१ ॥

तस्यैवं वचनं श्रुत्वा धर्मराजः प्रतापवान् ।
अब्रवीत्तत्र तं मृत्युं त्वं तिष्ठैनं निहन्म्यहम् ॥ ३२ ॥

ततः संरक्तनयनः क्रुद्धो वैवस्वतः प्रभुः ।
कालदण्डममोघं तु तोलयामास पाणिना ॥ ३३ ॥

यस्य पार्श्वेषु निखिलाः कालपाशाः प्रतिष्ठिताः ।
पावकाशनिसङ्काशो मुद्गरो मूर्तिमान्स्थितः ॥ ३४ ॥

दर्शनादेव यः प्राणान्प्राणिनामपकर्षति ।
किं पुनस्ताडनात्स्पर्शात्पीडनाद्वाऽपि देहिनः ॥ ३५ ॥

स ज्वालापरिवारस्तु निर्दहन्निव राक्षसम् ।
तेन स्पृष्टो बलवता महाप्रहरणोऽस्फुरत् ॥ ३६ ॥

ततो विदुद्रुवुः सर्वे तस्मात्तस्ता रणाजिरे ।
सुराश्च क्षुभिताः सर्वे दृष्ट्वा दण्डोद्यतं यमम् ॥ ३७ ॥

तस्मिन्प्रहर्तुकामे तु यमे दण्डेन रावणम् ।
यमं पितामहः साक्षादर्शयित्वेदमब्रवीत् ॥ ३८ ॥

वैवस्वत महाबाहो न खल्वमितविक्रम ।
न हन्तव्यस्त्वया तेन दण्डेनैव निशाचरः ॥ ३९ ॥

वरः खलु मयैतस्मै दत्तस्त्रिदशपुङ्गव ।
स त्वया नानृतः कार्यो यन्मया व्याहृतं वचः ॥ ४० ॥

यो हि मामनृतं कुर्यादेवो वा मानुषोऽपि वा ।
त्रैलोक्यमनृतं तेन कृतं स्यान्नात्र संशयः ॥ ४१ ॥

क्रुद्धेन विप्रमुक्तोऽयं निर्विशेषं प्रियाप्रिये ।
प्रजाः संहरते रौद्रो लोकत्रयभयावहः ॥ ४२ ॥

अमोघो ह्येष सर्वेषां प्राणिनाममितप्रभः ।
कालदण्डो मया सृष्टः पूर्वं मृत्युपुरस्कृतः ॥ ४३ ॥

तन्न खल्वेष ते सौम्य पात्यो रावणमूर्धनि ।
न ह्यस्मिन्पतिते कश्चिन्मुहूर्तमपि जीवति ॥ ४४ ॥

यदि ह्यस्मिन्निपतिते न म्रियेतैष राक्षसः ।
म्रियते वा दशग्रीवस्तदा ह्युभयतोऽनृतम् ॥ ४५ ॥

तन्निवर्तय लङ्केशं दण्डमेतं समुद्यतम् ।
सत्यं च मां कुरुष्वाद्य लोकांस्त्वं यद्यवेक्षसे ॥ ४६ ॥

एवमुक्तस्तु धर्मात्मा प्रत्युवाच यमस्तदा ।
एष व्यावर्तितो दण्डः प्रभविष्णुर्हि नो भवान् ॥ ४७ ॥

किं न्विदानीं मया शक्यं कर्तुं रणगतेन हि ।
न मया यद्ययं शक्यो हन्तुं वरपुरस्कृतः ॥ ४८ ॥

एष तस्मात्प्रणश्यामि दर्शनादद्य रक्षसः ।
इत्युक्त्वा सरथः साश्वस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ४९ ॥

दशग्रीवस्तु तं जित्वा नाम विश्राव्य चात्मनः ।
आरुह्य पुष्पकं भूयो निष्क्रान्तो यमसादनात् ॥ ५० ॥

स तु वैवस्वतो देवैः सह ब्रह्मपुरोगमैः ।
जगाम त्रिदिवं हृष्टो नारदश्च महामुनिः ॥ ५१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे द्वाविंशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 21585 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 861

## त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

### वरुणविजयः ॥

ततो जित्वा दशग्रीवो यमं त्रिदशपुङ्गवम् ।
रावणस्तु रणश्लाघी स्वसहायान्ददर्श ह ॥ १ ॥

ततो रुधिरसिक्ताङ्गं प्रहारैर्जर्जरीकृतम् ।
रावणं राक्षसा दृष्ट्वा हृष्टवत्समुपागमन् ॥ २ ॥

जयेन वर्धयित्वा च मारीचप्रमुखास्ततः ।
पुष्पकं भेजिरे सर्वे सान्त्विता रावणेन तु ॥ ३ ॥

ततो रसातलं गच्छन्प्रविष्टः पयसां निधिम् ।
दैत्योरगगणाध्युष्टं वरुणेन सुरक्षितम् ॥ ४ ॥

स तु भोगवतीं गत्वा पुरीं वासुकिपालिताम् ।
कृत्वा नागान्वशे हृष्टो ययौ मणिमयीं पुरीम् ॥ ५ ॥

निवातकवचास्तत्र दैत्या लब्धवराऽवसन् ।
राक्षसांस्तान्समागम्य युद्धाय समुपाह्वयत् ॥ ६ ॥

ते तु सर्वे सुविक्रान्ता दैतेया बलशालिनः ।
नानाप्रहरणास्तत्र प्रययुर्युद्धदुर्मदाः ॥ ७ ॥

तेषां तु युद्ध्यमानानां साग्रः संवत्सरो गतः ।
न चान्यतरयोस्तत्र विजयो वा क्षयोऽपि वा ॥ ८ ॥

ततः पितामहस्तत्र त्रैलोक्यगतिरव्ययः ।
आजगाम द्रुतं देवो विमानवरमास्थितः ॥ ९ ॥

निवातकवचानां तु निवार्य रणकर्म तत् ।
वृद्धः पितामहो वाक्यमुवाच विदितार्थवत् ॥ १० ॥

न ह्ययं रावणो युद्धे शक्यो जेतुं सुरासुरैः ।
न भवन्तः क्षयं नेतुमपि सामरदानवैः ॥ ११ ॥

राक्षसस्य सखित्वं च भवद्भिः सह रोचते ।
अविभक्ताश्च सर्वार्थाः सुहृदां नात्र संशयः ॥ १२ ॥

ततोऽग्निसाक्षिकं सख्यं कृतवांस्तत्र रावणः ।
निवातकवचैः सार्धं प्रीतिमानभवत्तदा ॥ १३ ॥

अर्थतस्तैर्यथान्यायं सवत्सरमथोषितः ।
स्वपुरान्निर्विशेषं च प्रियं प्राप्तो दशाननः ॥ १४ ॥

ततोपधार्य मायानां शतमेकं समाप्तवान् ।
सलिलेन्द्रपुरान्वेषी भ्रमति स्म रसातलम् ॥ १५ ॥

ततोऽग्निनगरं नाम कालकेयैरधिष्ठितम् ।
गत्वा तु कालकेयांश्च हत्वा तत्र बलोत्कटान् ॥ १६ ॥

शूर्पणख्याश्च भर्तारमसिना प्राच्छिनत्तदा ।
स्यालं च बलवन्तं च विद्युज्जिह्वं बलोत्कटम् ॥
जिह्वया संलिहन्तं च राक्षसं समरे तथा ॥ १७ ॥

तं विजित्य मुहूर्तेन जघ्ने दैत्यांश्चतुःशतम् ॥ १८ ॥

ततः पाण्डुरमेघाभं कैलासमिव भास्वरम् ।
वरुणस्यालयं दिव्यमपश्यद्राक्षसाधिपः ॥ १९ ॥

क्षरन्तीं च पयस्तत्र सुरभिं गामवस्थिताम् ।
यस्याः पयोभिनिष्यन्दात्क्षीरोदो नाम सागरः ॥ २० ॥

ददर्श रावणस्तत्र गोवृषेन्द्रवरारणिम् ।
यस्माच्चन्द्रः प्रभवति शीतरश्मिः प्रजाहितः ॥ २१ ॥

यं समाश्रित्य जीवन्ति फेनपाः परमर्षयः ।
अमृतं यत्र चोत्पन्नं स्वधा च स्वधभोजिनाम् ॥ २२ ॥

यां ब्रुवन्ति नरा लोके सुरभिं नाम नामतः ।
प्रदक्षिणं तु तां कृत्वा रावणः परमाद्भुताम् ॥
प्रविवेश महाघोरं गुप्तं बहुविधैर्बलैः ॥ २३ ॥

ततो धाराशताकीर्णं शारदाभ्रनिभं तदा ।
नित्यप्रहृष्टं ददृशे वरुणस्य गृहोत्तमम् ॥ २४ ॥

ततो हत्वा बलाध्यक्षान्समरे तैश्च ताडितः ।
अब्रवीच्च ततो योधान्राजा शीघ्रं निवेद्यताम् ॥ २५ ॥

युद्धार्थी रावणः प्राप्तस्तस्य युद्धं प्रदीयताम् ।
वद वा न भयं तेऽस्ति निर्जितोऽस्मीति साञ्जलिः ॥

एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धा वरुणस्य महात्मनः ।
पुत्राः पौत्राश्च निष्कामन्गौश्च पुष्कर एव च ॥ २७ ॥

ते तु वीर्यगुणोपेता बलैः परिवृताः स्वकैः ।
युङ्क्त्वा रथान्कामगमानुद्यच्छास्त्रवर्चसः ॥ २८ ॥

ततो युद्धं समभवद्दारुणं रोमहर्षणम् ।
सलिलेन्द्रस्य पुत्राणां रावणस्य च धीमतः ॥ २९ ॥

अमात्यैश्च महावीर्यैर्दशग्रीवस्य रक्षसः ।
वारुणं तद्बलं कृत्स्नं क्षणेन विनिपातितम् ॥ ३० ॥

समीक्ष्य स्वबलं संख्ये वरुणस्य सुतास्तदा ।
अर्दिताः शरजालेन निवृत्ता रणकर्मणः ॥ ३१ ॥

महीतलगतास्ते तु रावणं दृश्य पुष्पके ।
आकाशमाशु विविशुः स्यन्दनैः शीघ्रगामिभिः ॥ ३२ ॥

महदासीत्ततस्तेषां तुल्यस्थानमवाप्य तत् ।
आकाशयुद्धं तुमुलं देवदानवयोरिव ॥ ३३ ॥

ततस्ते रावणं युद्धे शरैः पावकसन्निभैः ।
विमुखीकृत्य सन्तुष्टा विनेदुर्विविधान्रवान् ॥ ३४ ॥

ततो महोदरः क्रुद्धो राजानं दृश्य धर्षितम् ।
त्यक्त्वा मृत्युभयं वीरो युद्धकाङ्क्षी व्यलोकयत् ॥ ३५ ॥

तेन ते दारुणा युद्धे कामगाः पवनोपमाः ।
महोदरेण गदया हता वै प्रययुः क्षितिम् ॥ ३६ ॥

तेषां वरुणपुत्राणां हत्वा योधान्हयाञ्च्छतान् ।
मुमोचाशु महानादं विरथान्प्रेक्ष्य तान्स्थितान् ॥ ३७ ॥

ते तु तेषां रथाः साश्वाः सह सारथिभिर्हतैः ।
महोदरेण निहताः पतिताः पृथिवीतले ॥ ३८ ॥

ते तु त्यक्त्वा रथान्पुत्रा वरुणस्य महात्मनः ।
आकाशे विष्ठिताः शूराः स्वप्रभावान्न विव्यथुः ॥ ३९ ॥

धनूंषि कृत्वा सज्जानि विनिर्भिद्य महोदरम् ।
रावणं समरे क्रुद्धाः सहिताः समभिद्रवन् ॥ ४० ॥

सायकैश्चापविभ्रष्टैर्व्रजकल्पैः सुदारुणैः ।
दारयन्ति स्म संक्रुद्धा मेघा इव महागिरिम् ॥ ४१ ॥

ततः क्रुद्धो दशग्रीवः कालाग्निरिव निर्गतः ।
शरवर्षैर्महाघोरैस्तेषां मर्मस्वताडयत् ॥ ४२ ॥

ततस्तेनैव सहसा सीदन्ति स्म पदातयः ।
मुसलानि विचित्राणि ततो भल्लशतानि च ॥ ४३ ॥

पट्टिशांश्चैव शक्तीश्च शतघ्नीस्तोमरांस्तथा ।
पातयामास दुर्धर्षस्तेषामुपरि विष्ठितः ॥ ४४ ॥

अपविद्धास्तु ते वीरा विनिष्पेतुः पदातयः ।
महापङ्कमिवासाद्य कुञ्जराः षष्टिहायनाः ॥ ४५ ॥
सीदमानान्सुतान्दृष्ट्वा विह्वलान्सुमहौजसः ।
ननाद रावणो हर्षान्महानम्बुधरो यथा ॥ ४६ ॥
ततो रक्षो महानादान्मुक्त्वा हन्ति स्म वारुणान् ।
नानाप्रहरणोपेतैर्धारापातैरिवाम्बुदः ॥ ४७ ॥
ततस्ते विमुखाः सर्वे पतिता धरणीतले ।
रणात्स्वपुरुषैः शीघ्रं गृहाण्येव प्रवेशिताः ॥ ४८ ॥
तानब्रवीत्ततो रक्षो वरुणाय निवेद्यताम् ॥ ४९ ॥
रावणं त्वब्रवीन्मन्त्री प्रहसो नाम वारुणः ।
गतः खलु महाराजो ब्रह्मलोकं जलेश्वरः ॥
गान्धर्वं वरुणः श्रोतुं यं त्वमाह्वयसे युधि ॥ ५० ॥
तत्किं तव वृथा वीर परिश्रम्य गते नृपे ।
ये तु सन्निहिता वीराः कुमारास्ते पराजिताः ॥ ५१ ॥
राक्षसेन्द्रस्तु तच्छ्रुत्वा नाम विश्राव्य चात्मनः ।
हर्षान्नादं विमुञ्चन्वै निष्क्रान्तो वरुणालयात् ॥ ५२ ॥
आगतस्तु पथा येन तेनैव विनिवृत्य सः ।
लङ्कामभिमुखो रक्षो नभःस्थलगतो ययौ ॥ ५३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे त्रयोविंशः सर्गः ॥

## चतुर्विंशः सर्गः ॥ २४ ॥

### दण्डकायां खरादिनिवासनम् ॥

निवर्तमानः संहृष्टो रावणः सुदुरात्मवान् ।
जहे पथि नरेन्द्रर्षिदेवगन्धर्वकन्यकाः ॥ १ ॥
दर्शनीयां हि रक्षः स कन्यां स्त्रीं वाऽथ पश्यति ।
हत्वा बन्धुजनं तस्या विमाने तां रुरोध ह ॥ २ ॥
एवं पन्नगकन्याश्च राक्षसासुरमानुषीः ।
यक्षदानवकन्याश्च विमाने सोऽध्यरोपयत् ॥ ३ ॥
ताभिः सर्वानवद्याभिर्नदीभिरिव सागरः ।
आपूरितं विमानं तद्भयशोकाशिवाश्रुभिः ॥ ४ ॥
नागगन्धर्वकन्याश्च महर्षितनयाश्च याः ।
दैत्यदानवकन्याश्च विमाने शतशोऽरुदन् ॥ ५ ॥
दीर्घकेश्यः सुचार्वङ्ग्यः पूर्णचन्द्रनिभाननाः ।
पीनस्तन्यस्तथा वज्रवेदिमध्यसमप्रभाः ॥ ६ ॥
रथकूबरसङ्काशैः श्रोणीदेशैर्मनोहराः ।
स्त्रियः सुराङ्गनाप्रख्या निष्टप्तकनकप्रभाः ॥
शोकदुःखभयत्रस्ता विह्वलाश्च सुमध्यमाः ॥ ७ ॥
तासां निश्वासवातेन सर्वतः संप्रदीपितम् ।
अग्निहोत्रमिवाभाति सन्निरुद्धाग्नि पुष्पकम् ॥ ८ ॥
काचिच्चिन्तयती तत्र किं नु मां भक्षयिष्यति ।
काचिद्ध्यौ सुदुःखार्ता अपि मां मारयेदयम् ॥ ९ ॥

इति मातृपितॄन्स्मृत्वा भर्तॄन्भ्रातॄंस्तथैव च ।
दुःखशोकसमाविष्टा विलेपुः सहिताः स्त्रियः ॥ १० ॥

कथं नु खलु मे पुत्रो भविष्यति मया विना ।
कथं माता कथं भ्राता निमग्नाः शोकसागरे ॥ ११ ॥

हा कथं नु करिष्यामि भर्तारं दैवतं विना ।
मृत्यो प्रसादयामि त्वां नय मां दुःखभागिनीम्॥ १२ ॥

किं नु तद्दुष्कृतं कर्म पुरा देहान्तरे कृतम् ।
एवं स्म दुःखिताः सर्वाः पतिताः शोकसागरे ॥ १३ ॥

न खल्विदानीं पश्यामो दुःखस्यास्यान्तमात्मनः ।
अहो धिङ्मानुषं लोकं नास्ति खल्वधमः परः ॥ १४ ॥

यद्बलाः बलवता भर्तारो रावणेन नः ।
सूर्येणोद्यता काले नक्षत्राणीव नाशिताः ॥ १५ ॥

अहो सुबलवद्रक्षो वधोपायेषु युज्यते ।
अहो दुर्वृत्तमास्थाय नात्मानं वै जुगुप्सते ॥ १६ ॥

सर्वथा सदृशस्तावद्विक्रमोऽस्य दुरात्मनः ।
इदं त्वसदृशं कर्म परदाराभिमर्शनम् ॥ १७ ॥

यस्मादेष परक्यासु रमते राक्षसाधमः ।
तस्माद्वै स्त्रीकृतेनैव प्राप्स्यते दुर्मतिर्वधम् ॥ १८ ॥

शप्तः स्त्रीभिः स तु समं हतौजा इव निष्प्रभः ।
पतिव्रताभिः साध्वीभिर्भभूव विमना इव ॥ १९ ॥

एवं विलपितं तासां शृण्वन्राक्षसपुङ्गवः ।
प्रविवेश पुरीं लङ्कां पूज्यमानो निशाचरैः ॥ २० ॥

एतस्मिन्नन्तरे घोरा राक्षसी कामरूपिणी ।
सहसा पतिता भूमौ भगिनी रावणस्वसा ॥ २१ ॥

तां स्वसारं समुत्थाप्य रावणः परिसान्त्वयन् ।
अब्रवीत्किमिदं भद्रे वक्तुकामाऽसि मे द्रुतम् ॥ २२ ॥

सा बाष्पपरिरुद्धाक्षी रक्ताक्षी वाक्यमब्रवीत् ।
कृताऽस्मि विधवा राजंस्त्वया बलवता बलात् ॥ २३ ॥

एते राजंस्त्वया वीरा दैत्या विनिहता रणे ।
कालकेया इति ख्याता महाबलपराक्रमाः ॥ २४ ॥

प्राणेभ्योऽपि गरीयान्मे तत्र भर्ता महाबलः ।
सोऽपि त्वया हतस्तात रिपुणा भ्रातृगृध्नुना ॥ २५ ॥

त्वयाऽस्मि निहता राजन्स्वयमेव हि बन्धुना ।
राजन्वैधव्यशब्दं च भोक्ष्यामि त्वत्कृते ह्यहम् ॥ २६ ॥

ननु नाम त्वया रक्ष्यो जामाता समरेष्वपि ।
स त्वया निहतो युद्धे स्वयमेव न लज्जसे ॥ २७ ॥

एवमुक्तो दशग्रीवो भगिन्या क्रोशमानया ।
अब्रवीत्सान्त्वयित्वा तां सामपूर्वमिदं वचः ॥ २८ ॥

अलं वत्से रुदित्वा ते न भेतव्यं च सर्वशः ।
दानमानप्रसादैस्त्वां तोषयिष्यामि यत्नतः ॥ २९ ॥

युद्धप्रमत्तो व्याक्षिप्तो जयकाङ्क्षी क्षिपञ्च्छरान् ।
नावगच्छामि युद्धेषु स्वान्परान्वाऽप्यहं शुभे ॥ ३० ॥

तेनासौ निहतः सङ्ख्ये मया भर्ता तव स्वसः ।
अस्मिन्काले तु यत्प्राप्तं तत्करिष्यामि ते हितम् ॥
भ्रातुरैश्वर्ययुक्तस्य खरस्य वस पार्श्वतः ॥ ३१ ॥

चतुर्दशानां भ्राता ते सहस्राणां भविष्यति ।
प्रभुः प्रयाणे दाने च राक्षसानां महाबलः ॥ ३२ ॥

तत्र मातृष्वसेयस्ते भ्राताऽयं वै खरः प्रभुः ।
भविष्यति तवादेशं सदा कुर्वन्निशाचरः ॥ ३३ ॥

शीघ्रं गच्छत्वयं वीरो दण्डकान्परिरक्षितुम् ।
दूषणोऽस्य बलाध्यक्षो भविष्यति महाबलः ॥ ३४ ॥

स हि शस्तो वनोद्देशः क्रुद्धेनोशनसा पुरा ।
राक्षसानामधीवासो भविष्यति महात्मनाम् ॥ ३५ ॥

तत्र ते वचनं शूरः करिष्यति सदा खरः ।
रक्षसां कामरूपाणां प्रभुरेष भविष्यति ॥ ३६ ॥

एवमुक्त्वा दशग्रीवः सैन्यमस्यादिदेश ह ।
चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां वीर्यशालिनाम् ॥ ३७ ॥

स तैः परिवृतः सर्वैः राक्षसैर्घोरदर्शनैः ।
अगच्छत्सन्खरः शीघ्रं दण्डकानकुतोभयः ॥ ३८ ॥

स तत्र कारयामास राज्यं निहतकण्टकम् ।
स च शूर्पणखा तत्र न्यवसद्दण्डकावने ॥ ३९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे चतुर्विंशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 21677 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 953



## पञ्चविंशः सर्गः ॥ २५ ॥

मधुलक्ष्यं ॥

स तु दत्वा दशग्रीवो वनं घोरं खरस्य तत् ।
भगिनीं च समाश्वास्य हृष्टः स्वस्थतरोऽभवत् ॥ १ ॥

ततो निकुम्भिला नाम लङ्कोपवनमुत्तमम् ।
तद्राक्षसेन्द्रो बलवान्प्रविवेश सहानुगः ॥ २ ॥

ततो यूपशताकीर्णं सौम्यचैत्योपशोभितम् ।
ददर्श विष्ठितं यज्ञं श्रिया संप्रज्वलन्निव ॥ ३ ॥

ततः कृष्णाजिनधरं कमण्डलुशिखाध्वजम् ।
ददर्श स्वसुतं तत्र मेघनादं भयावहम् ॥ ४ ॥

तं समासाद्य लङ्केशः परिष्वज्याथ बाहुभिः ।
अब्रवीत्किमिदं वत्स वर्तसे ब्रूहि तत्वतः ॥ ५ ॥

उशना त्वब्रवीत्तत्र यज्ञसंपत्समृद्धये ।
रावणं राक्षसश्रेष्ठं द्विजश्रेष्ठो महातपाः ॥ ६ ॥

अहमाख्यामि ते राजञ्च्छ्रूयतां सर्वमेव तत् ।
यज्ञास्ते सप्त पुत्रेण प्राप्ताः सुबहुविस्तराः ॥ ७ ॥

अग्निष्टोमोऽश्वमेधश्च यज्ञो बहुसुवर्णकः ।
राजसूयस्तथा यज्ञो गोमेधो वैष्णवस्तथा ॥ ८ ॥

माहेश्वरे प्रवृत्ते तु यज्ञे पुंभिः सुदुर्लभे ।
वरांस्ते लब्धवान्पुत्रः साक्षात् पशुपतेरिह ॥ ९ ॥

कामगं स्यन्दनं दिव्यमन्तरिक्षचरं ध्रुवम् ।
मायां च तामसीं नाम यया सम्पद्यते तमः ॥ १० ॥

एतया किल संग्रामे मायया राक्षसेश्वर ।
प्रयुक्तया गतिः शक्या न हि ज्ञातुं सुरासुरैः ॥ ११ ॥

अक्षयाविषुधी बाणैश्चापं चापि सुदुर्जयम् ।
अस्त्रं च बलवत्सौम्य शत्रुविध्वंसनं रणे ॥ १२ ॥

एतान्सर्वान्वरांल्लब्ध्वा पुत्रस्तेयं दशानन ।
अद्य यज्ञसमाप्तौ च त्वां दिदृक्षुः स्थितो ह्यहम् ॥ १३ ॥

ततोऽब्रवीद्दशग्रीवो न शोभनमिदं कृतम् ।
पूजिताः शत्रवो यस्माद्द्रव्यैरिन्द्रपुरोगमाः ॥ १४ ॥

एहीदानीं कृतं विद्धि सुकृतं तन्न संशयः ।
आगच्छ सौम्य गच्छामः स्वमेव भवनं प्रति ॥ १५ ॥

ततो गत्वा दशग्रीवः सपुत्रः सविभीषणः ।
स्त्रियोऽवतारयामास सर्वास्ता बाष्पगद्गदाः ॥ १६ ॥

लक्षिण्यो रत्नभूताश्च देवदानवरक्षसाम् ।
नार्यो भूषणसंपन्ना ज्वलन्त्यः स्वेन तेजसा ॥ १७ ॥

विभीषणस्तु ता नारीर्दृष्ट्वा शोकपरायणाः ।
तस्य तासु मतिं ज्ञात्वा धर्मात्मा वाक्यमब्रवीत् ॥ १८ ॥

ईदृशैस्त्वं समाचारैर्यशोऽर्थकुलनाशनैः ।
धर्षणं प्राणिनां दत्वा स्वमतेन विचेष्टसे ॥ १९ ॥

ज्ञातींस्तान्धर्षयित्वेमास्त्वयाऽऽनीता वराङ्गनाः ।
त्वामतिक्रम्य मधुना राजन्कुम्भीनसी हृता ॥ २० ॥

रावणस्त्वब्रवीद्वाक्यं नावगच्छामि किं न्विदम् ।
कोऽयं यस्तु त्वयाऽऽख्यातो मधुरित्येव नामतः ॥ २१ ॥

विभीषणस्तु संक्रुद्धो भ्रातरं वाक्यमब्रवीत् ।
श्रूयतामस्य पापस्य कर्मणः फलमागतम् ॥ २२ ॥

मातामहस्य योऽस्माकं ज्येष्ठो भ्राता सुमालिनः ।
माल्यवानिति विख्यातो वृद्धः प्राज्ञो निशाचरः ॥ २३ ॥

पिता ज्येष्ठो जनन्या नो ह्यस्माकं चार्यकोऽभवत् ।
तस्य कुम्भीनसी नाम दुहितुर्दुहिताऽभवत् ॥ २४ ॥

मातृष्वसुरथास्माकं सा च कन्याऽनलोद्भवा ।
भवत्यस्माकमेवैषा भ्रातणां धर्मतः स्वसा ॥ २५ ॥

सा हृता मधुना राजन् राक्षसेन बलीयसा ।
यज्ञप्रवृत्ते पुत्रे तु मयि चान्तर्जलोषिते ॥ २६ ॥

कुम्भकर्णे महाराज निद्रामनुभवत्यथ ।
निहत्य राक्षसश्रेष्ठानमात्यानिह संमतान् ॥ २७ ॥

धर्षयित्वा हृता सा तु सुप्ताऽप्यन्तःपुरे तव ।
श्रुत्वापि तन्महाराज क्षान्तमेव हतो नसः ॥ २८ ॥

यस्मादवश्यं दातव्या कन्या भर्त्रे हि भ्रातृभिः ।
तदेतत्कर्मणो ह्यस्य फलं पापस्य दुर्मते ॥
अस्मिन्नेवाभिसम्प्राप्तं लोके विदितमस्तु ते ॥ २९ ॥

ततोऽब्रवीद्दशग्रीवः क्रुद्धः संरक्तलोचनः ।
कल्प्यतां मे रथः शीघ्रं शूराः सज्जीभवन्तु नः ॥ ३० ॥

भ्राता मे कुम्भकर्णश्च ये च मुख्या निशाचराः ।
वाहनान्यधिरोहन्तु नानाप्रहरणोद्यताः ॥ ३१ ॥

अद्य तं समरे हत्वा मधुं रावणनिर्भयम् ।
सुरलोकं गमिष्यामि युद्धकाङ्क्षी सुहृद्वृतः ॥ ३२ ॥

ततो विजित्य त्रिदिवं वशे स्थाप्य पुरन्दरम् ।
निर्भयो विचरिष्यामि त्रैलोक्यैश्वर्यशोभितः ॥ ३३ ॥

अक्षौहिणीसहस्राणि चत्वार्यग्र्याणि रक्षसाम् ।
नानाप्रहरणान्याशु निर्ययुर्युद्धकाङ्क्षिणाम् ॥ ३४ ॥

इन्द्रजित्त्वग्रतः सैन्यात्सैनिकान्परिगृह्य च ।
जगाम रावणो मध्ये कुम्भकर्णश्च पृष्ठतः ॥ ३५ ॥

विभीषणश्च धर्मात्मा लङ्कायां धर्ममाचरत् ।
शेषाः सर्वे महाभागा ययुर्मधुपुरं प्रति ॥ ३६ ॥

खरैरुष्ट्रैर्हयैर्दीप्तैः शिशुमारैर्महोरगैः ।
राक्षसाः प्रययुः सर्वे कृत्वाऽऽकाशं निरन्तरम् ॥ ३७ ॥

दैत्याश्च शतशस्तत्र कृतवैराश्च दैवतैः ।
रावणं प्रेक्ष्य गच्छन्तमन्वगच्छन् हि पृष्ठतः ॥ ३८ ॥

स तु गत्वा मधुपुरं प्रविश्य च दशाननः ।
न ददर्श मधुं तत्र भगिनीं तत्र दृष्टवान् ॥ ३९ ॥

सा च प्रहाञ्जलिर्भूत्वा शिरसा चरणौ गता ।
तस्य राक्षसराजस्य त्रस्ता कुम्भीनसी तदा ॥ ४० ॥

तां समुत्थापयामास न भेतव्यमिति ब्रुवन् ।
रावणो राक्षसश्रेष्ठः किं चापि करवाणि ते ॥ ४१ ॥

साऽब्रवीद्यदि मे राजन् प्रसन्नस्त्वं महाभुज ।
भर्तारं न ममेहाद्य हन्तुमर्हसि मानद ॥ ४२ ॥

न हीदृशं भयं किञ्चित्कुलस्त्रीणामिहोच्यते ।
भयानामपि सर्वेषां वैधव्यं व्यसनं महत् ॥ ४३ ॥

सत्यवाग्भव राजेन्द्र मामवेक्षस्व याचतीम् ।
त्वयाऽप्युक्तं महाराज न भेतव्यमिति स्वयम् ॥ ४४ ॥

रावणस्त्वब्रवीद्दृष्टः स्वसारं तत्र संस्थिताम् ।
क्व चासौ तव भर्ता वै मम शीघ्रं निवेद्यताम् ॥ ४५ ॥

सह तेन गमिष्यामि सुरलोकं जयावहे ।
तव कारुण्यसौहार्दान्निवृत्तोऽस्मि मधोर्वधात् ॥ ४६ ॥

इत्युक्ता सा समुत्थाप्य प्रसुप्तं तं निशाचरम् ।
अब्रवीत्संप्रहृष्टेव राक्षसी तु पतिं वचः ॥ ४७ ॥

एष प्राप्तो दशग्रीवो मम भ्राता महाबलः ।
सुरलोकजयाकाङ्क्षी साहाय्ये त्वां वृणोति च ॥ ४८ ॥

तदस्य त्वं सहायार्थं सबन्धुर्गच्छ राक्षस ।
स्निग्धस्य भजमानस्य युक्तमर्थाय कल्पितुम् ॥ ४९ ॥

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा तथेत्याह मधुर्वचः ॥ ५० ॥

ददर्श राक्षसश्रेष्ठं यथान्यायमुपेत्य सः ।
पूजयामास धर्मेण रावणं राक्षसाधिपम् ॥ ५१ ॥

प्राप्य पूजां दशग्रीवो मधुवेश्मनि वीर्यवान् ।
तत्र चैकां निशामुष्य गमनायोपचक्रमे ॥ ५२ ॥

ततः कैलासमासाद्य शैलं वैश्रवणालयम् ।
राक्षसेन्द्रो महेन्द्राभः सेनामुपन्यवेशयत् ॥ ५३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे पञ्चविंशः सर्गः ॥

## षड्विंशः सर्गः ॥ २६ ॥

### नलकूबरशापः ॥

स तु तत्र दशग्रीवः सह सैन्येन वीर्यवान् ।
अस्तं प्राप्ते दिनकरे निवासं समरोचयत् ॥ १ ॥

उदिते विमले चन्द्रे तुल्यपर्वतवर्चसि ।
प्रसुप्तं सुमहत्सैन्यं नानाप्रहरणायुधम् ॥ २ ॥

रावणस्तु महावीर्यो निषण्णः शैलमूर्धनि ।
स ददर्श गुणांस्तत्र चन्द्रपादसुशोभितान् ॥ ३ ॥

कर्णिकारवनैर्दीप्तैः कदम्बगहनैस्तथा ।
पद्मिनीभिश्च फुल्लाभिर्मन्दाकिन्या जलैरपि ॥ ४ ॥

चम्पकाशोकपुन्नागमन्दारतरुभिस्तथा ।
चूतपाटललोध्रैश्च प्रियङ्ग्वर्जुनकेतकैः ॥ ५ ॥

तगरैर्नारिकेलैश्च प्रियालपनसैस्तथा ।
आरग्वधैस्तमालैश्च प्रियालबकुलैरपि ॥ ६ ॥

एतैरन्यैश्च तरुभिरुद्भासितवनान्तरे ।
किन्नरा मदनेनार्ता रक्ता मधुरकण्ठिनः ॥
समं संप्रजगुर्यत्र मनस्तुष्टिविवर्धनम् ॥ ७ ॥

विद्याधरा मदक्षीबा मदरक्तान्तलोचनाः ।
योषिद्भिः सह संक्रान्ताश्चिक्रीडुर्जहृषुश्च वै ॥ ८ ॥

घण्टानामिव सन्नादः शुश्रुवे मधुरस्वरः ।
अप्सरोगणसङ्घानां गायतां धनदालये ॥ ९ ॥

पुष्पवर्षाणि मुञ्चन्तो नगाः पवनताडिताः ।
शैलं तं वासयन्तीव मधुमाधवगन्धिनः ॥ १० ॥

मधुपुष्परजःपृक्तं गन्धमादाय पुष्कलम् ।
प्रववौ वर्धयन्कामं रावणस्य सुखोऽनिलः ॥ ११ ॥

गेयात्पुष्पसमृद्ध्या च शैत्याद्वायोर्गिरेर्गुणात् ।
प्रवृत्तायां रजन्यां च चन्द्रस्योदयनेन च ॥ १२ ॥

रावणः सुमहावीर्यः कामस्य वशमागतः ।
विनिश्वस्य विनिश्वस्य शशिनं समवैक्षत ॥ १३ ॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र दिव्याभरणभूषिता ।
सर्वाप्सरोवरा रम्भा दिव्यपुष्पविभूषिता ॥ १४ ॥

दिव्यचन्दनलिप्ताङ्गी मन्दारकृतमूर्धजा ।
दिव्योत्सवकृतारम्भा पूर्णचन्द्रनिभानना ॥ १५ ॥

चक्षुर्मनोहरं पीनं मेखलादामभूषितम् ।
समुद्वहन्ती जघनं रतिप्राभृतमुत्तमम् ॥ १६ ॥

कृतैर्विशेषकैरार्द्रैः षडर्तुकुसुमोद्भवैः ।
बभावन्यतमेव श्रीकान्तिद्युतिमतिह्रियाम् ॥
नीलं सतोयमेघाभं वस्त्रं समवकुण्ठिता ॥ १७ ॥

यस्या वक्त्रं शशिनिभं भ्रुवौ चापनिभे शुभे ।
ऊरू करिकराकारौ करौ पल्लवकोमलौ ॥
सैन्यमध्येन गच्छन्ती रावणेनोपवीक्षिता ॥ १८ ॥

तां समुत्थाय गच्छन्तीं कामबाणवशं गतः ।
करे गृहीत्वा लज्जन्तीं स्मयमानोऽभ्यभाषत ॥ १९ ॥

क्व गच्छसि वरारोहे कां सिद्धिं भजसे स्वयम् ।
कस्याभ्युदयकालोऽयं यस्त्वां समुपभोक्ष्यते ॥ २० ॥

त्वदाननरसस्याद्य पद्मोत्पलसुगन्धिनः ।
सुधामृतरसस्येव कोऽद्य तृप्तिं गमिष्यति ॥ २१ ॥

स्वर्णकुम्भनिभौ पीनौ शुभौ भीरु निरन्तरौ ।
कस्योरःस्थलसंस्पर्शं दास्यतस्ते कुचाविमौ ॥ २२ ॥

सुवर्णचक्रप्रतिमं स्वर्णदामचितं पृथु ।
अध्यारोहति कस्तेऽद्य जघनं स्वर्गरूपिणम् ॥ २३ ॥

मद्विशिष्टः पुमान्कोऽद्य शक्रो विष्णुरथाश्विनौ ।
मामतीत्य हि यं च त्वं यासि भीरु न शोभनम् ॥ २४ ॥

विश्रम त्वं पृथुश्रोणि शिलातलमिदं शुभम् ॥ २५ ॥

त्रैलोक्ये यः प्रभुश्चैव मदन्यो नैव विद्यते ॥ २६ ॥

तदेवं प्राञ्जलिः प्रह्वो याचते त्वां दशाननः ।
भर्तुर्भर्ता विधाता च त्रैलोक्यस्य भजस्व माम् ॥ २७ ॥

एवमुक्ताऽब्रवीद्रम्भा वेपमाना कृताञ्जलिः ।
प्रसीद नार्हसे वक्तुमीदृशं त्वं हि मे गुरुः ॥ २८ ॥

अन्येभ्यो हि त्वया रक्ष्या प्राप्तुयां धर्षणं यदि ।
तद्धर्मतः स्नुषा तेऽहं तत्त्वमेव ब्रवीमि ते ॥ २९ ॥

अथाब्रवीद्दशग्रीवश्चरणाधोमुखीं स्थिताम् ।
रोमहर्षमनुप्राप्तां दृष्टमात्रेण तां तदा ॥ ३० ॥

सुतस्य यदि मे भार्या ततस्त्वं हि स्नुषा भवेः ।
बाढमित्येव सा रम्भा प्राह रावणमुत्तरम् ॥ ३१ ॥

धर्मतस्ते सुतस्याहं भार्या राक्षसपुङ्गव ।
पुत्रः प्रियतरः प्राणैर्भ्रातुर्वैश्रवणस्य ते ॥
विख्यातस्त्रिषु लोकेषु नलकूबर इत्ययम् ॥ ३२ ॥

धर्मतो यो भवेद्विप्रः क्षत्रियो वीर्यतो भवेत् ।
क्रोधाद्यश्च भवेदग्निः क्षान्त्या च वसुधासमः ॥ ३३ ॥

तस्यास्मि कृतसङ्केता लोकपालसुतस्य वै ।
तमुद्दिश्य तु मे सर्वं विभूषणमिदं कृतम् ॥ ३४ ॥

तथा तस्य हि नान्यस्य भावो मां प्रति तिष्ठति ।
तेन सत्येन मां राजन्मोक्तुमर्हस्यरिन्दम ॥ ३५ ॥

स हि तिष्ठति धर्मात्मा मां प्रतीक्षन्समुत्सुकः ।
तत्र विघ्नं सुतस्येह कर्तुं नार्हसि मुञ्च माम् ॥ ३६ ॥

सद्भिराचरितं मार्गं गच्छ राक्षसपुङ्गव ।
माननीयो मम त्वं हि पालनीया तथाऽस्मि ते ॥ ३७ ॥

एवमुक्तो दशग्रीवः प्रत्युवाच विनीतवत् ।
स्नुषाऽस्मि यदवोचस्त्वमेकपत्नीष्वयं क्रमः ॥ ३८ ॥

देवलोकस्थितिरियं सुराणां शाश्वती मता ।
पतिरप्सरसां नास्ति न चैकस्त्रीपरिग्रहः ॥ ३९ ॥

एवमुक्त्वा स तां रक्षो निवेश्य च शिलातले ।
कामभोगाभिसंसक्तो मैथुनायोपचक्रमे ॥ ४० ॥

सा विमुक्ता ततो रम्भा भ्रष्टमाल्यविभूषणा ।
गजेन्द्राक्रीडमथिता नदीवाकुलतां गता ॥ ४१ ॥

लुलिताकुलकेशान्ता विधूतकरपल्लवा ।
पवनेनावधूतेव लता कुसुमशालिनी ॥ ४२ ॥

सा वेपमाना लज्जन्ती भीता करकृताञ्जलिः ।
नलकूबरमासाद्य पादयोर्निपपात ह ॥ ४३ ॥

तदवस्थां च तां दृष्ट्वा महात्मा नलकूबरः ।
अब्रवीत्किमिदं भद्रे पादयोः पतिताऽसि मे ॥ ४४ ॥

सा वै निश्वसमाना तु वेपमाना कृताञ्जलिः ।
तस्मै सर्वं यथातत्त्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥ ४५ ॥

एष देव दशग्रीवः प्राप्तो गन्तुं त्रिविष्टपम् ।
तेन सैन्यसहायेन निशेयं परिणामिता ॥ ४६ ॥

आयान्ती तेन दृष्टाऽस्मि त्वत्सकाशमरिन्दम ।
गृहीत्वा तेन पृष्टाऽस्मि कस्य त्वमिति रक्षसा ॥ ४७ ॥
मया तु सर्वं यत्सत्यं तस्मै सर्वं निवेदितम् ।
काममोहाभिभूतात्मा नाश्रौषीत्तद्वचो मम ॥ ४८ ॥
याच्यमानो मया देव स्नुषा तेऽहमिति प्रभो ।
तत्सर्वं पृष्ठतः कृत्वा बलात्तेनाऽस्मि धर्षिता ॥ ४९ ॥
एवं त्वमपराधं मे क्षन्तुमर्हसि सुव्रत ।
न हि तुल्यबलं सौम्य स्त्रियाश्च पुरुषस्य च ॥ ५० ॥
एतच्छ्रुत्वा तु संक्रुद्धस्तदा वैश्रवणात्मजः ।
धर्षणां तां परां श्रुत्वा ध्यानं संप्रविवेश ह ॥ ५१ ॥
तस्य तत्कर्म विज्ञाय तदा वैश्रवणात्मजः ।
मुहूर्तात्क्रोधताम्राक्षस्तोयं जग्राह पाणिना ॥ ५२ ॥
गृहीत्वा सलिलं सर्वमुपस्पृश्य यथाविधि ।
उत्ससर्ज तदा शापं राक्षसेन्द्राय दारुणम् ॥ ५३ ॥
अकामा तेन यस्मात्त्वं बलाद्भद्रे प्रधर्षिता ।
तस्मात्स युवतीमन्यां नाकामामुपयास्यति ॥ ५४ ॥
यदा ह्यकामां कामार्तो धर्षयिष्यति योषितम् ।
मूर्धा तु सप्तधा तस्य शकलीभविता तदा ॥ ५५ ॥
तस्मिन्नुदाहृते शापे ज्वलिताग्निसमप्रभे ।
देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिश्च खाच्च्युता ॥
पितामहमुखाश्चैव सर्वे देवाः प्रहर्षिताः ॥ ५६ ॥

ज्ञात्वा लोकगतिं सर्वो तस्य मृत्युं च राक्षसः ।
ऋषयः पितरश्चैव प्रीतिमापुरनुत्तमाम् ॥ ५७ ॥

श्रुत्वा तु स दशग्रीवस्तं शापं रोमहर्षणम् ।
नारीषु मैथुने भावं नाकामास्वभ्यरोचयत् ॥ ५८ ॥

तेन नीताः स्त्रियः प्रीतिमापुः सर्वाः पतिव्रताः ।
नलकूबरनिर्मुक्तं शापं श्रुत्वा मनःप्रियम् ॥ ५९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे षड्विंशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 21789 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 1065



सप्तविंशः सर्गः ॥ २७ ॥

सुमालिवधः ॥

कैलासं लङ्घयित्वाऽथ दशग्रीवः स रावणः ।
आससाद महातेजा इन्द्रलोकं निशाचरः ॥ १ ॥

तस्य राक्षससैन्यस्य समन्तादुपयास्ततः ।
देवलोकं ययौ शब्दो भिद्यमानार्णवोपमः ॥ २ ॥

श्रुत्वा तु रावणं प्राप्तमिन्द्रश्चलित आसनात् ।
अब्रवीत्तत्र तान्देवान्सर्वानेव समागतान् ॥ ३ ॥

आदित्यान्सवसून्रुद्रान्विश्वान्साध्यान्मरुद्गणान् ।
सज्जीभवत युद्धार्थं रावणस्य दुरात्मनः ॥ ४ ॥

एवमुक्तास्तु शक्रेण देवाः शक्रसमा युधि ।
संनह्य सुमहासत्त्वा युद्धश्रद्धासमन्विताः ॥ ५ ॥

स तु दीनः परित्रस्तो महेन्द्रो रावणं प्रति ।
विष्णोः समीपमागम्य वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ६ ॥

विष्णो कथं करिष्यामि महावीर्यपराक्रमः ।
असौ हि बलवान्रक्षो युद्धार्थमभिवर्तते ॥ ७ ॥

वरप्रदानाद्बलवान्न खल्वन्येन हेतुना ।
तत्तु सत्यवचः कार्यं यदुक्तं पद्मयोनिना ॥ ८ ॥

तद्यथा नमुचिर्वृत्रो बलिर्नरकशम्बरौ ।
त्वद्बलं समवष्टभ्य मया दग्धास्तथा कुरु ॥ ९ ॥

न ह्यन्यो देव देवानामापत्सु सुमहाबलः ।
गतिः परायणं नास्ति त्वामृते पुरुषोत्तम ॥ १० ॥

त्वं हि नारायणः श्रीमान्पद्मनाभः सनातनः ।
त्वयेमे स्थापिता लोकाः शक्रश्चाहं सुरेश्वरः ॥ ११ ॥

तदाचक्ष्व यथातत्त्वं देवदेव मम स्वयम् ।
अपि चक्रसहायस्त्वं योत्स्यसे रावणं प्रभो ॥ १२ ॥

एवमुक्तः स शक्रेण देवो नारायणः प्रभुः ।
अब्रवीन्न परित्रासः कार्यस्ते श्रूयतां च मे ॥ १३ ॥

न तावदेष दुष्टात्मा शक्यो दैवतदानवैः ।
हन्तुं युधि समासाद्य वरदानेन दुर्जयः ॥ १४ ॥

सर्वथा तु महत्कर्म करिष्यति बलोत्कटः ।
राक्षसः पुत्रसहितो दृष्टमेतन्निसर्गतः ॥ १५ ॥

यत्तु मां त्वमभाषिष्ठा युध्यस्वेति सुरेश्वर ।
नाहं तं प्रतियोत्स्यामि रावणं राक्षसं युधि ॥ १६ ॥

नाहत्वा समरे शत्रुं विष्णुः प्रतिनिवर्तते ।
दुर्लभश्चैव कामोऽद्य वरगुप्ताद्धि रावणात् ॥ १७ ॥

प्रतिजाने च देवेन्द्र त्वत्समीपे शतक्रतो ।
भविताऽस्मि यथाऽस्याहं रक्षसो मृत्युकारणम् ॥ १८ ॥

अहमेव निहन्ताऽस्मि रावणं सपुरःसरम् ।
देवता नन्दयिष्यामि ज्ञात्वा कालमुपागतम् ॥ १९ ॥

एतस्मिन्नन्तरे नादः शुश्रुवे रजनीक्षये ।
तस्य रावणसैन्यस्य प्रयुद्धस्य समन्ततः ॥ २० ॥

ते प्रयुद्धा महावीर्या ह्यन्योन्यमभिवीक्ष्य वै ।
संग्राममेवाभिमुखा ह्यभ्यवर्तन्त हृष्टवत् ॥ २१ ॥

ततो दैवतसैन्यानां संक्षोभः समजायत ।
तदक्षयं महासैन्यं दृष्ट्वा समरमूर्धनि ॥ २२ ॥

ततो युद्धं समभवद्देवदानवरक्षसाम् ।
घोरं तुमुलनिर्ह्रादं नानाप्रहरणोद्यतम् ॥ २३ ॥

एतस्मिन्नन्तरे शूरा राक्षसा घोरदर्शनाः ।
युद्धार्थं समवर्तन्त सचिवा रावणाज्ञया ॥ २४ ॥

मारीचश्च प्रहस्तश्च महापार्श्वमहोदरौ ।
अकम्पनो निकुम्भश्च शुकः सारण एव च ॥ २५ ॥

संह्लादो धूमकेतुश्च महादंष्ट्रो महामुखः ।
जम्बुमाली महाह्रादो विरूपाक्षश्च राक्षसः ॥ २६ ॥

सुप्तघ्नो यज्ञकोपश्च दुर्मुखो दूषणः खरः ।
त्रिशिराः करवीराक्षः सूर्यशत्रुश्च राक्षसः ॥ २७ ॥

महाकायोऽतिकायश्च देवान्तकनरान्तकौ ।
एतैः सर्वैः परिवृतो महावीर्यो महाबलः ॥ २८ ॥

रावणस्यार्यकः सैन्यं सुमाली प्रविवेश ह ।
स दैवतगणान्सर्वान्नानाप्रहरणैः शितैः ॥ २९ ॥

व्यध्वंसयत्सुसंक्रुद्धो वायुर्जलचरानिव ॥ ३० ॥

सुमालिभयसन्त्रस्ताः सुरास्ते सर्वतो दिशि ।
प्रदुद्रुवुर्वध्यमानाः सिंहत्रस्ता मृगा इव ॥ ३१ ॥

एतस्मिन्नन्तरे शूरो वसूनामष्टमो वसुः ।
सावित्र इति विख्यातः प्रविवेश रणाजिरम् ॥ ३२ ॥

सैन्यैः परिवृतो हृष्टो नानाप्रहरणोद्यतैः ।
त्रासयञ्च्छत्रुसैन्यानि सिंहः क्षुद्रमृगानिव ॥ ३३ ॥

तथाऽऽदित्यौ महावीर्यौ त्वष्टा पूषा च दंशितौ ।
निर्भयौ सह सैन्येन तदा प्राविशतां रणे ॥ ३४ ॥

ततो युद्धं समभवत्सुराणां सह राक्षसैः ।
क्रुद्धानां रक्षसां कीर्तिं समरेष्वनिवर्तिनाम् ॥ ३५ ॥

ततस्ते राक्षसाः सर्वे विबुधान्समरे स्थितान् ।
नानाप्रहरणैर्घोरैर्जघ्नुः शतसहस्रशः ॥ ३६ ॥

देवाश्च राक्षसान्घोरान्महाबलपराक्रमान् ।
समरे विमलैः शस्त्रैरुपनिन्युर्यमक्षयम् ॥ ३७ ॥

एतस्मिन्नन्तरे राम सुमाली नाम राक्षसः ।
नानाप्रहरणैः क्रुद्धस्तत्सैन्यं सोऽभ्यवर्तत ॥ ३८ ॥

स दैवतबलं सर्वं नानाप्रहरणैः शितैः ।
व्यध्वंसयत संक्रुद्धो वायुर्जलधरं यथा ॥ ३९ ॥

ते महाबाणवर्षैश्च शूलप्रासैः सुदारुणैः ।
हन्यमानाः सुराः सर्वे न व्यतिष्ठन्त संहताः ॥ ४० ॥

ततो विद्राव्यमाणेषु दैवतेषु सुमालिना ।
वसूनामष्टमः क्रुद्धः सावित्रो वै व्यवस्थितः ॥ ४१ ॥

संवृतः स्वैरथानीकैः प्रहरन्तं निशाचरम् ।
विक्रमेण महातेजा वारयामास संयुगे ॥ ४२ ॥

ततस्तयोर्महायुद्धमभवद्रोमहर्षणम् ।
सुमालिनो वसोश्चैव समरेष्वनिवर्तिनोः ॥ ४३ ॥

ततस्तस्य महाबाणैर्वसुना सुमहात्मना ।
निहतः पन्नगरथः क्षणेन विनिपातितः ॥ ४४ ॥

हत्वा तु संयुगे तस्य रथं बाणशतैश्चितम् ।
गदां तस्य वधार्थाय वसुर्जग्राह पाणिना ॥ ४५ ॥

ततः प्रगृह्य दीप्ताग्रां कालदण्डोपमां गदाम् ।
तां मूर्ध्नि पातयामास सावित्रो वै सुमालिनः ॥ ४६ ॥

सा तस्योपरि चोल्काभा पतन्तीव बभौ गदा ।
इन्द्रप्रयुक्ता गर्जन्ती गिराविव महाशनिः ॥ ४७ ॥

तस्य नैवास्थि न शिरो न मांसं ददृशे तदा ।
गदया भस्मतां नीतं निहतस्य रणाजिरे ॥ ४८ ॥

तं दृष्ट्वा निहतं सङ्ख्ये राक्षसास्ते समन्ततः ।
व्यद्रवन्सहिताः सर्वे क्रोशमानाः परस्परम् ॥ ५९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे सप्तविंशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 21838 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 1114



## अष्टाविंशः सर्गः ॥ २८ ॥

जयन्तापवाहनं इन्द्ररावणयुद्धं च ॥

सुमालिनं हतं दृष्ट्वा वसुना भस्मसात्कृतम् ।
स्वसैन्यं विद्रुतं चापि लक्षयित्वाऽर्दितं सुरैः ॥ १ ॥

ततः स बलवान्क्रुद्धो रावणस्य सुतस्तदा ।
निवर्त्य राक्षसान्सर्वान्मेघनादो व्यवस्थितः ॥ २ ॥

सुरथेनाग्निवर्णेन कामगेन महारथः ।
अभिदुद्राव सेनां तां वनान्यग्निरिव ज्वलन् ॥ ३ ॥

ततः प्रविशतस्तस्य विविधायुधधारिणः ।
विदुद्रुवुर्दिशः सर्वा दर्शनादेव देवताः ॥ ४ ॥

न बभूव तदा कश्चिद्युयुत्सोरस्य संमुखे ।
सर्वानाविध्य वित्रस्तान्दृष्ट्वा शक्रोऽभ्यभाषत ॥ ५ ॥

न भेतव्यं न गन्तव्यं निवर्तध्वं रणे सुराः ।
एष गच्छति पुत्रो मे युद्धार्थमपराजितः ॥ ६ ॥

ततः शक्रसुतो देवो जयन्त इति विश्रुतः ।
रथेनाद्भुतकल्पेन संग्रामे सोऽभ्यवर्तत ॥ ७ ॥

ततस्ते त्रिदशाः सर्वे परिवार्य शचीसुतम् ।
रावणस्य सुतं युद्धे समासाद्य प्रजज्ञिरे ॥ ८ ॥

तेषां युद्धं समभवत्सदृशं देवरक्षसाम् ।
महेन्द्रस्य च पुत्रस्य राक्षसेन्द्रसुतस्य च ॥ ९ ॥

ततो मातलिपुत्रे तु गोमुखे राक्षसात्मजः ।
सारथौ पातयामास शरान्कनकभूषणान् ॥ १० ॥

शचीसुतश्चापि तथा जयन्तस्तस्य सारथिम् ।
तं चापि रावणिः क्रुद्धः समन्तात्प्रत्यविध्यत ॥ ११ ॥

स हि क्रोधसमाविष्टो बली विस्फारितेक्षणः ।
रावणिः शक्रतनयं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ १२ ॥

ततः प्रगृह्य शस्त्राणि सारवन्ति महान्ति च ।
सुरसैन्येषु संक्रुद्धः पातयामास रावणिः ॥ १३ ॥

शतघ्नीमुसलप्रासगदाखड्गपरश्वधान् ।
महान्ति गिरिशृङ्गाणि पातयामास रावणिः ॥ १४ ॥

ततः प्रव्यथिता लोकाः सज्ञज्ञे च तमो महत् ।
तस्य रावणपुत्रस्य शत्रुसैन्यानि निघ्नतः ॥ १५ ॥

ततस्तद्दैवतबलं समन्तात्तं शचीसुतम् ।
बहुप्रकारमस्वस्थमभवच्छरपीडितम् ॥ १६ ॥

नाभ्यजानन्त चान्योन्यं रक्षो वा देवताऽथ वा ।
तत्र तत्र विपर्यस्तं समन्तात्परिधावति ॥ १७ ॥

एतस्मिन्नन्तरे वीरः पुलोमा नाम वीर्यवान् ।
दैत्येन्द्रस्तेन संगृह्य शचीपुत्रोऽपवाहितः ॥ १८ ॥

संगृह्य तं तु दौहित्रं प्रविष्टः सागरं तदा ।
मातामहार्यकस्तस्य पौलोमी येन सा शची ॥ १९ ॥

ज्ञात्वा प्रणाशं तु तदा जयन्तस्याथ देवताः ।
अप्रहृष्टास्ततः सर्वा व्यथिताः संप्रदुद्रुवुः ॥ २० ॥

रावणिस्त्वथ संक्रुद्धो बलैः परिवृतः स्वकैः ।
अभ्यधावत देवांस्तान्ननाद च महास्वनम् ॥ २१ ॥

दृष्ट्वा प्रणाशं पुत्रस्य रावणेश्चापि विक्रमम् ।
मातलिं चाह देवेशो रथः समुपनीयताम् ॥ २२ ॥

स तु दिव्यो महाभीमः सज्ज एव महारथः ।
उपस्थितो मातलिना वाह्यमानो महाजवः ॥ २३ ॥

ततो मेघा रथे तस्मिंस्तडिद्वन्तो महाबलाः ।
अग्रतो वायुचपला नेदुः परमनिस्वनाः ॥ २४ ॥

नानावाद्यान्यवाद्यन्त गन्धर्वाश्च समाहिताः ।
ननृतुश्चाप्सरःसङ्घा निर्याते त्रिदशेश्वरे ॥ २५ ॥

रुद्रैर्वसुभिरादित्यैः साध्यैश्च समरुद्गणैः ।
वृतो नानाप्रहरणैर्निर्ययौ त्रिदशाधिपः ॥ २६ ॥

निर्गच्छतस्तु शक्रस्य परुषं पवनो ववौ ।
भास्करो निष्प्रभश्चासीन्महोल्काश्च प्रपेदिरे ॥ २७ ॥

एतस्मिन्नन्तरे वीरो दशग्रीवः प्रतापवान् ।
आरुरोह रथं दिव्यं निर्मितं विश्वकर्मणा ॥ २८ ॥

पन्नगैस्तु महाभोगैर्वेष्टितं रोमहर्षणैः ।
तेषां निश्वासवातेन प्रदीप्तमिव संयुगे ॥ २९ ॥

दैत्यैर्निशाचरैश्चैव स रथः परिवारितः ।
समराभिमुखो दैत्यो महेन्द्रं सोऽभ्यवर्तत ॥ ३० ॥

पुत्रं तं वारयित्वा तु स्वयमेव व्यवस्थितः ।
सोऽपि युद्धाद्विनिष्क्रम्य रावणिः समुपाविशत् ॥ ३१ ॥

ततो युद्धं प्रवृत्तं तु सुराणां राक्षसैः सह ।
शस्त्राणि वर्षतां घोरं मेघानामिव संयुगे ॥ ३२ ॥

कुम्भकर्णस्तु दुष्टात्मा नानाप्रहरणोद्यतः ।
नाज्ञायत तदा युद्धे सह केनाप्ययुध्यत ॥ ३३ ॥

दन्तैर्भुजाभ्यां पद्भ्यां च शक्तितोमरसायकैः ।
येन केनैव संरब्धस्ताडयामास वै सुरान् ॥ ३४ ॥

ततो रुद्रैर्महाघोरैः सङ्गम्याथ निशाचरः ।
प्रयुद्धस्तैश्च संग्रामे क्षतः शस्त्रैर्निरन्तरम् ॥ ३५ ॥

बभौ शस्त्राचिततनुः कुम्भकर्णः क्षरन्नसृक् ।
विद्युत्स्तनितनिर्घोषो धारावानिव तोयदः ॥ ३६ ॥

ततस्तद्राक्षसं सैन्यं त्रिदशैः समरुद्गणैः ।
रणे विद्राविते सर्वं नानाप्रहरणैः शितैः ॥ ३७ ॥

केचिद्विनिहताः कृत्ताश्चेष्टन्ति स्म महीतले ।
वाहनेष्ववसक्ताश्च स्थिता एवापरे रणे ॥ ३८ ॥

रथान्नागान्खरानुष्ट्रान्पन्नगांस्तुरगान्रणे ।
शिंशुमारान्वराहांश्च पिशाचवदनांस्तथा ॥ ३९ ॥

तान्समालिङ्ग्य बाहुभ्यां विष्टब्धाः केचिदुच्छ्रिताः ।
देवैस्तु शस्त्रसंभिन्ना मज्जिरे च निशाचराः ॥ ४० ॥

चित्रकर्म इवाभाति स तेषां रणसंप्लवः ।
निहतानां प्रमत्तानां राक्षसानां महीतले ॥ ४१ ॥

शोणितोदकनिष्पन्दकङ्कगृध्रसमाकुला ।
प्रवृत्ता संयुगमुखे शस्त्रग्राहवती नदी ॥ ४२ ॥

एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धो दशग्रीवः प्रतापवान् ।
निरीक्ष्य तद्बलं कृत्स्नं दैवतैर्विनिपातितम् ॥ ४३ ॥

स तं प्रतिविगाह्याशु प्रवृद्धं सैन्यसागरम् ।
त्रिदशान्समरे निघ्नञ्च्छक्रमेवाभ्यवर्तत ॥ ४४ ॥

आगाच्छक्रो महच्चापं विस्फार्य सुमहास्वनम् ।
यस्य विस्फारघोषेण स्वनन्ति स्म दिशो दश ॥ ४५ ॥

तद्विकृष्य महच्चापमिन्द्रो रावणमूर्धनि ।
निपातयामास शरान्पावकादित्यवर्चसः ॥ ४६ ॥

तथैव च महाबाहुर्दशग्रीवो व्यवस्थितः ।
शक्रं कार्मुकविभ्रष्टैः शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ४७ ॥

प्रयुध्यतोरथ तयोर्बाणवर्षैः समन्ततः
न ज्ञायते तदा किञ्चित्सर्वं हि तमसा वृतम् ॥ ४८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे अष्टाविंशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 21886 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 1162



## एकोनत्रिंशः सर्गः ॥ २९ ॥

### इन्द्रग्रहणम् ॥

ततस्तमसि सञ्जाते सर्वे ते देवराक्षसाः ।
अयुध्यन्त बलोन्मत्ताः सूदयन्तः परस्परम् ॥ १ ॥

ततस्तु देवसैन्येन राक्षसानां बृहद्बलम् ।
दशांशं स्थापितं युद्धे शेषं नीतं यमक्षयम् ॥ २ ॥

तस्मिंस्तु तामसे युद्धे सर्वे ते देवराक्षसाः ।
अन्योन्यं नाभ्यजानन्त युध्यमानाः परस्परम् ॥ ३ ॥

इन्द्रश्च रावणश्चैव रावणिश्च महाबलः ।
तस्मिंस्तमोजालवृते मोहमीयुर्न ते त्रयः ॥ ४ ॥

स तु दृष्ट्वा बलं सर्वं निहतं रावणः क्षणात् ।
क्रोधमभ्यागमत्तीव्रं महानादं च मुक्तवान् ॥ ५ ॥

क्रोधात्सूतं च दुर्धर्षः स्यन्दनस्थमुवाच ह ।
परसैन्यस्य मध्येन यावदन्तो नयस्व माम् ॥ ६ ॥

अद्यैतांस्त्रिदशान्सर्वान्विक्रमैः समरे स्वयम् ।
नानाशस्त्रैर्महाघोरैर्नयामि यमसादनम् ॥ ७ ॥

अहमिन्द्रं वधिष्यामि धनदं वरुणं यमम् ।
त्रिदशान्विनिहत्याथ स्वयं स्थास्याम्यथोपरि ॥
विषादो न च कर्तव्यः शीघ्रं वाहय मे रथम् ॥ ८ ॥

द्विः खलु त्वां ब्रवीम्यद्य यावदन्तो नयस्व माम् ॥ ९ ॥

अयं स नन्दनोद्देशो यत्र वर्तामहे वयम् ।
नय मामद्य तत्र त्वमुदयो यत्र पर्वतः ॥ १० ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा तुरङ्गान्स मनोजवान् ।
आदिदेशाथ शत्रूणां मध्येनैव च सारथिः ॥ ११ ॥

तस्य तं निश्चयं ज्ञात्वा शक्रो देवेश्वरस्तदा ।
रथस्थः समरस्थांस्तान्देवान्वाक्यमथाब्रवीत् ॥ १२ ॥

सुराः शृणुत मद्वाक्यं यत्तावन्मम रोचते ।
जीवन्नेव दशग्रीवः साधु रक्षो निगृह्यताम् ॥ १३ ॥

एष ह्यतिबलः सैन्ये रथेन पवनौजसा ।
गमिष्यति प्रवृद्धोर्मिः समुद्र इव पर्वणि ॥ १४ ॥

न ह्येष हन्तुं शक्योऽद्य वरदानात्सुनिर्भयः ।
तद्ग्रहीष्यामहे रक्षो यत्ता भवत संयुगे ॥ १५ ॥

यथा बलौ निरुद्धे च त्रैलोक्यं भुज्यते मया ।
एवमेतस्य पापस्य निरोधो मम रोचते ॥ १६ ॥

ततोऽन्यं देशमास्थाय शक्रः सन्त्यज्य रावणम् ।
अयुध्यत महाराज राक्षसांस्त्रासयन्रणे ॥ १७ ॥

उत्तरेण दशग्रीवः प्रविवेशानिवर्तकः ।
दक्षिणेन तु पार्श्वेन प्रविवेश शतक्रतुः ॥ १८ ॥

ततः स योजनशतं प्रविष्टो राक्षसाधिपः ।
देवतानां बलं सर्वं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ १९ ॥

ततः शक्रो निरीक्ष्याथ प्रनष्टं तु स्वकं बलम् ।
न्यवर्तयदसंभ्रान्तः समावृत्य दशाननम् ॥ २० ॥

एतस्मिन्नन्तरे नादो मुक्तो दानवराक्षसैः ।
हा हताः स्म इति ग्रस्तं दृष्ट्वा शक्रेण रावणम् ॥ २१ ॥

ततो रथं समास्थाय रावणिः क्रोधमूर्च्छितः ।
तत्सैन्यमतिसंक्रुद्धः प्रविवेश सुदारुणम् ॥ २२ ॥

तां प्रविश्य महामायां प्राप्तां गोपतिना पुरा ।
प्रविवेश सुसंरब्धस्तत्सैन्यं समभिद्रवत् ॥ २३ ॥

स सर्वा देवतास्त्यक्त्वा शक्रमेवाभ्यधावत ।
महेन्द्रश्च महातेजा नापश्यच्च सुतं रिपोः ॥ २४ ॥

स मातलिं समायान्तं ताडयित्वा शरोत्तमैः ।
महेन्द्रं बाणवर्षेण भूय एवाभ्यवाकिरत् ॥ २५ ॥

ततस्त्यक्त्वा रथं शक्रो विससर्ज च सारथिम् ।
ऐरावतं समारुह्य मृगयामास रावणिम् ॥ २६ ॥

स तत्र मायाबलवानदृश्योऽथान्तरिक्षगः ।
इन्द्रं मायापरिक्षिप्तं कृत्वा स प्राद्रवच्छरैः ॥ २७ ॥

स तं यदा परिश्रान्तमिदं जज्ञेऽथ रावणिः ।
तदैनं मायया बध्वा स्वसैन्यमभितोऽनयत् ॥ २८ ॥

तं तु दृष्ट्वा बलात्तेन नीयमानं महारणात् ।
महेन्द्रममराः सर्वे किं नु स्यादित्यचिन्तयन् ॥ २९ ॥

दृश्यते न स मायावी शक्रजित्समितिंजयः ।
विद्यावानपि येनेन्द्रो मायया नीयते बलात् ॥ ३० ॥

एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धाः सर्वे सुरगणास्तदा ।
रावणं विमुखीकृत्य शरवर्षैरवाकिरन् ॥ ३१ ॥

रावणस्तु समासाद्य आदित्यांश्च वसूंस्तथा ।
न शशाक स सङ्ग्रामे योद्धुं शत्रुभिरर्दितः ॥ ३२ ॥

स तं दृष्ट्वा परिम्लानं प्रहारैर्जर्जरीकृतम् ।
रावणिः पितरं युद्धेऽदर्शनस्थोऽब्रवीदिदम् ॥ ३३ ॥

आगच्छ तात गच्छामो रणकर्म निवर्तताम् ।
जितं नो विदितं तेऽस्तु स्वस्थो भव गतज्वरः ॥ ३४ ॥

अयं हि सुरसैन्यस्य त्रैलोक्यस्य च यः प्रभुः ।
स गृहीतो दैवबलाद्भग्नदर्पाः सुराः कृताः ॥ ३५ ॥

यथेष्टं भुङ्क्ष्व लोकांस्त्रीन्निगृह्यारातिमोजसा ।
वृथा किं ते श्रमेणेह युद्धमद्य तु निष्फलम् ॥ ३६ ॥

ततस्ते दैवतगणा निवृत्ता रणकर्मणः ।
तच्छ्रुत्वा रावणेर्वाक्यं स्वस्थचेता बभूव ह ॥ ३७ ॥

अथ रणविगतज्वरः प्रभुर्विजयमवाप्य निशाचराधिपः ।
स्वभवनमभितो जगाम हृष्टः स्वसुतमवाप्य च वाक्यमब्रवीत् ॥

अतिबलसदृशैः पराक्रमैस्तैर्मम कुलमानविवर्धनं कृतम् ।
यदमरसमविक्रम त्वया वै त्रिदशपतिस्त्रिदशाश्च निर्जिताः ॥

नय रथमधिरोप्य वासवं नगरमितो व्रज सेनया वृतस्त्वम् ।
अहमपि तव गच्छतो द्रुतं सह सचिवैरनुयामि पृष्ठतः ॥

अथ स बलवृतः सवाहनस्त्रिदशपतिं परिगृह्य रावणिः ।
स्वभवनमभिगम्य राक्षसो मुदितमना विससर्ज राक्षसान् ।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे एकोनत्रिंशः सर्गः ॥
आदितः श्लोकाः 21927 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 1203



त्रिंशः सर्गः ॥ ३० ॥

मेघनादस्य इन्द्रजिन्नामप्राप्तिः ॥

जिते महेन्द्रेऽतिबले रावणस्य सुतेन वै ।
प्रजापतिं सुराः सर्वे गताः परमदुःखिताः ॥ १ ॥

भगवन्पुरुहूतोऽयं निगृहीतोऽभवद्वरात् ।
राक्षसेन्द्रं सुरैः सर्वैरवध्यं कृतवानसि ॥ २ ॥

महेश्वरेण पुत्रस्य वरा दत्ता दुरात्मनः ।
किं करोतु सुरेन्द्रस्तं मायया बलवत्तरम् ॥ ३ ॥

सुराश्च सर्वे लोकेश न जयन्ति भवद्वरात् ।
तस्मात्त्वमेव देवेन्द्रं मोचयस्व महाद्युते
अद्यप्रभृति लोकेश स्वविक्रमबलोदितः ॥ ४ ॥

इति विज्ञाप्य भावज्ञाः प्रणिपत्य प्रसाद्य च ।
प्रजापतिं पुरस्कृत्य ययुर्लङ्कां सुरास्तदा ॥ ५ ॥

तत्र रावणमासाद्य पुत्रभ्रातृभिरावृतम् ।
अब्रवीद्भगने तिष्ठन्सामपूर्वं प्रजापतिः ॥ ६ ॥

वत्स रावण तुष्टोऽस्मि पुत्रस्य तव संयुगे ।
अहोऽस्य विक्रमौदार्यं तव तुल्योऽधिकोऽपि वा ॥ ७ ॥

जितं हि भवता सर्वं त्रैलोक्यं स्वेन तेजसा ।
कृता प्रतिज्ञा सफला प्रीतोऽस्मि स्वसुतेन वै ॥ ८ ॥

अयं च पुत्रोऽतिबलस्तव रावण वीर्यवान् ।
जगतीन्द्रजिदित्येव परिख्यातो भविष्यति ॥ ९ ॥

बलवान्दुर्जयश्चैव भविष्यत्येव राक्षसः ।
यं समाश्रित्य ते राजन्स्थापितास्त्रिदशा वशे ॥ १० ॥

तन्मुच्यतां महाबाहो महेन्द्रः पाकशासनः ।
किं चास्य मोक्षणार्थाय प्रयच्छन्तु दिवौकसः ॥ ११ ॥

अथाब्रवीन्महातेजा इन्द्रजित्समितिञ्जयः ।
अमरत्वमहं देव वृणे यद्येष मुच्यते ॥ १२ ॥

ततोऽब्रवीन्महातेजा मेघनादं प्रजापतिः ।
नास्ति सर्वामरत्वं हि कस्यचित्प्राणिनो भुवि ॥
चतुष्पदः पक्षिणश्च भूतानां वा महौजसाम् ॥ १३ ॥

मरणान्तानि सर्वाणि स्थावराणि चराणि च ।
अपि शुष्कस्य वृक्षस्य पर्णस्य पतनं भवेत् ॥ १४ ॥

श्रुत्वा पितामहेनोक्तमिन्द्रजित्प्रभुणाऽव्ययम् ।
अथाब्रवीत्स तत्रस्थं मेघनादो महाबलः ॥
श्रूयतां वा भवेत्सिद्धिः शतक्रतुविमोक्षणे ॥ १५ ॥

ममेष्टं नित्यशो हव्यैर्मन्त्रैः संपूज्य पावकम् ।
सङ्ग्राममवतर्तुं च शत्रुनिर्जयकाङ्क्षिणः ॥ १६ ॥

अश्वयुक्तो रथो मह्यमुत्तिष्ठेत्तु विभावसोः ।
तत्स्थस्यामरता स्यान्मे एष मे निश्चयो वरः ॥ १७ ॥

तस्मिन्यज्ञसमाप्ते च जप्यहोमे विभावसौ ।
युध्येयं देव संग्रामे तदा मे स्याद्विनाशनम् ॥ १८ ॥

सर्वो हि तपसा देव वृणोत्यमरतां पुमान् ।
विक्रमेण मया त्वेतदमरत्वं प्रवर्तितम् ॥ १९ ॥

एवमस्त्विति तं चाह वाक्यं देवः पितामहः ।
मुक्तश्चेन्द्रजिता शक्रो गताश्च त्रिदिवं सुराः ॥ २० ॥

एतस्मिन्नन्तरे राम दीनो भ्रष्टामरद्युतिः ।
इन्द्रश्चिन्तापरीतात्मा ध्यानतत्परतां गतः ॥ २१ ॥

तं तु दृष्ट्वा तथाभूतं प्राह देवः प्रजापतिः ।
शतक्रतो किमु पुरा करोति स्म सुदुष्कृतम् ॥ २२ ॥

अमरेन्द्र मया बह्वयः प्रजाः सृष्टास्तदा प्रभो ।
एकवर्णाः समाभाषा एकरूपाश्च सर्वशः ॥ २३ ॥

तासां नास्ति विशेषो हि दर्शने लक्षणेऽपि वा ।
ततोऽहमेकाग्रमनास्ताः प्रजाः पर्यचिन्तयम् ॥ २४ ॥

सोऽहं तासां विशेषार्थं स्त्रियमेकां विनिर्ममे ।
यद्यत्प्रजानां प्रत्यङ्गं विशिष्टं तत्तदुद्धृतम् ॥ २५ ॥

ततो मया रूपगुणैरहल्या स्त्री विनिर्मिता ।
हलं नामेह वैरूप्यं हल्यं तत्प्रभवं भवेत् ॥ २६ ॥

यस्मान्न विद्यते हल्यं तेनाहल्येति विश्रुता ।
अहल्येति मया शक्र तस्या नाम प्रकीर्तितम् ॥ २७ ॥

निर्मितायां च देवेन्द्र तस्यां नार्यां सुरर्षभ ।
भविष्यतीति कस्यैषा मम चिन्ता ततोऽभवत् ॥ २८ ॥

त्वं तु शक्र तदा नारीं जानीषे मनसा प्रभो ।
स्थानाधिकतया पत्नी ममैषेति पुरन्दर ॥ २९ ॥

सा मया न्यासभूता तु गौतमस्य महात्मनः ।
न्यस्ता बहूनि वर्षाणि तेन निर्यातिता च ह ॥ ३० ॥

ततस्तस्य परिज्ञाय मया स्थैर्यं महामुनेः ।
ज्ञात्वा तपसि सिद्धिं च पत्न्यर्थे स्पर्शिता तदा ॥ ३१ ॥

स तया सह धर्मात्मा रमते स्म महामुनिः ।
आसन्निराशा देवास्तु गौतमे दत्तया तया ॥ ३२ ॥

संक्रुद्धस्त्वं हि धर्मात्मन्गत्वा तस्याश्रमं मुनेः ।
दृष्टवांश्च तदा तां स्त्रीं दीप्तामग्निशिखामिव ॥ ३३ ॥

सा त्वया धर्षिता शक्र कामार्तेन समन्युना ।
दृष्टस्त्वं च तदा तेन ह्याश्रमे परमर्षिणा ॥ ३४ ॥

ततः क्रुद्धेन तेनासि शप्तः परमतेजसा ।
गतोऽसि येन देवेन्द्र दशाभागविपर्ययम् ॥ ३५ ॥

यस्मान्मे धर्षिता पत्नी त्वया वासव निर्भयम् ।
तस्मात्त्वं समरे राजञ्च्छत्रुहस्तं गमिष्यसि ॥ ३६ ॥

अयं तु भावो दुर्बुद्धे यस्त्वयेह प्रवर्तितः ।
मानुषेष्वपि लोकेषु भविष्यति न संशयः ॥ ३७ ॥

तत्रार्धं तस्य यः कर्ता त्वय्यर्धं निपतिष्यति ।
न च ते स्थावरं स्थानं भविष्यति पुरन्दर ॥ ३८ ॥

यश्च यश्च सुरेन्द्रः स्याद्भुवः स न भविष्यति ।
एष शापो मया मुक्त इत्यसौ त्वां तदाऽब्रवीत् ॥ ३९ ॥

तां तु भार्यां स निर्भर्त्स्य सोऽब्रवीत्सुमहातपाः ।
दुर्विनीते विनिध्वंस ममाश्रमसमीपतः ॥ ४० ॥

रूपयौवनसम्पन्ना यस्मात्त्वमनवस्थिता ।
तस्माद्रूपवती लोके न त्वमेका भविष्यसि ॥ ४१ ॥

रूपं च ते प्रजाः सर्वा गमिष्यन्ति न संशयः ।
यत्तदेकं समाश्रित्य विभ्रमोऽयमुपस्थितः ॥ ४२ ॥

तदाप्रभृति भूयिष्ठं प्रजा रूपसमन्विताः ।
सा तं प्रसादयामास महर्षिं गौतमं तदा ॥ ४३ ॥

अज्ञानाद्धर्षिता नाथ त्वद्रूपेण दिवौकसा ।
न कामकाराद्विप्रर्षे प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ ४४ ॥

अहल्यया त्वेवमुक्तः प्रत्युवाच स गौतमः ।
उत्पत्स्यति महातेजा इक्ष्वाकूणां महारथः ॥ ४५ ॥

रामो नाम श्रुतो लोके वनं चाप्युपयास्यति ।
ब्राह्मणार्थे महाबाहुर्विष्णुर्मानुषविग्रहः ॥ ४६ ॥

तं द्रक्ष्यसि यदा भद्रे ततः पूता भविष्यसि ।
स हि पावयितुं शक्तस्त्वया यदुष्कृतं कृतम् ॥ ४७ ॥

तस्यातिथ्यं च कृत्वा वै मत्समीपं गमिष्यसि ।
वत्स्यसि त्वं मया सार्धं तदा हि वरवर्णिनि ॥ ४८ ॥

एवमुक्त्वा स विप्रर्षिराजगाम स्वमाश्रमम् ।
ततश्चचार सुमहत्तपा पत्नी ब्रह्मवादिनः ॥ ४९ ॥

शापोत्सर्गाद्धि तस्येदं मुनेः सर्वमुपस्थितम् ।
तत्स्मर त्वं महाबाहो दुष्कृतं यत्त्वया कृतम् ॥
तेन त्वं ग्रहणं शत्रोर्यातो नान्येन वासव ॥ ५० ॥

शीघ्रं वै यज यज्ञं त्वं वैष्णवं सुसमाहितः ।
पावितस्तेन यज्ञेन यास्यसे त्रिदिवं ततः ॥ ५१ ॥

पुत्रश्च तव देवेन्द्र न विनष्टो महारणे ।
नीतः सन्निहितश्चैव आर्यकेण महोदधौ ॥ ५२ ॥

एतच्छ्रुत्वा महेन्द्रस्तु यज्ञमिष्ट्वा च वैष्णवम् ।
पुनस्त्रिदिवमाक्रामदन्वशासच्च देवराट् ॥ ५३ ॥
एतदिन्द्रजितो नाम बलं यत्कीर्तितं मया ।
निर्जितस्तेन देवेन्द्रः प्राणिनोऽन्ये तु किं पुनः ॥ ५४ ॥
आश्चर्यमिति रामश्च लक्ष्मणश्चाब्रवीत्तदा ।
अगस्त्यवचनं श्रुत्वा वानरा राक्षसास्तदा ॥ ५५ ॥
विभीषणस्तु रामस्य पार्श्वस्थो वाक्यमब्रवीत् ।
आश्चर्यं स्मारितोऽस्म्यद्य यत्तद्दृष्टं पुरातनम् ॥ ५६ ॥
अगस्त्यं त्वब्रवीद्रामः सत्यमेतच्छ्रुतं च मे ॥ ५७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे त्रिंशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 21984 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 1260

## एकत्रिंशः सर्गः ॥ ३१ ॥

रावणनर्मदावगाहः ॥

ततो रामो महातेजा विस्मयात्पुनरेव हि ।
उवाच प्रणतो वाक्यमगस्त्यमृषिसत्तमम् ॥ १ ॥
भगवन्राक्षसः क्रूरो यदाप्रभृति मेदिनीम् ।
पर्यटत्यिं तदा लोकाः शून्या आसन्द्विजोत्तम ॥ २ ॥
राजा वा राजमात्रो वा किं तदा नात्र कश्चन ।
धर्षणं यत्र न प्राप्तो रावणो राक्षसेश्वरः ॥ ३ ॥

उताहो हीनवीर्यास्ते बभूवुः पृथिवीक्षितः ।
बहिष्कृता वराश्चैव बहवो निर्जिता नृपाः ॥ ४ ॥

राघवस्य वचः श्रुत्वा ह्यगस्त्यो भगवानृषिः ।
उवाच रामं प्रहसन्निदमह इवेश्वरम् ॥ ५ ॥

इत्येवं बाधमानस्तु पार्थिवान्पार्थिवर्षभ ।
चचार रावणो राम पृथिवीं पृथिवीपते ॥ ६ ॥

ततो माहिष्मतीं नाम पुरीं स्वर्गपुरीप्रभाम् ।
संप्राप्तो यत्र सान्निध्यं परमं वसुरेतसः ॥ ७ ॥

तुल्य आसीन्नृपस्तत्र प्रभावाद्वसुरेतसः ।
अर्जुनो नाम यस्याग्निः शरकुण्डेशयः सदा ॥ ८ ॥

तमेव दिवसं सोथ हैहयाधिपतिर्बली ।
अर्जुनो नर्मदां रन्तुं गतः स्त्रीभिः सहेश्वरः ॥ ९ ॥

रावणो राक्षसेन्द्रस्तु तस्मिन्प्राप्य दिने पुरीम् ।
अपश्यन्हैहयेशं तु तस्यामात्यानपृच्छत ॥ १० ॥

क्वार्जुनो नृपतिः शीघ्रं सम्यगाख्यातुमर्हथ ।
रावणोऽहमनुप्राप्तो युद्धेप्सुर्नृवरेण ह ॥
ममागमनमव्यग्रैर्युष्माभिः सन्निवेद्यताम् ॥ ११ ॥

इत्येवं रावणेनोक्ता येऽमात्याः सुविपश्चितः ।
अब्रुवन्राक्षसपतिमसान्निध्यं महीपतेः ॥ १२ ॥

श्रुत्वा विश्रवसः पुत्रः पौराणामर्जुनं गतम् ।
अपसृत्यागतो विन्ध्यं हिमवत्सन्निभं गिरिम् ॥ १३ ॥

स तमभ्रमिवाविष्टमुद्भ्रान्तमिव मेदिनीम् ।
अपश्यद्रावणो विन्ध्यमालिखन्तमिवाम्बरम् ॥ १४ ॥

सहस्रशिखरोपेतं सिंहाध्युषितकन्दरम् ।
प्रपातपतितैः शीतैः साट्टहासमिवाम्बुभिः ॥ १५ ॥

देवदानवगन्धर्वैः साप्सरोगणकिन्नरैः ।
स्वःस्त्रीभिः क्रीडमानैश्च स्वर्गभूतं महोच्छ्रयम् ॥ १६ ॥

नदीभिः स्यन्दमानाभिः स्फाटिकप्रतिमं जलम् ।
फणाभिश्चलजिह्वाभिरनन्तमिव विष्ठितम् ॥ १७ ॥

उत्क्रामन्तं दरीवन्तं हिमवत्सन्निभं गिरिम् ।
पश्यमानस्ततो विन्ध्यं रावणो नर्मदां ययौ ॥
चलोपलजलां पुण्यां पश्चिमोदधिगामिनीम् ॥ १८ ॥

महिषैः सृमरैः सिंहैः शार्दूलर्क्षगजोत्तमैः ।
उष्णाभितप्तैस्तृषितैः संक्षोभितजलाशयाम् ॥ १९ ॥

चक्रवाकैः सकारण्डैः सहंसजलकुक्कुटैः ।
सारसैश्च सदा मत्तैः सुकूजद्भिः समावृताम् ॥ २० ॥

फुल्लद्रुमकृतोत्तंसां चक्रवाकयुगस्तनीम् ।
विस्तीर्णपुलिनश्रोणीं हंसवालिसुमेखलाम् ॥ २१ ॥

पुष्परेण्वनुलिप्ताङ्गीं जलफेनामलांशुकाः ।
जलावगाहसंस्पर्शां फुल्लोत्पलशुभेक्षणाम् ॥ २२ ॥

पुष्पकादवरुह्याशु नर्मदां सरितां वराम् ।
इष्टामिव वरां नारीमवगाह्य दशाननः ॥ २३ ॥

स तस्याः पुलिने रम्ये नानाकुसुमशोभिते ।
उपोपविष्टैः सचिवैः सार्धं राक्षसपुङ्गवः ॥ २४ ॥

प्रख्याय नर्मदां चाथ गङ्गेयमिति रावणः ।
नर्मदादर्शजं हर्षमाप्तवान्राक्षसाधिपः ॥ २५ ॥

ततः सलीलं प्रहसन्रावणो राक्षसाधिपः ।
उवाच सचिवांस्तत्र मारीचशुकसारणान् ॥ २६ ॥

एष रश्मिसहस्रेण जगत्कृत्वैव काञ्चनम् ।
तीक्ष्णतापकरः सूर्यो नभसो मध्यमास्थितः ॥
मामासीनं विदित्वेह चन्द्रायति दिवाकरः ॥ २७ ॥

नर्मदाजलशीतश्च सुगन्धिः श्रमनाशनः ।
मन्दयादनिलोऽप्यत्र वात्येष सुसमाहितः ॥ २८ ॥

इयं चापि सरिच्छ्रेष्ठा नर्मदा नर्मवर्धिनी ।
नक्रमीनविहङ्गोर्मिः सभयेवाङ्गना स्थिता ॥ २९ ॥

तद्भवन्तः क्षताः शस्त्रैर्नृपैरिन्द्रसमैर्युधि ।
चन्दनस्य रसेनेव रुधिरेण समुक्षिताः ॥ ३० ॥

ते यूयमवगाहध्वं नर्मदां शर्मदां नृणाम् ।
महापद्ममुखा मत्ता गङ्गामिव महागजाः ॥
अस्यां स्नात्वा महानद्यां पाप्मानं विप्रमोक्ष्यथ ॥ ३१ ॥

अहमप्यद्य पुलिने शरदिन्दुसमप्रभे ।
पुष्पोपहारं शनकैः करिष्यामि कपर्दिनः ॥ ३२ ॥

रावणेनैवमुक्तास्तु प्रहस्तशुकसारणाः ।
समहोदरधूम्राक्षा नर्मदां विजगाहिरे ॥ ३३ ॥

राक्षसेन्द्रगजैस्तैस्तु क्षोभिता नर्मदा नदी ।
वामनाञ्जनपद्माद्यैर्गङ्गा इव महागजैः ॥ ३४ ॥

ततस्ते राक्षसाः स्नात्वा नर्मदायां वरांभसि ।
उत्तीर्य पुष्पाण्याजह्रुर्बल्यर्थं रावणस्य तु ॥ ३५ ॥

नर्मदापुलिने ह्रद्ये शुभ्राभ्रसदृशप्रभे ।
राक्षसैस्तु मुहूर्तेन कृतः पुष्पमयो गिरिः ॥ ३६ ॥

पुष्पेषूपहृतेष्वेवं रावणो राक्षसेश्वरः ।
अवतीर्णो नदीं स्नातुं गङ्गामिव महागजः ॥ ३७ ॥

तत्र स्नात्वा च विधिवज्जप्त्वा जप्यमनुत्तमम् ।
नर्मदासलिलात्तस्मादुत्ततार स रावणः ॥ ३८ ॥

तत्र क्लिन्नाम्बरं त्यक्त्वा शुक्लवस्त्रसमावृतम् ।
रावणं प्राञ्जलिं यान्तमन्वयुः सर्वराक्षसाः ॥
तद्गतीवशमापन्ना मूर्तिमन्त इवाचलाः ॥ ३९ ॥

यत्र यत्र च याति स्म रावणो राक्षसेश्वरः ।
जाम्बूनदमयं लिङ्गं तत्र तत्र स्म नीयते ॥ ४० ॥

वालुकावेदिमध्ये तु तल्लिङ्गं स्थाप्य रावणः ।
अर्चयामास गन्धैश्च पुष्पैश्चामृतगन्धिभिः ॥ ४१ ॥

ततः सतामार्तिहरं परं वरं
वरप्रदं चन्द्रमयूखभूषणम् ।
समर्चयित्वा स निशाचरो जगौ
प्रसार्य हस्तान्प्रणनर्त चायतान् ॥ ४२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे एकत्रिंशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 22026 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 1302

## द्वात्रिंशः सर्गः ॥ ३२ ॥

रावणबन्धनम् ॥

नर्मदापुलिने यत्र राक्षसेन्द्रः सुदारुणः ।
पुष्पापहारं कुरुते तस्मादेशाददूरतः ॥ १ ॥

अर्जुनो जयतां श्रेष्ठो माहिष्मत्याः पतिः प्रभुः ।
क्रीडते सह नारीभिर्नर्मदातोयमाश्रितः ॥ २ ॥

तासां मध्यगतो राजा रराज च तदार्जुनः ।
करेणूनां सहस्रस्य मध्यस्थ इव कुञ्जरः ॥ ३ ॥

जिज्ञासुः स तु बाहूनां सहस्रस्योत्तमं बलम् ।
रुरोध नर्मदावेगं बाहुभिर्बहुभिर्वृतः ॥ ४ ॥

कार्तवीर्यभुजासक्तं तज्जलं प्राप्य निर्मलम् ।
कूलोपहारं कुर्वाणं प्रतिस्रोतः प्रधावति ॥ ५ ॥

समीननक्रमकरः सपुष्पकुशसंस्तरः ।
स नर्मदाम्भसो वेगः प्रावृट्काल इवाबभौ ॥ ६ ॥

स वेगः कार्तवीर्येण संप्रेषित इवाम्भसः ।
पुष्पोपहारं सकलं रावणस्य जहार ह ॥ ७ ॥

रावणोऽर्धसमाप्तं तमुत्सृज्य नियमं तदा ।
नर्मदां पश्यते कान्तां प्रतिकूलां यथा प्रियाम् ॥ ८ ॥

पश्चिमेन तु तं दृष्ट्वा सागरोद्वारसन्निभम् ।
वर्धन्तमम्भसो वेगं पूर्वामाशां प्रविश्य तु ॥ ९ ॥

ततोऽनुभ्रान्तशकुनां स्वभावोपरमे स्थिताम् ।
निर्विकाराङ्गनाभासामपश्यद्रावणो नदीम् ॥ १० ॥

सव्येतरकराङ्गुल्या सशब्दं च दशाननः ।
वेगप्रभवमन्वेष्टुं सोदिशच्छुकसारणौ ॥ ११ ॥

तौ तु रावणसन्दिष्टौ भ्रातरौ शुकसारणौ ।
व्योमान्तरगतौ वीरौ प्रस्थितौ पश्चिमामुखौ ॥ १२ ॥

अर्धयोजनमात्रं तु गत्वा तौ रजनीचरौ ।
पश्येतां पुरुषं तोये क्रीडन्तं सहयोषितम् ॥ १३ ॥

बृहत्सालप्रतीकाशं तोयव्याकुलमूर्धजम् ।
मदरक्तान्तनयनं मदव्याकुलतेजसम् ॥ १४ ॥

नदीं बाहुसहस्रेण रुन्धन्तमरिमर्दनम् ।
गिरिं पादसहस्रेण रुन्धन्तमिव मेदिनीम् ॥ १५ ॥

बालानां वरनारीणां सहस्रेण समावृतम् ।
समदानां करेणूनां सहस्रेणेव कुञ्जरम् ॥ १६ ॥

तमद्भुततमं दृष्ट्वा राक्षसौ शुकसारणौ ।
सन्निवृत्तावुपागम्य रावणं तमथोचतु ॥ १७ ॥

बृहत्सालप्रतीकाशः कोऽप्यसौ राक्षसेश्वर ।
नर्मदां शैलवद्रुद्ध्वा क्रीडापयति योषितः ॥ १८ ॥

तेन बाहुसहस्रेण सन्निरुद्धजला नदी ।
सागरोद्गारसङ्काशानुद्गारान्सृजते मुहुः ॥ १९ ॥

इत्येवं भाषमाणौ तौ निशाम्य शुकसारणौ ।
रावणोऽर्जुन इत्युक्त्वा प्रययौ युद्धलालसः ॥ २० ॥

अर्जुनाभिमुखे तस्मिन्प्रस्थिते राक्षसेश्वरे ।
सकृदेव कृतो रावः सरक्तः प्रेषितो घनैः ॥ २१ ॥

महोदरमहापार्श्वधूम्राक्षशुकसारणैः ।
संवृतो राक्षसेन्द्रस्तु तत्रागाद्यत्र चार्जुनः ॥ २२ ॥

अदीर्घेणैव कालेन स तदा राक्षसो बली ।
तं नर्मदाह्रदं भीममाजगामाञ्जनप्रभः ॥ २३ ॥

स तत्र स्त्रीपरिवृतं वाशिताभिरिव द्विपम् ।
नरेन्द्रं पश्यते राजा राक्षसानां तदाऽर्जुनम् ॥ २४ ॥

स रोषाद्रक्तनयनो राक्षसेन्द्रो बलोद्धतः ।
इत्येवमर्जुनामात्यानाह गम्भीरया गिरा ॥ २५ ॥

अमात्याः क्षिप्रमाख्यात हैहयस्य नृपस्य वै ।
युद्धार्थी समनुप्राप्तो रावणो नाम राक्षसः ॥ २६ ॥

रावणस्य वचः श्रुत्वा मन्त्रिणोऽथार्जुनस्य ते ।
उत्तस्थुः सायुधास्त्राश्च रावणं वाक्यमब्रुवन् ॥ २७ ॥

युद्धस्य कालो विज्ञातः साधु भोः साधु रावण ।
यः क्षीबं स्त्रीवृतं चैव योद्धुमुत्सहसे नृपम् ॥ २८ ॥

स्त्रीसमक्षं कथं यत्तद्योद्धुमुत्सहसेऽर्जुनम् ।
वाशितामध्यगं मत्तं शार्दूल इव कुञ्जरम् ॥ २९ ॥

क्षमस्वाद्य दशग्रीव चोष्यतां शर्वरी त्वया ।
युद्धश्रद्धा तु यद्यस्ति श्वस्तात समरेऽर्जुनम् ॥ ३० ॥

यद्यद्यास्ति मतिर्योद्धुं युद्धतृष्णासमावृता ।
निहत्यास्मांस्ततो युद्धमर्जुनेनोपयास्यसि ॥ ३१ ॥

ततस्ते रावणामात्यैरमात्याः पार्थिवस्य तु ।
सूदिताश्चापि ते युद्धे भक्षिताश्च बुभुक्षितैः ॥ ३२ ॥

ततो हलहलाशब्दो नर्मदातीर आबभौ ।
अर्जुनस्यानुयातॄणां रावणस्य च मन्त्रिणाम् ॥ ३३ ॥

इषुभिस्तोमरैः शूलैस्त्रिशूलैर्वज्रकर्षणैः ।
सरावणानर्दयन्तः समन्तात्समभिद्रुताः ॥ ३४ ॥

हैहयाधिपयोधानां वेग आसीत्सुदारुणः ।
सनक्रमीनमकरसमुद्रस्येव निस्वनः ॥ ३५ ॥

रावणस्य तु तेऽमात्याः प्रहस्तशुकसारणाः ।
कार्तवीर्यबलं क्रुद्धा निर्दहन्ति स्म तेजसा ॥ ३६ ॥

अर्जुनाय तु तत्कर्म रावणस्य समन्त्रिणः ।
क्रीडमानाय कथितं पुरुषैर्द्वाररक्षिभिः ॥ ३७ ॥

श्रुत्वा न भेतव्यमिति स्त्रीजनं तं ततोऽर्जुनः ।
उत्ततार जलात्तस्माद्गजातोयादिवाञ्जनः ॥ ३८ ॥

क्रोधदूषितनेत्रस्तु स ततोऽर्जुनपावकः ।
प्रजज्वाल महाघोरो युगान्त इव पावकः ॥ ३९ ॥

स तूर्णतरमादाय वरहेमाङ्गदो गदाम् ।
अभिदुद्राव रक्षांसि तमांसीव दिवाकरः ॥ ४० ॥

बाहुविक्षेपकरणां समुद्यम्य महागदाम् ।
गारुडं वेगमास्थाय चापपातैव सोऽर्जुनः ॥ ४१ ॥

तस्य मार्गं समारुध्य विन्ध्योऽर्कस्येव पर्वतः ।
स्थितो विन्ध्य इवाकम्प्यः प्रहस्तो मुसलायुधः ॥ ४२ ॥

ततोऽस्य मुसलं घोरं लोहबद्धं महोद्यतः ।
प्रहस्तः प्रेषयन्क्रुद्धो ररास च यथाऽम्बुदः ॥ ४३ ॥

तस्याग्रे मुसलस्याग्निरशोकापीडसन्निभः ।
प्रहस्तकरमुक्तस्य बभूव प्रदहन्निव ॥ ४४ ॥

आधावमानं मुसलं कार्तवीर्यस्तदार्जुनः ।
निपुणं वञ्चयामास सगदोऽगदविक्रमः ॥ ४५ ॥

ततस्तमभिदुद्राव प्रहस्तं हैहयाधिपः ।
भ्रामयानो गदां गुर्वीं पञ्चबाहुशतोच्छ्रयाम् ॥ ४६ ॥

तथा हतोऽतिवेगेन प्रहस्तो गदया तदा ।
निपपात हतः शैलो वज्रिवज्रहतो यथा ॥ ४७ ॥

प्रहस्तं पतितं दृष्ट्वा मारीचशुकसारणाः ।
समहोदरधूम्राक्षा ह्यपसृष्टा रणाजिरात् ॥ ४८ ॥

अपक्रान्तेष्वमात्येषु प्रहस्ते विनिपातिते ।
रावणोऽभ्यद्रवत्तूर्णमर्जुनं नृपसत्तमम् ॥ ४९ ॥

सहस्रबाहोस्तद्युद्धं विंशद्बाहोश्च दारुणम् ।
नृपराक्षसयोस्तत्र चारब्धं रोमहर्षणम् ॥ ५० ॥

सागराविव संरब्धौ चलन्मूलाविवाचलौ ।
तेजोयुक्ताविवादित्यौ प्रदहन्ताविवानलौ ॥ ५१ ॥

बलोद्धतौ यथा नागौ वाशितार्थे यथा वृषौ ।
मेघाविव विनर्दन्तौ सिंहाविव बलोत्कटौ ॥ ५२ ॥

रुद्रकालाविव क्रुद्धौ तदा तौ राक्षसार्जुनौ ।
परस्परं गदाभ्यां तौ ताडयामासतुर्भृशम् ॥ ५३ ॥

वज्रप्रहारानचला यथा घोरान्विषेहिरे ।
गदाप्रहारांस्तौ तत्र सेहाते नरराक्षसौ ॥ ५४ ॥
यथाऽशनिरवेभ्यस्तु जायतेऽथ प्रतिश्रुतिः ।
तथा तयोर्गदापोर्थदिशः सर्वाः प्रतिश्रुताः ॥ ५५ ॥
अर्जुनस्य गदा सा तु पात्यमानाऽहितोरसि ।
काञ्चनाभं नभश्चक्रे विद्युत्सौदामिनी यथा ॥ ५६ ॥
तथैव रावणेनापि पात्यमाना मुहुर्मुहुः ।
अर्जुनोरसि निर्भाति गदोल्केव महागिरौ ॥ ५७ ॥
नार्जुनः खेदमायाति न राक्षसगणेश्वरः ।
सममासीत्तयोर्युद्धं यथा पूर्वं बलीन्द्रयोः ॥ ५८ ॥
शृङ्गैरिव वृषा युध्यन्दन्ताग्रैरिव कुञ्जरौ ।
परस्परं विनिघ्नन्तौ नरराक्षससत्तमौ ॥ ५९ ॥
ततोऽर्जुनेन क्रुद्धेन सर्वप्राणेन सा गदा ।
स्तनयोरन्तरे मुक्ता रावणस्य महोरसि ॥ ६० ॥
वरदानकृतत्राणे सा गदा रावणोरसि ।
दुर्बलेव यथावेगं द्विधा भूत्वाऽपतत्क्षितौ ॥ ६१ ॥
स त्वर्जुनप्रमुक्तेन गदापातेन रावणः ।
अपासर्पद्धनुर्मात्रं निषसाद च निष्टनन् ॥ ६२ ॥
स विह्वलं तदालक्ष्य दशग्रीवं ततोऽर्जुनः ।
सहसोत्पत्य जग्राह गरुत्मानिव पन्नगम् ॥ ६३ ॥
स तं बाहुसहस्रेण बलाद्गृह्य दशाननम् ।
बबन्ध बलवान्राजा बलिं नारायणो यथा ॥ ६४ ॥

बध्यमाने दशग्रीवे सिद्धचारणदेवताः ।
साध्वीति वादिनः पुष्पैः किरन्त्यर्जुनमूर्धनि ॥ ६५ ॥
व्याघ्रो मृगमिवादाय मृगराडिव दन्तिनम् ।
ननाद हैहयो राजा हर्षाम्बुदवन्मुहुः ॥ ६६ ॥
प्रहस्तस्तु समाश्वस्तो दृष्ट्वा बद्धं दशाननम् ।
सह तै राक्षसैः क्रुद्धश्चाभिदुद्राव पार्थिवम् ॥ ६७ ॥
नक्तञ्चराणां वेगस्तु तेषामापततां बभौ ।
उद्भूत आतपापाये पयोदानामिवाम्बुधौ ॥ ६८ ॥
मुञ्च मुञ्चेति भाषन्तस्तिष्ठ तिष्ठेति चासकृत् ।
मुसलानि सशूलानि सोत्ससर्ज तदाऽर्जुने ॥ ६९ ॥
अप्राप्तान्येव तान्याशु असंभ्रान्तस्तदाऽर्जुनः ।
आयुधान्यमरारीणां जग्राहारिनिषूदनः ॥ ७० ॥
ततस्तैरेव रक्षांसि दुर्धरैः प्रवरायुधैः ।
भित्त्वा विद्रावयामास वायुरम्बुधरानिव ॥ ७१ ॥
राक्षसांस्त्रासयित्वा तु कार्तवीर्योऽर्जुनस्तदा ।
रावणं गृह्य नगरं प्रविवेश सुहृद्वृतः ॥ ७२ ॥
स कीर्यमाणः कुसुमाक्षतोत्करैर्द्विजैः सपौरैः पुरुहूतसन्निभः ।
तदाऽर्जुनः संप्रविवेश तां पुरीं बलिं निगृह्येव सहस्रलोचनः ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे द्वात्रिंशः सर्गः ॥

## त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३३ ॥

### रावणमोचनम् ॥

रावणग्रहणं तत्तु वायुग्रहणसन्निभम् ।
ततः पुलस्त्यः शुश्राव कथितं दिवि दैवतैः ॥ १ ॥

ततः पुत्रकृतस्नेहात्कम्प्यमानो महाधृतिः ।
माहिष्मतीपतिं द्रष्टुमाजगाम महामुनिः ॥ २ ॥

स वायुमार्गमास्थाय वायुतुल्यगतिर्द्विजः ।
पुरीं माहिष्मतीं प्राप्तो मनःसंपातविक्रमः ॥ ३ ॥

सोऽमरावतिसङ्काशां हृष्टपुष्टजनाकुलाम् ।
प्रविवेश पुरीं ब्रह्मा इन्द्रस्येवामरावतीम् ॥ ४ ॥

पादचारमिवादित्यं निष्पतन्तं सुदुर्दशम् ।
ततस्ते प्रत्यभिज्ञाय द्वाःस्था राज्ञे न्यवेदयन् ॥ ५ ॥

पुलस्त्य इति विज्ञाय वचनाद्धैहयाधिपः ।
शिरस्यञ्जलिमाधाय प्रत्युद्गच्छत्तपस्विनम् ॥ ६ ॥

पुरोहितोऽस्य गृह्यार्घ्यं मधुपर्कं तथैव च ।
पुरस्तात्प्रययौ राज्ञः शक्रस्येव बृहस्पतिः ॥ ७ ॥

ततस्तमृषिमायान्तमुद्यन्तमिव भास्करम् ।
अर्जुनो दृश्य संभ्रान्तो ववन्देन्द्र इवेश्वरम् ॥ ८ ॥

स तस्य मधुपर्कं गां पाद्यमर्घ्यं निवेद्य च ।
पुलस्त्यमाह राजेन्द्रो हर्षगद्गदया गिरा ॥ ९ ॥

अद्यैवममरावत्या तुल्या माहिष्मती कृता ।
अद्याहं तु द्विजेन्द्र त्वां यस्मात्पश्यामि दुर्दृशम् ॥ १० ॥

अद्य मे कुशलं देव अद्य मे कुशलं व्रतम् ।
अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलं तपः ॥
यस्मादेवगणैर्वन्द्यौ वन्देऽहं चरणौ तव ॥ ११ ॥

इदं राज्यमिमे पुत्रा इमे दारा इमे वयम् ।
ब्रह्मन्किं कुर्मि किं कार्यमाज्ञापयतु नो भवान् ॥ १२ ॥

तं धर्मेऽग्निषु पुत्रेषु शिवं पृष्ट्वा च पार्थिवम् ।
पुलस्त्योवाच राजानं हैहयानां तथाऽर्जुनम् ॥ १३ ॥

नरेन्द्राम्बुजपत्राक्ष पूर्णचन्द्रनिभानन ।
अतुलं ते बलं येन दशग्रीवस्त्वया जितः ॥ १४ ॥

भयाद्यस्योपतिष्ठेतां निष्पन्दौ सागरानिलौ ।
सोऽयं मृधे त्वया बद्धः पौत्रो मे रणदुर्जयः ॥ १५ ॥

पुत्रकस्य यशः पीतं नाम विश्रावितं त्वया ।
मद्वाक्याद्याच्यमानोऽद्य मुञ्च वत्स दशाननम् ॥ १६ ॥

पुलस्त्याज्ञां प्रगृह्योचे न किञ्चन वचोऽर्जुनः ।
मुमोच वै पार्थिवेन्द्रो राक्षसेन्द्रं प्रहृष्टवत् ॥ १७ ॥

स तं प्रमुच्य त्रिदशारिमर्जुनः
प्रपूज्य दिव्याभरणस्रगम्बरैः ।
अहिंसकं सख्यमुपेत्य साग्निकं
प्रणम्य तं ब्रह्मसुतं गृहं ययौ ॥ १८ ॥

पुलस्त्येनापि सन्त्यक्तो राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् ।
परिष्वक्तः कृतातिथ्यो लज्जमानो विनिर्जितः ॥ १९ ॥

पितामहसुतश्चापि पुलस्त्यो मुनिपुङ्गवः ।
मोचयित्वा दशग्रीवं ब्रह्मलोकं जगाम ह ॥ २० ॥

एवं स रावणः प्राप्तः कार्तवीर्यात्प्रधर्षणम् ।
पुलस्त्यवचनाच्चापि पुनर्मुक्तो महाबलः ॥ २१ ॥

एवं बलिभ्यो बलिनः सन्ति राघवनन्दन ।
नावज्ञा हि परे कार्या य इच्छेत्प्रियमात्मनः ॥ २२ ॥

ततः स राजा पिशिताशनानां सहस्रबाहोरुपलभ्य मैत्रीम् ।
पुनर्नृपाणां कदनं चकार चचार सर्वां पृथिवीं च दर्पात् ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 22122 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 1398

## चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३४ ॥

### वालिरावणसख्यम् ॥

अर्जुनेन विमुक्तस्तु रावणो राक्षसाधिपः ।
चचार पृथिवीं सर्वामनिर्विण्णस्तथा कृतः ॥ १ ॥

राक्षसं वा मनुष्यं वा शृणुते यं बलाधिकम् ।
रावणस्तं समासाद्य युद्धे ह्वयति दर्पितः ॥ २ ॥

ततः कदाचित्किष्किन्धां नगरीं वालिपालिताम् ।
गत्वा ह्वयति युद्धाय वालिनं हेममालिनम् ॥ ३ ॥

ततस्तु वानरामात्यस्तारस्तारापिता प्रभुः ।
उवाच वानरो वाक्यं युद्धप्रेप्सुमुपागतम् ॥ ४ ॥

राक्षसेन्द्र गतो वाली यस्ते प्रतिबलो भवेत् ।
कोऽन्यः प्रमुखतः स्थातुं तव शक्तः प्लवङ्गमः ॥ ५ ॥

चतुर्भ्योऽपि समुद्रेभ्यः सन्ध्यामन्वास्य रावण ।
इदं मुहूर्तमायाति वाली तिष्ठ मुहूर्तकम् ॥ ६ ॥

एतानस्थिचयान्पश्य य एते शङ्खपाण्डुराः ।
युद्धार्थिनामिमे राजन्वानराधिपतेजसा ॥ ७ ॥

यद्वाऽमृतरसः पीतस्त्वया रावण राक्षस ।
तदा वालिनमासाद्य तदन्तं तव जीवितम् ॥ ८ ॥

पश्येदानीं जगच्चित्रमिमं विश्रवसः सुत ।
इदं मुहूर्तं तिष्ठस्व दुर्लभं ते भविष्यति ॥ ९ ॥

अथ वा त्वरसे मर्तुं गच्छ दक्षिणसागरम् ।
वालिनं द्रक्ष्यसे तत्र भूमिस्थमिव भास्करम् ॥ १० ॥

स तु तारं विनिर्भर्त्स्य रावणो लोकरावणः ।
पुष्पकं तत्समारुह्य प्रययौ दक्षिणार्णवम् ॥ ११ ॥

तत्र हेमगिरिप्रख्यं तरुणार्कनिभाननम् ।
रावणो वालिनं दृष्ट्वा सन्ध्योपासनतत्परम् ॥ १२ ॥

पुष्पकादवरुह्याथ रावणोऽञ्जनसन्निभः ।
ग्रहीतुं वालिनं तूर्णं निःशब्दपदमाव्रजत् ॥ १३ ॥

यदृच्छया तदा दृष्टो वालिनाऽपि स रावणः ।
पापाभिप्रायवान्दृष्ट्वा चकार न तु संभ्रमम् ॥ १४ ॥

शशमालक्ष्य सिंहो वा पन्नगं गरुडो यथा ।
न चिन्तयति तं वाली रावणं पापनिश्चयम् ॥ १५ ॥

जिघृक्षमाणमायान्तं रावणं पापचेतसम् ।
कक्षावलम्बिनं कृत्वा गमिष्ये त्रीन्महार्णवान् ॥ १६ ॥

द्रक्ष्यन्त्यरिं ममाङ्कस्थं संसदूरुकराम्बरम् ।
लम्बमानं दशग्रीवं गरुडस्येव पन्नगम् ॥ १७ ॥

इत्येवं मतिमास्थाय वाली कर्णमुपाश्रितः ।
जपन्वै नैगमान्मन्त्रांस्तस्थौ पर्वतराडिव ॥ १८ ॥

तावन्योन्यं जिघृक्षन्तौ हरिराक्षसपार्थिवौ ।
प्रयत्नवन्तौ तत्कर्म ईहतुर्बलदर्पितौ ॥ १९ ॥

हस्तग्राहं तु तं मत्वा पादशब्देन रावणम् ।
पराङ्मुखोऽपि जग्राह वाली सर्पमिवाण्डजः ॥ २० ॥

ग्रहीतुकामं तं गृह्य रक्षसामीश्वरं हरिः ।
खमुत्पपात वेगेन कृत्वा कक्षावलम्बिनम् ॥ २१ ॥

तं चापीड्यमानं तु वितुदन्तं नखैर्मुहुः ।
जहार रावणं वाली पवनस्तोयदं यथा ॥ २२ ॥

अथ ते राक्षसामात्या ह्रियमाणं दशाननम् ।
मुमोक्षयिषवो वालिं रक्षमाणा अभिद्रुताः ॥ २३ ॥

अन्वीयमानस्तैर्वाली भ्राजतेऽम्बरमध्यगः ।
अन्वीयमानो मेघौघैरम्बरस्थ इवांशुमान् ॥ २४ ॥

तेऽशक्नुवन्तः संप्राप्तुं वालिनं राक्षसोत्तमाः ।
तस्य बाहूरुवेगेन परिश्रान्ता व्यवस्थिताः ॥ २५ ॥

वालिमार्गादपाक्रामन्पर्वतेन्द्रा हि गच्छतः ।
किं पुनर्जीवितप्रेप्सुर्बिभ्रद्वै मांसशोणितम् ॥ २६ ॥

अपक्षिगणसंपातान्वानरेन्द्रो महाजवः ।
क्रमशः सागरान्सर्वान्सन्ध्याकालमवन्दत ॥ २७ ॥

संपूज्यमानो भूतैस्तु खेचरैः खेचरो हरिः ।
पश्चिमं सागरं वाली ह्याजगाम सरावणः ॥ २८ ॥

तस्मिन्सन्ध्यामुपासित्वा स्नात्वा जप्त्वा च वानरः ।
उत्तरं सागरं प्रायाद्वहमानो दशाननम् ॥ २९ ॥

बहुयोजनसाहस्रं वहमानो महाहरिः ।
वायुवच्च मनोवच्च जगाम सह शत्रुणा ॥ ३० ॥

उत्तरे सागरे सन्ध्यामुपासित्वा दशाननम् ।
वहमानोऽगमद्वाली पूर्वं वै स महोदधिम् ॥ ३१ ॥

तत्रापि संध्यामन्वास्य वासविः स हरीश्वरः ।
किष्किन्धामभितो गृह्य रावणं पुनरागमत् ॥ ३२ ॥

चतुर्ष्वपि समुद्रेषु सन्ध्यामन्वास्य वानरः ।
रावणोद्वहनश्रान्तः किष्किन्ध्योपवनेऽपतत् ॥ ३३ ॥

रावणं तु समुत्थाय स्वकक्षात्कपिसत्तमः ।
कुतस्त्वमिति चोवाच प्रहसन्रावणं मुहुः ॥ ३४ ॥

विस्मयं तु महद्गत्वा श्रमलोलनिरीक्षणः ।
राक्षसेन्द्रो हरीन्द्रं तमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ३५ ॥

वानरेन्द्र महेन्द्राभ राक्षसेन्द्रोऽस्मि रावणः ।
युद्धेप्सुरिह संप्राप्तः स चाद्यासादितस्त्वया ॥ ३६ ॥

अहो बलमहो वीर्यमहो गाम्भीर्यमेव च ।
येनाहं पशुवद्गृह्य भ्रामितश्चतुरोऽर्णवान् ॥ ३७ ॥

एवमश्रान्तवद्वीर शीघ्रमेव महार्णवान् ।
मां चैवोद्वहमानस्तु कोऽन्यो वीरः क्रमिष्यति ॥ ३८ ॥

त्रयाणामेव भूतानां गतिरेषा प्लवङ्गम ।
मनोऽनिलसुपर्णानां तव चात्र न संशयः ॥ ३९ ॥

सोऽहं दृष्टबलस्तुभ्यमिच्छामि हरिपुङ्गव ।
त्वया सह चिरं सख्यं सुस्निग्धं पावकाग्रतः ॥ ४० ॥

दाराः पुत्राः पुरं राष्ट्रं भोगाच्छादनभोजनम् ।
सर्वमेवाविभक्तं नौ भविष्यति हरीश्वर ॥ ४१ ॥

ततः प्रज्वालयित्वाऽग्निं तावुभौ हरिराक्षसौ ।
भ्रातृत्वमुपसंपन्नौ परिष्वज्य परस्परम् ॥ ४२ ॥

अन्योन्यं लम्भितकरौ ततस्तौ हरिराक्षसौ ।
किष्किन्धां विशतुर्हृष्टौ सिंहौ गिरिगुहामिव ॥ ४३ ॥

स तत्र मासमुषितः सुग्रीव इव रावणः ।
अमात्यैरागतैर्नीतस्त्रैलोक्योत्सादनार्थिभिः ॥ ४४ ॥

एवमेतत्पुरा वृत्तं वालिना रावणः प्रभो ।
धर्षितश्च कृतश्चापि भ्राता पावकसन्निधौ ॥ ४५ ॥

बलमप्रतिमं राम वालिनोऽभवदुत्तमम् ।
सोऽपि त्वया विनिर्दग्धः शलभो वह्निना यथा ॥ ४६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 22168 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 1444

## पञ्चत्रिंशः सर्गः ॥ ३५ ॥

हनुमदुत्पत्त्यादि ॥

अपृच्छत तदा रामो दक्षिणाशाश्रयं मुनिम् ।
प्राञ्जलिर्विनयोपेत इदमाह वचोऽर्थवत् ॥ १ ॥

अतुलं बलमेतद्वै वालिनो रावणस्य च ।
न त्वेताभ्यां हनुमता समं त्विति मतिर्मम ॥ २ ॥

शौर्यं दाक्ष्यं बलं धैर्यं प्राज्ञता नयसाधनम् ।
विक्रमश्च प्रभावश्च हनूमति कृतालयाः ॥ ३ ॥

दृष्ट्वैव सागरं वीक्ष्य सीदन्तीं कपिवाहिनीम् ।
समाश्वास्य महाबाहुर्योजनानां शतं प्लुतः ॥ ४ ॥

धर्षयित्वा पुरीं लङ्कां रावणान्तःपुरं तदा ।
दृष्ट्वा संभाषिता चापि सीता ह्याश्वासिता तथा ॥ ५ ॥

सेनाग्रगा मन्त्रिसुताः किङ्करा रावणात्मजः ।
एते हनुमता तत्र ह्येकेन विनिपातिताः ॥ ६ ॥

भूयो बन्धाद्विमुक्तेन भाषयित्वा दशाननम् ।
लङ्का भस्मीकृता येन पावकेनेव मेदिनी ॥ ७ ॥

न कालस्य न शक्रस्य न विष्णोर्वित्तपस्य च ।
कर्माणि तानि श्रूयन्ते यानि युद्धे हनूमतः ॥ ८ ॥

एतस्य बाहुवीर्येण लङ्का सीता च लक्ष्मणः ।
प्राप्ता मया जयश्चैव राज्यं मित्राणि बान्धवाः ॥ ९ ॥

हनूमान्यदि नो न स्याद्वानराधिपतेः सखा ।
प्रवृत्तिमपि को वेत्तुं जानक्याः शक्तिमान्भवेत् ॥ १० ॥

किमर्थं वाल्यनेनैव सुग्रीवप्रियकाम्यया ।
तदा वैरे समुत्पन्ने न दग्धो वीरुधो यथा ॥ ११ ॥

न हि वेदितवान्मन्ये हनूमानात्मनो बलम् ।
यदृष्ट्वाञ्जीवितेष्टं क्लिश्यन्तं वानराधिपम् ॥ १२ ॥

एतन्मे भगवन्सर्वं हनूमति महामतौ ।
विस्तरेण यथातत्त्वं कथयामरपूजित ॥ १३ ॥

राघवस्य वचः श्रुत्वा हेतुयुक्तमृषिस्तदा ।
हनूमतः समक्षं तमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १४ ॥

सत्यमेतद्रघुश्रेष्ठ यद्ब्रवीषि हनूमतः ।
न बले विद्यते तुल्यो न गतौ न मतौ परः ॥ १५ ॥

अमोघशापैः शापस्तु दत्तोऽस्य ऋषिभिः पुरा ।
न वेत्ता हि बलं येन बली सन्नरिमर्दनः ॥ १६ ॥

बाल्येऽप्येतेन यत्कर्म कृतं राम महाबल ।
तन्न वर्णयितुं शक्यमिति बालतयाऽस्य ते ॥ १७ ॥

यदि वाऽस्ति ह्यभिप्रायस्तच्छ्रोतुं तव राघव ।
समाधाय मतिं राम निशामय वदाम्यहम् ॥ १८ ॥

सूर्यदत्तवरस्वर्णः सुमेरुर्नाम पर्वतः ।
यत्र राज्यं प्रशास्त्यस्य केसरी नाम वै पिता ॥ १९ ॥

तस्य भार्या बभूवैषा ह्यञ्जनेति परिश्रुता ।
जनयामास तस्यां वै वायुरात्मजमुत्तमम् ॥ २० ॥

शालिशूकनिभाभासं प्रासूतामुं तदाऽञ्जना ।
फलान्याहर्तुकामा वै निष्क्रान्ता गहनेचरा ॥ २१ ॥

एष मातुर्वियोगाच्च क्षुधया च भृशार्दितः ।
रुरोद शिशुरत्यर्थं शिशुः शरवणे यथा ॥ २२ ॥

तदोद्यन्तं विवस्वन्तं जपापुष्पोत्करोपमम् ।
ददर्श फललोभाच्च ह्युत्पपात रविं प्रति ॥ २३ ॥

बालार्काभिमुखो बालो बालार्क इव मूर्तिमान् ।
ग्रहीतुकामो बालार्कं प्लवतेऽम्बरमध्यगः ॥ २४ ॥

एतस्मिन्प्लवमाने तु शिशुभावे हनूमति ।
देवदानवयक्षाणां विस्मयः सुमहानभूत् ॥ २५ ॥

नाप्येवं वेगवान्वायुर्गरुडो वा मनस्तथा ।
यथाऽयं वायुपुत्रस्तु क्रमतेऽम्बरमुत्तमम् ॥ २६ ॥

यदि तावच्छिशोरस्य त्वीदृशो गतिविक्रमः ।
यौवनं बलमासाद्य कथं वेगो भविष्यति ॥ २७ ॥

तमनुप्लवते वायुः प्लवन्तं पुत्रमात्मनः ।
सूर्यदाहभयाद्रक्षंस्तुषारचयशीतलः ॥ २८ ॥

बहुयोजनसाहस्रं क्रमत्येष गतोऽम्बरम् ।
पितुर्बलाच्च बाल्याच्च भास्कराभ्याशमागतः ॥ २९ ॥

शिशुरेष त्वदोषज्ञ इति मत्वा दिनेश्वरः ।
कार्यं चात्र समायत्तमित्येवं न ददाह सः ॥ ३० ॥

यमेव दिवसं ह्येष ग्रहीतुं भास्करं प्लुतः ।
तमेव दिवसं राहुर्जिघृक्षति दिवाकरम् ॥ ३१ ॥

अनेन स परामृष्टो राम सूर्यरथोपरि ।
अपक्रान्तस्ततस्त्रस्तो राहुश्चन्द्रार्कमर्दनः ॥ ३२ ॥

स इन्द्रभवनं गत्वा सरोषः सिंहिकासुतः ।
अब्रवीद्भ्रुकुटिं कृत्वा देवं देवगणैर्वृतम् ॥ ३३ ॥

बुभुक्षापनयं दत्त्वा चन्द्रार्कौ मम वासव ।
किमिदं तत्त्वया दत्तमन्यस्य बलवृत्रहन् ॥ ३४ ॥

अद्याहं पर्वकाले तु जिघृक्षुः सूर्यमागतः ।
अथान्यो राहुरासाद्य जग्राह सहसा रविम् ॥ ३५ ॥

स राहोर्वचनं श्रुत्वा वासवः संभ्रमान्वितः ।
उत्पपातासनं हित्वा चोद्वहन्काञ्चनीं स्रजम् ॥ ३६ ॥

ततः कैलासकूटाभं चतुर्दन्तं मदस्रवम् ।
शृङ्गारधारिणं प्रांशुं स्वर्णघण्टाट्टहासिनम् ॥ ३७ ॥

इन्द्रः करीन्द्रमारुह्य राहुं कृत्वा पुरःसरम् ।
प्रायाद्यत्राभवत्सूर्यः सहानेन हनूमता ॥ ३८ ॥

अथातिरभसेनागाद्राहुरुत्सृज्य वासवम् ।
अनेन च स वै दृष्टः प्रधावञ्च्छैलकूटवत् ॥ ३९ ॥

ततः सूर्यं समुत्सृज्य राहुं फलमवेक्ष्य च ।
उत्पपात पुनर्व्योम ग्रहीतुं सिंहिकासुतम् ॥ ४० ॥

उत्सृज्यार्कमिमं राम प्रधावन्तं ध्रुवङ्गमम् ।
अवेक्ष्यैवं परावृत्य मुखशेषः पराङ्मुखः ॥ ४१ ॥

इन्द्रमाशंसमानस्तु त्रातारं सिंहिकासुतः ।
इन्द्र इन्द्रेति संत्रासान्मुहुर्मुहुरभाषत ॥ ४२ ॥

राहोर्विक्रोशमानस्य प्रागेवालक्षितं स्वरम् ।
श्रुत्वेन्द्रोवाच मा भैषीरहमेनं निषूदये ॥ ४३ ॥

ऐरावतं ततो दृष्ट्वा महत्तदिदमित्यपि ।
फलं मत्वा हस्तिराजमभिदुद्राव मारुतिः ॥ ४४ ॥

तथास्य धावतो रूपमैरावतजिघृक्षया ।
मुहूर्तमभवद्घोरमिन्द्राग्न्योरिव भास्वरम् ॥ ४५ ॥

एवमाधावमानं तु नातिक्रुद्धः शचीपतिः ।
हस्तान्तादतिमुक्तेन कुलिशेनाभ्यताडयत् ॥ ४६ ॥

ततो गिरौ पपातैष इन्द्रवज्राभिताडितः ।
पतमानस्य चैतस्य वामो हनुरभज्यत ॥ ४७ ॥

तस्मिंस्तु पतिते बाले वज्रताडनविह्वले ।
चुक्रोधेन्द्राय पवनः प्रजानामहिताय सः ॥ ४८ ॥

प्रचारं स तु सङ्रुध्य प्रजास्वन्तर्गतः प्रभुः ।
गुहां प्रविष्टः स्वसुतं शिशुमादाय मारुतः ॥ ४९ ॥

विण्मूत्राशयमावृत्य प्रजानां परमार्तिकृत् ।
रुरोध सर्वभूतानि यथा वर्षाणि वासवः ॥ ५० ॥

वायुप्रकोपाद्भूतानि निरुच्छ्वासानि सर्वतः ।
सन्धिभिर्भिद्यमानैश्च काष्ठभूतानि जज्ञिरे ॥ ५१ ॥

निस्वाध्यायवषट्कारं निष्क्रियं धर्मवर्जितम् ।
वायुप्रकोपात्त्रैलोक्यं निरयस्थमिवाभवत् ॥ ५२ ॥

ततः प्रजाः सगन्धर्वाः सदेवासुरमानुषाः ।
प्रजापतिं समाधावन्दुःखिताश्च सुखेच्छया ॥ ५३ ॥

ऊचुः प्राञ्जलयो देवा महोदरनिभोदराः ।
त्वया नु भगवन्सृष्टाः प्रजानाथ चतुर्विधाः ॥ ५४ ॥

त्वया दत्तोऽयमस्माकमायुषः पवनः पतिः ।
सोऽस्मान्प्राणेश्वरो भूत्वा कस्मादेषोऽद्य सत्तम ॥ ५५ ॥

रुरोध दुःखं जनयन्नन्तःपुर इव स्त्रियः ।
तस्मात्त्वां शरणं प्राप्ता वायुनोपहता वयम् ॥ ५६ ॥

एतत्प्रजानां श्रुत्वा तु प्रजानाथः प्रजापतिः ।
कारणादिति चोक्त्वाऽसौ प्रजाः पुनरभाषत ॥ ५७ ॥

यस्मिंश्च कारणे वायुश्चुक्रोध च रुराध च ।
प्रजाः शृणुध्वं तत्सर्वं श्रोतव्यं चात्मनः क्षमम् ॥ ५८ ॥

पुत्रस्तस्यामरेशेन इन्द्रेणाद्य निपातितः ।
राहोर्वचनमास्थाय ततः स कुपितोऽनिलः ॥ ५९ ॥

अशरीरः शरीरेषु वायुश्चरति पालयन् ।
शरीरं हि विना वायुं समतां याति दारुभिः ॥ ६० ॥

वायुः प्राणः सुखं वायुर्वायुः सर्वमिदं जगत् ।
वायुना संपरित्यक्तं न सुखं विन्दते जगत् ॥ ६१ ॥

अद्यैव च परित्यक्तं वायुना जगदायुषा ।
अद्यैव ते निरुच्छ्वासाः काष्ठकुड्योपमाः स्थिताः ॥

तद्यामस्तत्र यत्रास्ते मारुतो रुक्मदो हि नः ।
मा विनाशं गमिष्याम अप्रसाद्यादितेः सुताः ॥ ६३ ॥

ततः प्रजाभिः सहितः प्रजापतिः सदेवगन्धर्वभुजङ्गगुह्यकैः ।
जगाम तत्रास्यति यत्र मारुतः सुतं सुरेन्द्राभिहतं प्रगृह्य सः ॥

ततोऽर्कवैश्वानरकाञ्चनप्रभं सुतं तदोत्सङ्गगतं सदागतेः ।
चतुर्मुखो वीक्ष्य कृपामथाकरोत्सदेवगन्धर्वपिशाचराक्षसैः ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे पञ्चत्रिंशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 22233 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 1509



## षट्त्रिंशः सर्गः ॥ ३६ ॥

### हनुमद्वरप्राप्तिः ॥

ततः पितामहं दृष्ट्वा वायुः पुत्रवधार्दितः ।
शिशुकं तं समादाय उत्तस्थौ धातुरग्रतः ॥ १ ॥

चलत्कुण्डलमौलिस्रक्तपनीयविभूषणः ।
पादयोर्न्यपतद्वायुस्तस्योत्थाय वेधसे ॥ २ ॥

तं तु वेदविदातेन लम्बाभरणशोभिना ।
वायुमुत्थाप्य हस्तेन शिशुं तं परिमृष्टवान् ॥ ३ ॥

स्पृष्टमात्रस्ततः सोऽथ सलीलं पद्मयोनिना ।
जलसिक्तं यथा सस्यं पुनर्जीवितमाप्तवान् ॥ ४ ॥

प्राणवन्तमिमं दृष्ट्वा प्राणो गन्धवहो मुदा ।
चचार सर्वभूतेषु सन्निरुद्धं यथा पुरा ॥ ५ ॥

मरुद्रोधादिनिर्मुक्तास्ताः प्रजा मुदिताऽभवन् ।
शीतवातविनिर्मुक्ताः पद्मिन्य इव साम्बुजाः ॥ ६ ॥

ततस्त्रियुग्मस्त्रिककुत्त्रिधामा त्रिदशार्चितः ।
उवाच देवता ब्रह्मा मारुतप्रियकाम्यया ॥ ७ ॥

भो महेन्द्रेशवरुणप्रजेश्वरधनेश्वराः ।
जानतामपि वः सर्वं वक्ष्यामि श्रूयतां हितम् ॥ ८ ॥

अनेन शिशुना कार्यं कर्तव्यं वो भविष्यति ।
तद्वदध्वं वरान्सर्वे मारुतस्यास्य तुष्टये ॥ ९ ॥

ततः सहस्रनयनः प्रीतियुक्तः शुभाननः ।
कुशेशयमयीं मालामुत्क्षिप्येदं वचोऽब्रवीत् ॥ १० ॥

मत्करोत्सृष्टवज्रेण हनुरस्य यथा हतः ।
नाम्ना वै कपिशार्दूलो भविता हनुमानिति ॥ ११ ॥

अहमस्य प्रदास्यामि परमं वरमद्भुतम् ।
इतः प्रभृति वज्रस्य ममावध्यो भविष्यति ॥ १२ ॥

मार्ताण्डस्त्वब्रवीत्तत्र भगवांस्तिमिरापहः ।
तेजसोऽस्य मदीयस्य ददामि शतिकां कलाम् ॥ १३ ॥

यदा तु शास्त्राण्यध्येतुं शक्तिरस्य भविष्यति ।
तदास्य शास्त्रं दास्यामि येन वाग्मी भविष्यति ॥
न चास्य भविता कश्चित्सदृशः शास्त्रदर्शने ॥ १४ ॥

वरुणश्च वरं प्रादान्नास्य मृत्युर्भविष्यति ।
वर्षायुतशतेनापि मत्पाशादुदकादपि ॥
यमो दण्डादवध्यत्वमरोगित्वं च नित्यशः ॥ १५ ॥

वरं ददामि सन्तुष्ट अविषादं च संयुगे ।
गदेयं मामिका चैनं संयुगे न वधिष्यति ॥
इत्येवं वरदः प्राह तदा ह्येकाक्षिपिङ्गलः ॥ १६ ॥

मत्तो मदायुधानां च न वध्योऽयं भविष्यति ।
इत्येवं शङ्करेणापि दत्तोऽस्य परमो वरः ॥ १७ ॥

सर्वेषां ब्रह्मदण्डानामवध्योऽयं भविष्यति ।
दीर्घायुश्च महात्मा च इति ब्रह्माऽब्रवीद्वचः ॥ १८ ॥

विश्वकर्मा च दृष्ट्वैनं [illegible] शिशुम् ।
शिल्पिनां प्रवरः प्रादाद्वरमस्य महात्मनः ॥ १९ ॥

मत्कृतानि च शस्त्राणि यानि दिव्यानि संयुगे ।
तैरवध्यत्वमापन्नश्चिरञ्जीवी भविष्यति ॥ २० ॥

ततः सुराणां तु वरैर्दृष्ट्वा ह्येनमलंकृतम् ।
चतुर्मुखस्तुष्टमना वायुमाह जगद्गुरुः ॥ २१ ॥

अमित्राणां भयकरो मित्राणामभयङ्करः ।
अजेयो भविता पुत्रस्तव मारुत मारुतिः ॥ २२ ॥

कामरूपः कामचारी कामगः प्लवतां वरः ।
भवत्यव्याहतगतिः कीर्तिमांश्च भविष्यति ॥ २३ ॥

रावणोत्सादनार्थानि रामप्रियकराणि च ।
रोमहर्षकराण्येष कर्ता कर्माणि संयुगे ॥ २४ ॥

एवमुक्त्वा तमामन्त्र्य मारुतं त्वमरैः सह ।
यथागतं ययुः सर्वे पितामहपुरोगमाः ॥ २५ ॥

सोऽपि गन्धवहः पुत्रं प्रगृह्य गृहमानयत् ।
अञ्जनायास्तमाचख्यौ वरदत्तं विनिर्गतः ॥ २६ ॥

प्राप्य राम वरानेष वरदानसमन्वितः ।
बलेनात्मनि संस्थेन सोऽपूर्यत यथार्णवः ॥ २७ ॥

तरसा पूर्यमाणोऽपि तदा वानरपुङ्गवः ।
आश्रमेषु महर्षीणामपराध्यति निर्भयः ॥ २८ ॥

स्रुग्भाण्डान्यग्निहोत्रं च वल्कलाजिनसञ्चयान् ।
भग्नविच्छिन्नविध्वस्तान्संशान्तानां करोत्ययम् ॥ २९ ॥

एवंविधानि कर्माणि प्रावर्तत महाबलः ।
सर्वेषां ब्रह्मदण्डानामवध्यः शंभुना कृतः ॥ ३० ॥

जानन्त ऋषयस्तं वै क्षमन्ते तस्य शक्तितः ॥ ३१ ॥

यथा केसरिणा त्वेष वायुना सोऽञ्जनासुतः ।
प्रतिषिद्धोऽपि मर्यादां लङ्घयत्येव वानरः ॥ ३२ ॥

ततो महर्षयः क्रुद्धा भृग्वङ्गिरसवंशजाः ।
शेपुरेनं रघुश्रेष्ठ नातिक्रुद्धातिमन्यवः ॥ ३३ ॥

बाधसे यत्समाश्रित्य बलमस्मान्प्लवङ्गम ।
तद्दीर्घकालं वेत्तासि नास्माकं शापमोहितः ॥
यदा ते स्मार्यते कीर्तिस्तदा ते वर्धते बलम् ॥ ३४ ॥

ततः स हृततेजौजा महर्षिवचनौजसा ।
एषोऽऽश्रमाणि तान्येव मृदुभावं गतोऽचरत् ॥ ३५ ॥

अथर्क्षरजसो राम वालिसुग्रीवयोः पिता ।
सर्ववानरराजाऽऽसीत्तेजसा भास्करप्रभः ॥ ३६ ॥

स च राज्यं चिरं कृत्वा वानराणां हरीश्वरः ।
स च ऋक्षरजा नाम कालधर्मेण सङ्गतः ॥ ३७ ॥

तस्मिन्नस्तमिते चाथ मन्त्रिभिर्मन्त्रकोविदैः ।
पित्र्ये पदे कृतो वाली सुग्रीवो वालिनः पदे ॥ ३८ ॥

सुग्रीवेण समं त्वस्य अद्वैधं छिद्रवर्जितम् ।
आबाल्यं सख्यमभवदनिलस्याग्निना यथा ॥ ३९ ॥

एष शापवशादेव न वेद बलमात्मनः ।
वालिसुग्रीवयोर्वैरं यदा राम समुत्थितम् ॥ ४० ॥

न ह्येष राम सुग्रीवो भ्राम्यमाणोऽपि वालिना ।
देव जानाति न ह्येष बलमात्मनि मारुतिः ॥ ४१ ॥

ऋषिशापाहृतबलस्तदैष कपिसत्तमः ।
सिंहः कुञ्जररुद्धो वा आस्थितः सहितो रणे ॥ ४२ ॥

पराक्रमोत्साहमतिप्रतापसौशील्यमाधुर्यनयानयैश्च ।
गाम्भीर्यचातुर्यसुवीर्यधैर्यैर्हनूमतः कोऽभ्यधिकोऽस्ति लोके ॥

असौ पुनर्व्याकरणं ग्रहीष्यन्सूर्योन्मुखः प्रष्टुमनाः कपीन्द्रः ।
उद्यद्गिरेरस्तगिरिं जगाम ग्रन्थं महद्धारयनप्रमेयः ॥ ४४ ॥

ससूत्रवृत्त्यर्थपदं महार्थं ससंग्रहं साध्यति वै कपीन्द्रः ।
न ह्यस्य कश्चित्सदृशोऽस्ति शास्त्रे वैशारदे छन्दगतौ तथैव ॥

सर्वासु विद्यासु तपोविधाने प्रस्पर्धते यो हि गुरुं सुराणाम् ।
सोऽयं नवव्याकरणार्थवेत्ता ब्रह्मा भविष्यत्यपि ते प्रसादात् ॥

प्रवीविविक्षोरिव सागरस्य लोकान्दिधक्षोरिव पावकस्य ।
युगक्षये ह्येव यथाऽन्तकस्य हनूमतः स्थास्यति कः पुरस्तात् ॥

एषेव चान्ये च महाकपीन्द्राः सुग्रीवमैन्दद्विविदाः सनीलाः ।
सतारतारेयनलाः सरम्भास्त्वत्कारणाद्राम सुरैर्हि सृष्टाः ॥

तदेतत्कथितं सर्वं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
हनूमतो बालभावे कर्मैतत्कथितं मया ॥ ४९ ॥

श्रुत्वाऽगस्त्यस्य कथितं रामः सौमित्रिरेव च ।
विस्मयं परमं जग्मुर्वानरा राक्षसैः सह ॥ ५० ॥

अगस्त्यस्त्वब्रवीद्रामं सर्वमेतच्छ्रुतं त्वया ।
दृष्टः संभाषितश्चासि राम गच्छामहे वयम् ॥ ५१ ॥

श्रुत्वैतद्राघवो वाक्यमगस्त्यस्योग्रतेजसः ।
प्राञ्जलिः प्रणतश्चापि महर्षिमिदमब्रवीत् ॥ ५२ ॥

अद्य मे देवता हृष्टाः पितरः प्रपितामहाः ।
युष्माकं दर्शनादेव नित्यं तुष्टाः सबान्धवाः ॥ ५३ ॥
विज्ञाप्यं तु ममैतद्धि तद्वदाम्यागतस्पृहः ।
तद्भवद्भिर्मम कृते कर्तव्यमनुकम्पया ॥ ५४ ॥
पौरजानपदान्स्थाप्य स्वकार्येष्वहमागतः ।
क्रतूनेव करिष्यामि प्रभावाद्भवतां सताम् ॥ ५५ ॥
सदस्या मम यज्ञेषु भवन्तो नित्यमेव तत् ।
भविष्यथ महावीर्या ममानुग्रहकाङ्क्षिणः ॥ ५६ ॥
अहं युष्मान्समाश्रित्य तपोनिर्धूतकल्मषान् ।
अनुग्रहीतः पितृभिर्भविष्यामि सुनिर्वृतः ॥
तदागन्तव्यमनिशं भवद्भिरिह सङ्गतैः ॥ ५७ ॥
अगस्त्याद्यास्तु तच्छ्रुत्वा ऋषयः संशितव्रताः ।
एवमस्त्विति तं चोक्त्वा प्रयातुमुपचक्रमुः ॥ ५८ ॥
एवमुक्त्वा गताः सर्वे ऋषयस्ते यथागतम् ।
राघवश्च तमेवार्थं चिन्तयामास विस्मितः ॥ ५९ ॥
ततोऽस्तं भास्करे याते विसृज्य नृपवानरान् ।
संध्यामुपास्य विधिवत्तदा नरवरोत्तमः ॥
प्रवृत्तायां रजन्यां तु सोऽन्तःपुरचरोऽभवत् ॥ ६० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे षट्त्रिंशः सर्गः ॥

## सप्तत्रिंशः सर्गः ॥ ३७ ॥

### पौरोपस्थानम् ॥

अभिषिक्ते तु काकुत्स्थे धर्मेण विदितात्मनि ।
व्यतीता या निशा पूर्वा पौराणां हर्षवर्धिनी ॥ १ ॥

तस्यां रजन्यां व्युष्टायां पुनरेवापरेऽहनि ।
वन्दिनः पर्युपातिष्ठन्सौम्या नृपतिवेश्मनि ॥ २ ॥

ते रक्तकण्ठिनः सर्वे किन्नरा इव शिक्षिताः ।
तुष्टुवुर्नृपतिं सुप्तं यथाकालं प्रहर्षिताः ॥ ३ ॥

वीर सौम्य प्रबुध्यस्व कौसल्यानन्दवर्धन ॥ ४ ॥

जगद्धि सर्वं स्वपिति त्वयि सुप्ते नराधिप ॥ ५ ॥

विक्रमस्ते यथा विष्णो रूपं चैवाश्विनोरिव ।
बुद्ध्या बृहस्पतेस्तुल्यः प्रजापतिसमो ह्यसि ॥ ६ ॥

क्षमा ते पृथिवीतुल्या तेजसा भास्करोपमः ।
वेगस्ते वायुना तुल्यो गाम्भीर्यमुदधेरिव ॥ ७ ॥

अप्रकम्प्यो यथा स्थाणुश्चन्द्रे सौम्यत्वमीदृशम् ।
नेदृशाः पार्थिवाः पूर्वं भवितारो नराधिप ॥ ८ ॥

यथा त्वमतिदुर्धर्षो धर्मनित्यः प्रजाहितः ।
न त्वां जहाति कीर्तिश्च लक्ष्मीश्च पुरुषर्षभ ॥ ९ ॥

श्रीश्च धर्मश्च काकुत्स्थ त्वयि नित्यं प्रतिष्ठितौ ॥ १० ॥

एताश्चान्याश्च मधुरा वन्दिभिः परिकीर्तिताः ॥ ११ ॥

सूताश्च संस्तवैर्दिव्यैर्बोधयन्ति स्म राघवम् ।
स्तुतिभिः स्तूयमानाभिः प्रत्यबुध्यत राघवः ॥ १२ ॥

स तद्विहाय शयनं पाण्डुराच्छादनास्तृतम् ।
उत्तस्थौ नागशयनाद्धरिर्नारायणो यथा ॥ १३ ॥

समुत्थितं महात्मानं प्रह्वाः प्राञ्जलयो नराः ।
सलिलं भाजनैः शुभ्रैरुपतस्थुः सहस्रशः ॥ १४ ॥

कृतोदकशुचिर्भूत्वा काले हुतहुताशनः ।
देवागारं जगामाशु पुण्यमिक्ष्वाकुसेवितम् ॥ १५ ॥

तत्र देवान्पितॄन्विप्रानर्चयित्वा यथाविधि ।
बाह्यकक्ष्यान्तरं रामो निर्जगाम जनैर्वृतः ॥ १६ ॥

उपतस्थुर्महात्मानो मन्त्रिणः सपुरोहिताः ।
वसिष्ठप्रमुखाः सर्वे दीप्यमाना इवाग्नयः ॥ १७ ॥

क्षत्रियाश्च महात्मानो नानाजनपदेश्वराः ।
रामस्योपाविशन्पार्श्वे शक्रस्येव यथामराः ॥ १८ ॥

भरतो लक्ष्मणश्चात्र शत्रुघ्नश्च महायशाः ।
उपासांचक्रिरे हृष्टा वेदास्त्रय इवाध्वरम् ॥ १९ ॥

याताः प्राञ्जलयो भूत्वा किङ्करा मुदितानाः ।
भृत्याश्च रामपार्श्वस्था बहवः समुपाविशन् ॥ २० ॥

वानराश्च महावीर्या विंशतिः कामरूपिणः ।
सुग्रीवप्रमुखा राममुपासन्ते महौजसः ॥ २१ ॥

विभीषणश्च रक्षोभिश्चतुर्भिः परिवारितः ।
उपासते महात्मानं धनेशमिव गुह्यकाः ॥ २२ ॥

तथा निगमवृद्धाश्च कुर्लाना ये च मानवाः ।
शिरसा वन्द्य राजानमुपासन्ते विचक्षणाः ॥ २३ ॥

तथा परिवृतो राजा श्रीमद्भिर्ऋषिसत्तमैः ।
राजभिश्च महावीर्यैर्वानरैश्च सराक्षसैः ॥ २४ ॥

यथा देवेश्वरो नित्यमृषिभिः समुपास्यते ।
अधिकस्तेन रूपेण सहस्राक्षाद्विरोचते ॥ २५ ॥

तेषां समुपविष्टानां तास्ताः सुमधुराः कथाः ।
कथ्यन्ते धर्मसंयुक्ताः पुराणज्ञैर्महात्मभिः ॥ २६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे सप्तत्रिंशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 22319 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 1595



अष्टत्रिंशः सर्गः ॥ ३८ ॥

जनकादिप्रतिप्रयाणम् ॥

एवमास्ते महाबाहुरहन्यहनि राघवः ।
प्रशासत्सर्वकार्याणि पौरजानपदेषु च ॥ १ ॥

ततः कतिपयाहत्सु वैदेहं मिथिलाधिपम् ।
राघवः प्राञ्जलिर्भूत्वा वाक्यमेतदुवाच ह ॥ २ ॥

भवान्हि गतिरव्यग्रा भवता पालिता वयम् ।
भवतस्तेजसोग्रेण रावणो निहतो मया ॥ ३ ॥

इक्ष्वाकूणां च सर्वेषां मैथिलानां च सर्वशः ।
अतुलाः प्रीतयो राजन्संबन्धकृपुरोगमाः ॥ ४ ॥

तद्भवान्स्वपुरीं यातु रत्नान्यादाय पार्थिव ।
भरतश्च सहायार्थं पृष्ठतस्तेऽनुयास्यति ॥ ५ ॥

स तथेति नृपः कृत्वा राघवं वाक्यमब्रवीत् ।
प्रीतोऽस्मि भवतो राजन्दर्शनेन नयेन च ॥ ६ ॥

यान्येतानि तु रत्नानि मदर्थं संचितानि वै ।
दुहित्रे तानि वै राजन्सर्वाण्येव ददामि च ॥ ७ ॥

ततः प्रयाते जनके केकयं मातुलं प्रभुः ।
राघवः प्राञ्जलिर्भूत्वा वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ८ ॥

इदं राज्यमहं चैव भरतश्च सलक्ष्मणः ।
आयत्तं त्वयि नो नाथ गतिश्च पुरुषर्षभ ॥ ९ ॥

राजापि वृद्धः सन्तापं त्वदर्थमुपयास्यति ।
तस्माद्गमनमद्यैव रोचते तव पार्थिव ॥ १० ॥

लक्ष्मणेनानुयात्रेण पृष्ठतोऽनुगमिष्यते ।
धनमादाय विपुलं रत्नानि विविधानि च ॥ ११ ॥

युधाजित्तु तथेत्याह गमनं प्रति राघवम् ।
रत्नानि च धनं चैव त्वय्येवाक्षय्यमस्त्विति ॥ १२ ॥

प्रदक्षिणं स राजानं कृत्वा केकयवर्धनः ।
रामेण हि कृतः पूर्वमभिवाद्य प्रदक्षिणम् ॥ १३ ॥

लक्ष्मणेन सहायेन प्रयातः केकयेश्वरः ।
हतेऽसुरे यथा वृत्रे विष्णुना सह वासवः ॥ १४ ॥

तं विसृज्य ततो रामो वयस्यमकुतोभयम् ।
प्रतर्दनं काशिपतिं परिष्वज्येदमब्रवीत् ॥ १५ ॥

दर्शिता भवता प्रीतिर्दर्शितं सौहृदं परम् ।
उद्योगश्च कृतो राजन्भरतेन त्वया सह ॥ १६ ॥

तद्भवानद्य काशेय पुरीं वाराणसीं व्रज ।
रमणीयां त्वया गुप्तां सुप्रकाशां सुतोरणाम् ॥ १७ ॥

एतावदुक्त्वा चोत्थाय काकुत्स्थः परमासनात् ।
पर्यष्वजत धर्मात्मा निरन्तरमुरोगतम् ॥
विसर्जयामास तदा कौसल्यानन्दवर्धनः ॥ १८ ॥

राघवेणाभ्यनुज्ञातः काशीशोऽप्यकुतोभयः ।
वाराणसीं ययौ तूर्णं राघवेण विसर्जितः ॥ १९ ॥

विसृज्य तं काशिपतिं त्रिशतं पृथिवीपतीन् ।
प्रहसन्राघवो वाक्यमुवाच मधुराक्षरम् ॥ २० ॥

भवतां प्रीतिरव्यग्रा तेजसा परिरक्षिता ।
धर्मश्च नियतो नित्यं सत्यं च भवतां सदा ॥ २१ ॥

युष्माकं चानुभावेन तेजसा च महात्मनाम् ।
हतो दुरात्मा दुर्बुद्धी रावणो राक्षसाधमः ॥ २२ ॥

हेतुमात्रमहं तत्र भवतां तेजसा हतः ।
रावणः सगणो युद्धे सपुत्रामात्यबान्धवः ॥ २३ ॥
भवन्तश्च समानीता भरतेन महात्मना ।
श्रुत्वा जनकराजस्य काननात्तनयां हृताम् ॥ २४ ॥
उद्युक्तानां च सर्वेषां पार्थिवानां महात्मनाम् ।
कालो व्यतीतः सुमहान्गमनं रोचयाम्यतः ॥ २५ ॥
प्रत्यूचुस्तं च राजानो हर्षेण महताऽन्विताः ।
दिष्ट्या त्वं विजयी राम स्वराज्येऽपि प्रतिष्ठितः ॥ २६ ॥
दिष्ट्या प्रत्याहृता सीता दिष्ट्या शत्रुः पराजितः ।
एष नः परमः काम एषा नः प्रीतिरुत्तमा ॥ २७ ॥
यत्त्वां विजयिनं राम पश्यामो हतशात्रवम् ।
एतत्त्वय्युपपन्नं च यदस्मांस्त्वं प्रशंससे ॥ २८ ॥
प्रशंसार्हं न जानीमः प्रशंसां वक्तुमीदृशीम् ।
आपृच्छामो गमिष्यामो हृदिस्थो नः सदा भवान् ॥
वर्तामहे महाबाहो प्रीत्याऽत्र महता वृताः ।
भवेच्च ते महाराज प्रीतिरस्मासु नित्यदा ॥ ३० ॥
बाढमित्येव राजानो हर्षेण परमन्विताः ।
ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे राघवं गमनोत्सुकाः ॥
पूजिताश्चैव रामेण जग्मुर्देशान्स्वकान्स्वकान् ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे अष्टत्रिंशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 22350 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 1626

## एकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥ ३९ ॥

### सुग्रीवादिसम्माननम् ॥

ते प्रयाता महात्मानः पार्थिवाः सर्वतो दिशः ।
कम्पयन्तो महीं वीराः स्वपुराणि प्रहृष्टवत् ॥ १ ॥

अक्षौहिणीसहस्रैस्ते समुद्युक्तास्त्वनेकशः ।
हृष्टाः प्रतिगताः सर्वे राघवार्थे समागताः ॥ २ ॥

ऊचुस्ते च महीपाला बलदर्पसमन्विताः ।
न रामरावणं युद्धे पश्यामः पुरतः स्थितम् ॥ ३ ॥

भरतेन वयं पश्चात्समानीता निरर्थकम् ।
हता हि राक्षसाः क्षिप्रं पार्थिवैः स्युर्न संशयः ॥ ४ ॥

रामस्य बाहुवीर्येण रक्षिता लक्ष्मणस्य च ।
सुखं पारे समुद्रस्य युद्धेम विगतज्वराः ॥ ५ ॥

एताश्चान्याश्च राजानः कथास्तत्र सहस्रशः ।
कथयन्तः स्वराज्यानि जग्मुर्हर्षसमन्विताः ॥ ६ ॥

स्वानि राज्यानि मुख्यानि ऋद्धानि मुदितानि च ।
समृद्धधनधान्यानि पूर्णानि वसुमन्ति च ॥ ७ ॥

यथा पुराणि ते गत्वा रत्नानि विविधान्यथ ।
रामस्य प्रियकामार्थमुपहारान्नृपा ददुः ॥ ८ ॥

अश्वान्यानानि रत्नानि हस्तिनश्च मदोत्कटान् ।
चन्दनानि च मुख्यानि दिव्यान्याभरणानि च ॥ ९ ॥

मणिमुक्ताप्रवालांस्तु दास्यो रूपसपन्विताः ।
अजाविकांश्च विविधान्रथांस्तु विविधान्ददुः ॥ १० ॥

भरतो लक्ष्मणश्चैव शत्रुघ्नश्च महाबलाः ।
आदाय तानि रत्नानि स्वां पुरीं पुनरागताः ॥ ११ ॥

आगम्य च पुरीं रम्यामयोध्यां पुरुषर्षभाः ।
ददुः सर्वाणि रत्नानि राघवाय महात्मने ॥ १२ ॥

प्रतिगृह्य च तत्सर्वं रामः प्रीतिसमन्वितः ।
सुग्रीवाय ददौ राज्ञे महात्मा कृतकर्मणे ॥ १३ ॥

विभीषणाय च ददौ तथाऽन्येभ्योऽपि राघवः ।
राक्षसेभ्यः कपिभ्यश्च यैर्वृतो जयमाप्तवान् ॥ १४ ॥

ते सर्वे रामदत्तानि रत्नानि कपिराक्षसाः ।
शिरोभिर्धारयामासुर्बाहुभिश्च महाबलाः ॥ १५ ॥

ते पिबन्तः सुगन्धीनि मधूनि मधुपिङ्गलाः ।
मांसानि च सुमृष्टानि मूलानि च फलानि च ॥ १६ ॥

एवं तेषां निवसतां मासः साग्रो ययौ तदा ।
मुहूर्तमिव ते सर्वे राजभक्त्या च मेनिरे ॥ १७ ॥

रामोऽपि रेमे तैः सार्धं वानरैः कामरूपिभिः ।
राक्षसैश्च महावीर्यैर्ऋक्षैश्चैव महाबलैः ॥ १८ ॥

एवं तेषां ययौ मासो द्वितीयः शैशिरः सुखम् ।
वानराणां प्रहृष्टानां राक्षसानां च सर्वशः ॥ १९ ॥

इक्ष्वाकुनगरे रम्ये परां प्रीतिमुपासताम् ।
रामस्य प्रीतिकरणैः कालस्तेषां सुखं ययौ ॥ २० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे एकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 22370 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 1646

## चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४० ॥

सुग्रीवादिविसर्जनम् ॥

तथा स्म तेषां वसतामृक्षवानररक्षसाम् ।
राघवस्तु महातेजाः सुग्रीवमिदमब्रवीत् ॥ १ ॥
गम्यतां सौम्य किष्किन्धां दुराधर्षां सुरासुरैः ।
पालयस्व सहामात्यो राज्यं निहतकण्टकम् ॥ २ ॥
अङ्गदं च महाबाहो प्रीत्या परमया युतः ।
पश्य त्वं हनुमन्तं च नलं च सुमहाबलम् ॥ ३ ॥
सुषेणं श्वशुरं वीरं तारं च बलिनां वरम् ।
कुमुदं चैव दुर्धर्षं नीलं चैव महाबलम् ॥ ४ ॥
वीरं शतबलिं चैव मैन्दं द्विविदमेव च ।
पश्य प्रीतिसमायुक्तो गन्धमादनमेव च ॥ ५ ॥
गजं गवाक्षं गवयं शरभं च महाबलम् ।
ऋक्षराजं च दुर्धर्षं जाम्बवन्तं महाबलम् ॥ ६ ॥
ये चेमे सुमहात्मानो मदर्थे त्यक्तजीविताः ।
पश्य त्वं प्रीतिसंयुक्तो मा चैषां विप्रियं कृथाः ॥ ७ ॥

एवमुक्त्वा तु सुग्रीवमाश्लिष्य च पुनः पुनः ।
विभीषणमुवाचाथ रामो मधुरया गिरा ॥ ८ ॥

लङ्कां प्रशाधि धर्मेण धर्मज्ञस्त्वं मतो मम ।
पुरस्य राक्षसानां च भ्रातुर्वैश्रवणस्य च ॥ ९ ॥

मा च बुद्धिमधर्मे त्वं कुर्या राजन्कथञ्चन ।
बुद्धिमन्तो हि राजानो ध्रुवमश्नन्ति मेदिनीम् ॥ १० ॥

अहं च नित्यशो राजन्सुग्रीवसहितस्त्वया ।
स्मर्तव्यः परया प्रीत्या गच्छ त्वं विगतज्वरः ॥ ११ ॥

रामस्य भाषितं श्रुत्वा ऋक्षवानरराक्षसाः ।
साधु साध्विति काकुत्स्थं प्रशशंसुः पुनः पुनः ॥ १२ ॥

तव बुद्धिर्महाबाहो वीर्यमद्भुतमेव च ।
माधुर्यं परमं राम स्वयंभोरिव नित्यदा ॥ १३ ॥

तेषामेवं ब्रुवाणानां वानराणां च रक्षसाम् ।
हनूमान्प्लवगो भूत्वा राघवं वाक्यमब्रवीत् ॥ १४ ॥

स्नेहो मे परमो राजंस्त्वयि तिष्ठतु नित्यदा ।
भक्तिश्च नियता वीर भावो नान्यत्र गच्छतु ॥ १५ ॥

यावद्रामकथा वीर चरिष्यति महीतले ।
तावच्छरीरे वत्स्यन्ति प्राणा मम न संशयः ॥ १६ ॥

एवं ब्रुवाणं रामस्तु हनूमन्तं वरासनात् ।
उत्थाय सस्वजे स्नेहाद्वाक्यमेतदुवाच ह ॥ १७ ॥

एवमेतत्कपिश्रेष्ठ भविता नात्र संशयः ।
लोका हि यावत्स्थास्यन्ति तावत्स्थास्यति मे कथा ॥
चरिष्यति कथा यावदेषा लोके च मामिका ।
तावत्ते भविता कीर्तिः शरीरेऽप्यसवस्तथा ॥ १९ ॥
ततोऽस्य हारं चन्द्राभं मुच्य कण्ठात्स राघवः ।
वैडूर्यतरलं कण्ठे बबन्ध च हनूमतः ॥ २० ॥
तेनोरसि निबद्धेन हारेण महता कपिः ।
रराज हेमशैलेन्द्रश्चन्द्रेणाक्रान्तमस्तकः ॥ २१ ॥
श्रुत्वा तु राघवस्यैतदुत्थायोत्थाय वानराः ।
प्रणम्य शिरसा पादौ निर्जग्मुस्ते महाबलाः ॥ २२ ॥
सुग्रीवः स च रामेण परिष्वक्तो महाबलः ।
विभीषणश्च धर्मात्मा सर्वे ते बाष्पविक्लवाः ॥ २३ ॥
सर्वे च ते बाष्पकलाः साश्रुनेत्रा विचेतसः ।
संमूढा इव दुःखेन त्यजन्तो राघवं तदा ॥ २४ ॥
कृतप्रसादास्तेनैवं राघवेण महात्मना ।
जग्मुः स्वं स्वं गृहं सर्वे देही देहमिव त्यजन् ॥ २५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे चत्वारिंशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 22395 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 1671

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे सप्तविंशेऽद्धि वर्तमानकथाप्रसङ्गः ॥

[पुरा कुशलवाभ्यां श्रीरामसन्निधावश्वमेधयज्ञवाटे
द्वात्रिंशति दिनेषु गीते श्रीमद्रामायणे अष्टाविंशेऽह्नि
उत्तरकाण्डे एकचत्वारिंशसर्गमारभ्य षष्टितमसर्गपर्यन्तं
(22396—22854 श्लोकाः) गीतम् ।
तस्मिन् दिने गीताः श्लोकाः 459]

## एकचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४१ ॥

### पुष्पकविसर्जनम् ॥

विसृज्य च महाबाहुर्ऋक्षवानरराक्षसान् ।
भ्रातृभिः सहितो रामः प्रमुमोद सुखं सुखी ॥ १ ॥

अथापराह्णसमये भ्रातृभिः सह राघवः ।
शुश्राव मधुरां वाणीमन्तरिक्षात्प्रभाषिताम् ॥ २ ॥

सौम्य राम निरीक्षस्व सौम्येन वदनेन माम् ।
कैलासशिखरात्प्राप्तं विद्धि मां पुष्पकं प्रभो ॥ ३ ॥

तव शासनमाज्ञाय गतोऽस्मि धनदं प्रति ।
उपस्थातुं नरश्रेष्ठ स च मां प्रत्यभाषत ॥ ४ ॥

निर्जितस्त्वं नरेन्द्रेण राघवेण महात्मना ।
निहत्य युधि दुर्धर्षं रावणं राक्षसेश्वरम् ॥ ५ ॥

ममापि परमा प्रीतिर्हते तस्मिन्दुरात्मनि ।
रावणे सगणे चैव सपुत्रे सहबान्धवे ॥ ६ ॥

स त्वं रामेण लङ्कायां निर्जितः परमात्मना ।
वह सौम्य तमेव त्वमहमाज्ञापयामि ते ॥ ७ ॥

परमो ह्येष मे कामो यत्त्वं राघवनन्दनम् ।
वहेर्लोकस्य संयानं गच्छस्व विगतज्वरः ॥ ८ ॥

सोऽहं शासनमाज्ञाय धनदस्य महात्मनः ।
त्वत्सकाशमनुप्राप्तो निर्विशङ्कः प्रतीक्ष माम् ॥ ९ ॥

बाढमित्येव काकुत्स्थः पुष्पकं समपूजयत् ।
लाजैश्चैव तथा पुष्पैर्धूपैश्चैव सुगन्धिभिः ॥ १० ॥

गम्यतामिति चोवाच आगच्छ त्वं स्मरे यदा ।
सिद्धानां च गतौ सौम्य मा विषादेन योजय ॥ ११ ॥

एवमस्त्विति रामेण पूजयित्वा विसर्जितम् ।
अभिप्रेतां दिशं तस्मात्प्रायात्तत्पुष्पकं तदा ॥ १२ ॥

एवमन्तर्हिते तस्मिन्पुष्पके सुकृतात्मनि ।
भरतः प्राञ्जलिर्वाक्यमुवाच रघुनन्दनम् ॥ १३ ॥

अत्यद्भुतानि दृश्यन्ते त्वयि वीर प्रशासति ।
अमानुषाणि सत्त्वानि व्याहृतानि मुहुर्मुहुः ॥ १४ ॥

अनामयश्च मर्त्यानां साग्रो मासो गतो ह्ययम् ।
जीर्णानामपि सत्त्वानां मृत्युर्नायाति राघव ॥ १५ ॥

पुत्रान्नार्यः प्रसूयन्ते वसुमन्तश्च मानवाः ।
हर्षश्चाभ्यधिको राजञ्जनस्य पुरवासिनः ॥ १६ ॥

काले वर्षति पर्जन्यः पातयन्नमृतं पयः ।
वाताश्चापि प्रवान्त्येते स्पर्शयुक्ताः सुखाः शिवाः ॥ १७ ॥

ईदृशोऽनश्वरो राजा भवेदिति नरेश्वरः ।
कथयन्ति पुरे राजन्पौरजानपदास्तथा ॥ १८ ॥

एता वाचः सुमधुरा भरतेन समीरिताः ।
श्रुत्वा रामो मुदा युक्तः प्रमुमोद सुखी सुखम् ॥ १९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे एकचत्वारिंशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 22414 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 1690



## द्विचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४२ ॥

सीतया पुनर्गङ्गातीरगमनप्रार्थनम् ॥

स विसृज्य ततो रामः पुष्पकं हेमभूषितम् ।
प्रविवेश महाबाहुरशोकवनिकां तदा ॥ १ ॥

चन्दनागरुचूतैश्च तुङ्गकालेयकैरपि ।
देवदारुवनैश्चापि समन्तादुपशोभिताम् ॥ २ ॥

चम्पकाशोकपुन्नागमधूकपनसासनैः ।
शोभितां पारिजातैश्च विधूमज्वलनप्रभैः ॥ ३ ॥

लोध्रनीपार्जुनैर्नागैः सप्तपर्णातिमुक्तकैः ।
मन्दारकदलीगुल्मलताजालसमावृताम् ॥ ४ ॥

प्रियङ्गुभिः कदम्बैश्च तथा च वकुलैरपि ।
जम्बुभिर्दाडिमैश्चैव कोविदारैश्च शोभिताम् ॥ ५ ॥

सर्वदा कुसुमै रम्यैः फलवद्भिर्मनोरमैः ।
दिव्यगन्धरसोपेतैस्तरुणाङ्कुरपल्लवैः ॥ ६ ॥

तथैव तरुभिर्दिव्यैः शिल्पिभिः परिकल्पितैः ।
चारुपल्लवपुष्पाढ्यैर्मत्तभ्रमरसङ्कुलैः ॥ ७ ॥

कोकिलैर्भृङ्गराजैश्च नानावर्णैश्च पक्षिभिः ।
शोभितां शतशश्चित्रां चूतवृक्षावतंसकैः ॥ ८ ॥

शातकुम्भनिभाः केचित्केचिदग्निशिखोपमाः ।
नीलाञ्जननिभाश्चान्ये भान्ति तत्रत्यपादपाः ॥
सुरभीणि च पुष्पाणि माल्यानि विविधानि च ॥ ९ ॥

दीर्घिका विविधाकाराः पूर्णाः परमवारिणा ।
माणिक्यकृतसोपानाः स्फटिकान्तरकुट्टिमाः ॥ १० ॥

फुल्लपद्मोत्पलवनाश्चक्रवाकोपशोभिताः ।
दात्यूहशुकसंघुष्टा हंससारसनादिताः ॥ ११ ॥

तरुभिः पुष्पवद्भिश्च तीरजैरुपशोभिताः ।
प्राकारैर्विविधाकारैः शोभिताश्च शिलातलैः ॥ १२ ॥

तत्रैव च वनोद्देशे वैडूर्यमणिसन्निभैः ।
शाद्वलैः परमोपेतां पुष्पितद्रुमकाननाम् ॥ १३ ॥

तल्प सङ्कर्षजातानां वृक्षाणां पुष्पशालिनाम् ।
प्रस्तराः पुष्पशबला नभस्तारागणैरिव ॥ १४ ॥

नन्दनं हि यथेन्द्रस्य बाह्यं चैत्ररथं यथा ।
तथाभूतं हि रामस्य काननं सन्निवेशनम् ॥ १५ ॥

बह्वासनगृहोपेतां लतागृहसमावृताम् ।
अशोकवनिकां स्फीतां प्रविश्य रघुनन्दनः ॥ १६ ॥

आसने च शुभाकारे पुष्पप्रकरभूषिते ।
कुथास्तरणसंवीते रामः सन्निषसाद ह ॥ १७ ॥

सीतामादाय हस्तेन मधु मैरेयकं शुचि ।
पाययामास काकुत्स्थः शचीमिव पुरन्दरः ॥ १८ ॥

मांसानि च सुमृष्टानि फलानि विविधानि च ।
रामस्याभ्यवहारार्थं किङ्करास्तूर्णमाहरन् ॥ १९ ॥

उपानृत्यंश्च राजानं नृत्तगीतविशारदाः ।
बालाश्च रूपवत्यश्च स्त्रियः पानवशानुगाः ॥ २० ॥

एवं रामो मुदा युक्तः सीतां सुरसुतोपमाम् ।
रमयामास वैदेहीमहन्यहनि देववत् ॥ २१ ॥

तथा तु रममाणस्य तस्यैवं शैशिरः शुभः ।
अत्यक्रामन्नरेन्द्रस्य राघवस्य महात्मनः ॥ २२ ॥

पूर्वाह्णे पौरकृत्यानि कृत्वा धर्मेण धर्मवित् ।
शेषं दिवसभागार्धमन्तःपुरगतोऽभवत् ॥ २३ ॥

सीताऽपि देवकार्याणि कृत्वा पौर्वाह्णिकानि वै ।
श्वश्रूणामकरोत्पूजां सर्वासामविशेषतः ॥ २४ ॥

अभ्यगच्छत्ततो रामं विचित्राभरणाम्बरा ।
त्रिविष्टपे सहस्राक्षमुपविष्टं यथा शची ॥ २५ ॥

दृष्ट्वा तु राघवः पत्नीं कल्याणेन समन्विताम् ।
महर्षमतुलं लेभे साधु साध्विति चाब्रवीत् ॥ २६ ॥

अपत्यलाभो वैदेहि ममायं समुपस्थितः ।
किमिच्छसि वरारोहे कामः किं क्रियतां तव ॥ २७ ॥

स्मितं कृत्वा तु वैदेही रामं वाक्यमथाब्रवीत् ।
तपोवनानि पुण्यानि द्रष्टुमिच्छामि राघव ॥ २८ ॥

गङ्गातीरोपविष्टानामृषीणामुग्रतेजसाम् ।
फलमूलाशिनां देव पादमूलेषु वर्तितुम् ॥ २९ ॥

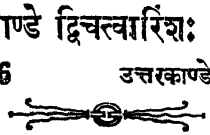
एष मे परमः कामो यन्मूलफलभोजिनाम् ।
अप्येकरात्रं काकुत्स्थ निवसेयं तपोवने ॥ ३० ॥

तथेति च प्रतिज्ञातं रामेणाक्लिष्टकर्मणा ।
विस्रब्धा भव वैदेहि श्वो गमिष्यस्यसंशयम् ॥ ३१ ॥

एवमुक्त्वा तु काकुत्स्थो मैथिलीं जनकात्मजाम् ।
मध्यकक्ष्यान्तरं रामो निर्जगाम सुहृद्वृतः ॥ ३२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे द्विचत्वारिंशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 22446 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 1722



## त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४३ ॥

### पौरजनकुत्सननिवेदनम् ॥

तत्रोपविष्टं राजानमुपासन्ते विचक्षणाः ।
कथानां बहुरूपाणां हास्यकाराः समन्ततः ॥ १ ॥

विजयो मधुमत्तश्च काश्यपः पिङ्गलः कुटः ।
सुराजः कालियो भद्रो दन्तवक्त्रः सुमागधः ॥ २ ॥

एते कथा बहुविधाः परिहाससमन्विताः ।
कथयन्ति स्म संहृष्टा राघवस्य महात्मनः ॥ ३ ॥

ततः कथायां कस्याञ्चिद्राघवः समभाषत ।
काः कथा नगरे भद्र वर्तन्ते विषयेषु च ॥ ४ ॥

मामाश्रितानि कान्याहुः पौरजानपदा जनाः ।
किं च सीतां समाश्रित्य भरतं किं च लक्ष्मणम् ॥ ५ ॥

किं नु शत्रुघ्नमुद्दिश्य कैकेयीं किं नु मातरम् ।
वक्तव्यतां च राजानो वरे राज्ये व्रजन्ति च ॥ ६ ॥

एवमुक्ते तु रामेण भद्रः प्राञ्जलिरब्रवीत् ।
स्थिताः कथाः शुभा राजन्वर्तन्ते पुरवासिनाम् ॥ ७ ॥

अमुं तु विजयं सौम्य दशग्रीववधार्जितम् ।
भूयिष्ठं स्वपुरे पौरैः कथ्यन्ते पुरुषर्षभ ॥ ८ ॥

एवमुक्तस्तु भद्रेण राघवो वाक्यमब्रवीत् ।
कथयस्व यथातत्त्वं सर्वं निरवशेषतः ॥ ९ ॥

शुभाशुभानि वाक्यानि यान्याहुः पुरवासिनः ।
श्रुत्वेदानीं शुभं कुर्यां न कुर्यामशुभानि च ॥ १० ॥

कथयस्व च विस्रब्धो निर्भयं विगतज्वरः ।
कथयन्ति यथा पौराः पापा जनपदेषु च ॥ ११ ॥

राघवेणेवमुक्तस्तु भद्रः सुरुचिरं वचः ।
प्रत्युवाच महाबाहुं प्राञ्जलिः सुसमाहितः ॥ १२ ॥

शृणु राजन्यथा पौराः कथयन्ति शुभाशुभम् ।
चत्वरापणरथ्यासु वनेषूपवनेषु च ॥ १३ ॥

दुष्करं कृतवान्रामः समुद्रे सेतुबन्धनम् ।
अश्रुतं पूर्वकैः कैश्चिद्देवैरपि सदानवैः ॥ १४ ॥

रावणश्च दुराधर्षो हतः सबलवाहनः ।
वानराश्च वशं नीता ऋक्षाश्च सह राक्षसैः ॥ १५ ॥

हत्वा च रावणं संख्ये सीतामाहृत्य राघवः ।
अमर्षं पृष्ठतः कृत्वा स्ववेश्म पुनरानयत् ॥ १६ ॥

कीदृशं हृदये तस्य सीतासम्भोगजं सुखम् ।
अङ्कमारोप्य तु पुरा रावणेन बलाद्धृताम् ॥ १७ ॥

लङ्कामपि पुरा नीतामशोकवनिकां गताम् ।
रक्षसां वशमापन्नां कथं रामो न कुत्सते ॥ १८ ॥

अस्माकमपि दारेषु सहनीयं भविष्यति ।
यथा हि कुरुते राजा प्रजा तमनुवर्तते ॥ १९ ॥

एवं बहुविधा वाचो वदन्ति पुरवासिनः ।
नगरेषु च सर्वेषु राजञ्जनपदेषु च ॥ २० ॥

तस्यैवं भाषितं श्रुत्वा राघवः परमार्तवत् ।
उवाच सुहृदः सर्वान्कथमेतन्निवेद्यताम् ॥ २१ ॥

सर्वे तु शिरसा भूमावभिवाद्य प्रणम्य च ।
प्रत्यूचू राघवं दीनमेवमेतन्न संशयः ॥ २२ ॥

श्रुत्वा तु वाक्यं काकुत्स्थः सर्वेषां समुदीरितम् ।
विसर्जयामास तदा वयस्याञ्च्छत्रुसूदनः ॥ २३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकिये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 22469 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 1745



## चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥

लक्ष्मणाद्यानयनम् ॥

विसृज्य तु सुहृद्वर्गं बुद्ध्या निश्चित्य राघवः ।
समीपे द्वाःस्थमासीनमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥

शीघ्रमानय सौमित्रिं लक्ष्मणं शुभलक्षणम् ।
भरतं च महाभागं शत्रुघ्नमपराजितम् ॥ २ ॥

रामस्य वचनं श्रुत्वा द्वाःस्थो मूर्ध्नि कृताञ्जलिः ।
लक्ष्मणस्य गृहं गत्वा प्रविवेशानिवारितः ॥ ३ ॥

उवाच सुमहात्मानं वर्धयित्वा कृताञ्जलिः ।
द्रष्टुमिच्छति राजा त्वां गम्यतां तत्र मा चिरम् ॥ ४ ॥

बाढमित्येव सौमित्रिः श्रुत्वा राघवशासनम् ।
प्राद्रवद्रथमास्थाय राघवस्य निवेशनम् ॥ ५ ॥

प्रयान्तं लक्ष्मणं दृष्ट्वा द्वाःस्थो भरतमन्तिकात् ।
उवाच भरतं तत्र वर्धयित्वा कृताञ्जलिः ॥ ६ ॥

विनयावनतो भूत्वा राजा त्वां द्रष्टुमिच्छति ।
भरतस्तु वचः श्रुत्वा द्वाःस्थाद्रामसमीरितम् ॥ ७ ॥

उत्पपातासनात्तूर्णं पद्भ्यामेव ययौ बली ।
दृष्ट्वा प्रयान्तं भरतं त्वरमाणः कृताञ्जलिः ॥ ८ ॥

शत्रुघ्नभवनं गत्वा ततो वाक्यमुवाच ह ।
एह्यागच्छ रघुश्रेष्ठ राजा त्वां द्रष्टुमिच्छति ॥ ९ ॥

गतो हि लक्ष्मणः पूर्वं भरतश्च महायशाः ।
श्रुत्वा तु वचनं तस्य शत्रुघ्नः परमासनात् ॥
शिरसा धरणीं प्राप्य प्रययौ यत्र राघवः ॥ १० ॥

कुमारानागताञ्छ्रुत्वा चिन्ताव्याकुलितेन्द्रियः ।
अवाङ्मुखो दीनमना द्वाःस्थं वचनमब्रवीत् ॥ ११ ॥

प्रवेशय कुमारांस्त्वं मत्समीपं त्वरान्वितः ।
एतेषु जीवितं मह्यमेते प्राणाः प्रिया मम ॥ १२ ॥

आज्ञप्तास्तु नरेन्द्रेण कुमाराः शुक्लवाससः ।
प्रह्वाः प्राञ्जलयो भूत्वा विविशुस्ते समाहिताः ॥ १३ ॥

ते तु दृष्ट्वा मुखं तस्य सग्रहं शशिनं यथा ।
सन्ध्यागतमिवादित्यं प्रभया परिवर्जितम् ॥ १४ ॥

बाष्पपूर्णे च नयने दृष्ट्वा रामस्य धीमतः ।
हतशोभं यथा पद्मं मुखं वीक्ष्य च तस्य ते ॥ १५ ॥

ततोऽभिवाद्य त्वरिताः पादौ रामस्य मूर्धभिः ।
तस्थुः समाहिताः सर्वे रामस्त्वश्रूण्यवर्तयत् ॥ १६ ॥

तान्परिष्वज्य बाहुभ्यामुत्थाय च महाबलः ।
आसनेष्वासतेत्युक्त्वा ततो वाक्यं जगाद ह ॥ १७ ॥

भवन्तो मम सर्वस्वं भवन्तो जीवितं मम ।
भवद्भिश्च कृतं राज्यं पालयामि नरेश्वराः ॥ १८ ॥

भवन्तः कृतशास्त्रार्था बुद्ध्या च परिनिष्ठिताः ।
संभूय च मदर्थोऽयमन्वेष्टव्यो नरेश्वराः ॥ १९ ॥

तथा वदति काकुत्स्थे ह्यवधानपरायणाः ।
उद्विग्नमनसः सर्वे किं नु राजाऽभिधास्यति ॥ २० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥

## पञ्चचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४५ ॥

### सीतापरित्यागनियोगः ॥

तेषां समुपविष्टानां सर्वेषां दीनचेतसाम् ।
उवाच वाक्यं काकुत्स्थो मुखेन परिशुष्यता ॥ १ ॥

सर्वे शृणुत भद्रं वो मा कुरुध्वं मनोऽन्यथा ।
पौराणां मम सीतायां यादृशी वर्तते कथा ॥ २ ॥

पौरापवादः सुमहांस्तथा जनपदस्य च ।
वर्तते मयि बीभत्सा सा मे मर्माणि कृन्तति ॥ ३ ॥

अहं किल कुले जात इक्ष्वाकूणां महात्मनाम् ।
सीताऽपि सत्कुले जाता जनकानां महात्मनाम् ॥ ४ ॥

जानासि त्वं यथा सौम्य दण्डके विजने वने ।
रावणेन हृता सीता स च विध्वंसितो मया ॥ ५ ॥

तत्र मे बुद्धिरुत्पन्ना जनकस्य सुतां प्रति ।
अत्रोषितामिमां सीतामानयेयं कथं पुरीम् ॥ ६ ॥

प्रत्ययार्थं ततः सीता विवेश ज्वलनं तदा ।
प्रत्यक्षं तव सौमित्रे देवानां हव्यवाहनः ॥
अपापां मैथिलीमाह वायुश्चाकाशगोचरः ॥ ७ ॥

चन्द्रादित्यौ च शंसेते सुराणां सन्निधौ पुरा ।
ऋषीणां चैव सर्वेषामपापां जनकात्मजाम् ॥ ८ ॥

एवं शुद्धसमाचारा देवगन्धर्वसन्निधौ ।
लङ्काद्वीपे महेन्द्रेण मम हस्ते निवेशिता ॥ ९ ॥

अन्तरात्मा च मे वेत्ति सीतां शुद्धां यशस्विनीम् ।
ततो गृहीत्वा वैदेहीमयोध्यामहमागतः ॥ १० ॥

अयं तु मे महान्वादः शोकश्च हृति वर्तते ।
पौरापवादः सुमहांस्तथा जनपदस्य च ॥ ११ ॥

अकीर्तिर्यस्य गीयेत लोके भूतस्य कस्यचित् ।
पतत्येवाधमाँल्लोकान्यावच्छब्दः प्रकीर्त्यते ॥ १२ ॥

अकीर्तिर्निन्द्यते देवैः कीर्तिर्लोकेषु पूज्यते ।
कीर्त्यर्थं तु समारम्भः सर्वेषां सुमहात्मनाम् ॥ १३ ॥

अप्यहं जीवितं जह्यां युष्मान्वा पुरुषर्षभाः ।
अपवादभयाद्भीतः किं पुनर्जनकात्मजाम् ॥ १४ ॥

तस्माद्भवन्तः पश्यन्तु पतितं शोकसागरे ।
न हि पश्याम्यहं भूतं किञ्चिद्दुःखमतोऽधिकम् ॥ १५ ॥

श्वस्त्वं प्रभाते सौमित्रे सुमन्त्राभिष्ठितं रथम् ।
आरुह्य सीतामारोप्य विषयान्ते समुत्सृज ॥ १६ ॥

गङ्गायास्तु परे पारे वाल्मीकेस्तु महात्मनः ।
आश्रमो दिव्यसङ्काशस्तमसातीरमाश्रितः ॥ १७ ॥

तत्रैनां विजने देशे विसृज्य रघुनन्दन ।
शीघ्रमागच्छ सौमित्रे कुरुष्व वचनं मम ॥ १८ ॥

न चास्मि प्रतिवक्तव्यः सीतां प्रति कथञ्चन ।
तस्मात्त्वं गच्छ सौमित्रे नात्र कार्या विचारणा ॥ १९ ॥

अप्रीतिर्हि परा मह्यं त्वयैतत्प्रतिवारिते ।
शापिता हि मया यूयं भुजाभ्यां जीवितेन च ॥ २० ॥

ये मां वाक्यान्तरे ब्रूयुरनुनेतुं कथञ्चन ।
अहिता नाम ते नित्यं मदभीष्टविघातनात् ॥ २१ ॥

मानयन्तु भवन्तो मां यदि मच्छासने स्थिताः ।
इतोऽद्य नीयतां सीता कुरुध्व वचनं मम ॥ २२ ॥

पूर्वमुक्तोऽहमनया गङ्गातीरेऽहमाश्रमान् ।
पश्येयमिति तस्याश्च कामः संवर्त्यतामयम् ॥ २३ ॥

एवमुक्त्वा तु काकुत्स्थो बाष्पेण पिहिताननः ।
प्रविवेश स धर्मात्मा भ्रातृभिः परिवारितः ॥ २४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे पञ्चचत्वारिंशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 22513 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 1789

## षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४६ ॥

सीताया गङ्गातीरनयनम् ॥

ततो रजन्यां व्युष्टायां लक्ष्मणो दीनचेतनः ।
सुमन्त्रमब्रवीद्वाक्यं मुखेन परिशुष्यता ॥ १ ॥

सारथे तुरगाञ्च्छीघ्रं योजयस्व रथोत्तमे ।
स्वास्तीर्णं राजभवनात्सीतायाश्चासनं कुरु ॥ २ ॥

सीता हि राजवचनादाश्रमं पुण्यकर्मणाम् ।
मया नेया महर्षीणां शीघ्रमानीयतां रथः ॥ ३ ॥

सुमन्त्रस्तु तथेत्युक्त्वा युक्तं परमवाजिभिः ।
रथं सुरुचिरप्रख्यं स्वास्तीर्णं सुखशय्यया ॥ ४ ॥

आनीयोवाच सौमित्रिं मित्राणां मानवर्धनम् ।
रथोऽयं समनुप्राप्तो यत्कार्यं क्रियतां प्रभो ॥ ५ ॥

एवमुक्तः सुमन्त्रेण राजवेश्मनि लक्ष्मणः ।
प्रविश्य सीतामासाद्य व्याजहार नरर्षभः ॥ ६ ॥

त्वया किलैष नृपतिर्वरं वै याचितः प्रभुः ।
नृपेण च प्रतिज्ञातमाज्ञप्तश्चाश्रमं प्रति ॥ ७ ॥

गङ्गातीरे मया देवी ऋषीणामाश्रमाञ्छुभान् ।
शीघ्रं गत्वा तु वैदेहि शासनात्पार्थिवस्य नः ॥
अरण्ये मुनिभिर्जुष्टे अवनेया भविष्यसि ॥ ८ ॥

एवमुक्ता तु वैदेही लक्ष्मणेन महात्मना ।
प्रहर्षमतुलं लेभे गमनं चाप्यरोचयत् ॥ ९ ॥

वासांसि च महार्हाणि रत्नानि विविधानि च ।
गृहीत्वा तानि वैदेही गमनायोपचक्रमे ॥ १० ॥

इमानि मुनिपत्नीनां दास्याम्याभरणान्यहम् ।
वस्त्राणि च महार्हाणि धनानि विविधानि च ॥ ११ ॥

सौमित्रिस्तु तथेत्युक्त्वा रथमारोप्य मैथिलीम् ।
प्रययौ शीघ्रतुरगै रामस्याज्ञामनुस्मरन् ॥ १२ ॥

अब्रवीच्च तदा सीता लक्ष्मणं लक्ष्मिवर्धनम् ।
अशुभानि बहून्येव पश्यामि रघुनन्दन ॥ १३ ॥

नयनं मे स्फुरत्यद्य गात्रोत्कम्पश्च जायते ।
हृदयं चैव सौमित्रे अस्वस्थमिव लक्षये ॥ १४ ॥

औत्सुक्यं परमं चापि अधृतिश्च परा मम ।
शून्यामेव च पश्यामि पृथिवीं पृथुलोचन ॥ १५ ॥

अपि स्वस्ति भवेत्तस्य भ्रातुस्ते भ्रातृवत्सल ।
श्वश्रूणां चैव मे वीर सर्वासामविशेषतः ॥ १६ ॥

पुरे जनपदे चैव कुशलं प्राणिनामपि ।
इत्यञ्जलिकृता सीता देवता अभ्ययाचत ॥ १७ ॥

लक्ष्मणोऽर्थं तु तं श्रुत्वा शिरसाऽऽवन्द्य मैथिलीम् ।
शिवमित्यब्रवीद्धृष्टो हृदयेन विशुष्यता ॥ १८ ॥

ततो वासमुपागम्य गोमतीतीर आश्रमे ।
प्रभाते पुनरुत्थाय सौमित्रिः सूतमब्रवीत् ॥ १९ ॥

योजयस्व रथं शीघ्रमद्य भागीरथीजलम् ।
शिरसा धारयिष्यामि त्र्यम्बकः पर्वते यथा ॥ २० ॥

सोऽश्वान्युज्ज्वाऽथ चतुरो रथे युङ्क्त्वा मनोजवान् ।
आरोहस्वेति वैदेहीं सूतः प्राञ्जलिरब्रवीत् ॥ २१ ॥

सा तु सूतस्य वचनादारुरोह रथोत्तमम् ।
सीता सौमित्रिणा सार्धं सुमन्त्रेण च धीमता ॥ २२ ॥

आससाद विशालाक्षी गङ्गां पापविनाशिनीम् ।
अथार्धदिवसं गत्वा भागीरथ्या जलाशयम् ॥ २३ ॥

निरीक्ष्य लक्ष्मणो दीनः प्ररुरोद महास्वनः ॥ २४ ॥

सीता तु परमायत्ता दृष्ट्वा लक्ष्मणमातुरम् ।
उवाच वाक्यं धर्मज्ञा किमिदं रुद्यते त्वया ॥ २५ ॥

जाह्नवीतीरमासाद्य चिराभिलषितं मम ।
हर्षकाले किमर्थं मां विषादयसि लक्ष्मण ॥ २६ ॥

नित्यं त्वं रामपार्श्वेषु वर्तसे पुरुषर्षभ ।
कच्चिद्विनाकृतस्तेन द्विरात्रं शोकमागतः ॥ २७ ॥

ममापि दयितो रामो जीवितादपि लक्ष्मण ।
न चाहमेवं शोचामि मैवं त्वं बालिशो भव ॥ २८ ॥

तारयस्व च मां गङ्गां दर्शयस्व च तापसान् ।
ततो मुनिभ्यो दास्यामि वासांस्याभरणानि च ॥ २९ ॥

ततः कृत्वा महर्षीणां यथावदभिवादनम् ।
तत्र चैकां निशामुष्य यास्यामस्तां पुरीं पुनः ॥ ३० ॥

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा प्रमृज्य नयने शुभे ।
नाविकानाह्वयामास लक्ष्मणः परवीरहा ॥
इयं च सज्जा नौश्चेति दाशाः प्राञ्जलयोऽब्रुवन् ॥ ३१ ॥

तितीर्षुर्लक्ष्मणो गङ्गां शुभां नावमुपारुहत् ।
गङ्गां सन्तारयामास लक्ष्मणस्तां समाहितः ॥ ३२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 22545 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 1821



## सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४७ ॥

श्रीरामनियोगनिवेदनम् ॥

अथ नावं सुविस्तीर्णां नैषादीं राघवानुजः ।
आरुरोह समायुक्तां पूर्वमारोप्य मैथिलीम् ॥ १ ॥

सुमन्त्रं चैव सरथं स्थीयतामिति लक्ष्मणः ।
उवाच शोकसंतप्तः प्रयाहीति च नाविकम् ॥ २ ॥

ततस्तीरमुपागम्य भागीरथ्याः स लक्ष्मणः ।
उवाच मैथिलीं वाक्यं प्राञ्जलिर्बाष्पसंप्लुतः ॥ ३ ॥

हृदतं मे महच्छल्यं यस्मादार्येण धीमता ।
अस्मिन्निमित्ते वैदेहि लोकस्य वचनीकृतः ॥ ४ ॥

श्रेयो हि मरणं मेऽद्य मृत्युर्वा यत्परं भवेत् ।
न चास्मिन्नीदृशे कार्ये नियोज्यो लोकनिन्दिते ॥ ५ ॥

प्रसीद च न मे पापं कर्तुमर्हसि शोभने ।
इत्यञ्जलिकृतो भूमौ निपपात स लक्ष्मणः ॥ ६ ॥

रुदन्तं प्राञ्जलिं दृष्ट्वा काङ्क्षन्तं मृत्युमात्मनः ।
मैथिली भृशसंविग्ना लक्ष्मणं वाक्यमब्रवीत् ॥ ७ ॥

किमिदं नावगच्छामि ब्रूहि तत्त्वेन लक्ष्मण ।
पश्यामि त्वां न च स्वस्थमपि क्षेमं महीपतेः ॥ ८ ॥

शापितोऽसि नरेन्द्रेण यत्त्वं सन्तापमागतः ।
तद्ब्रूयाः सन्निधौ मह्यमहमाज्ञापयामि ते ॥ ९ ॥

वैदेह्या चोद्यमानस्तु लक्ष्मणो दीनचेतनः ।
अवाङ्मुखो बाष्पकलं वाक्यमेतदुवाच ह ॥ १० ॥

श्रुत्वा परिषदो मध्ये ह्यपवादं सुदारुणम् ।
पुरे जनपदे चैव त्वत्कृते जनकात्मजे ॥
रामः सन्तप्तहृदयो मां निवेद्य गृहं गतः ॥ ११ ॥

न तानि वचनीयानि मया देवि तवाग्रतः ।
यानि राज्ञा हृदि न्यस्तान्यमर्षात्पृष्ठतः कृतः ॥ १२ ॥

मा त्वं त्यक्ता नृपतिना निर्दोषा मम सन्निधौ ।
पौरापवादभीतेन ग्राह्यं देवि न तेऽन्यथा ॥ १३ ॥

आश्रमान्तेषु च मया त्यक्तव्या त्वं भविष्यसि ।
राज्ञः शासनमाज्ञाय तवेदं किल दौर्हृदम् ॥ १४ ॥

तदेतज्जाह्नवीतीरे ब्रह्मर्षीणां तपोवनम् ।
पुण्यं च रमणीयं च मा विषादं कृथाः शुभे ॥ १५ ॥

राज्ञो दशरथस्येष्टः पितुर्मे मुनिपुङ्गवः ।
सखा परमको विप्रो वाल्मीकिः सुमहायशाः ॥ १६ ॥

पादच्छायामुपागम्य सुखमस्य महात्मनः ।
उपवासपरैकाग्रा वस त्वं जनकात्मजे ॥ १७ ॥

पतिव्रतात्वमास्थाय रामं कृत्वा सदा हृदि ।
श्रेयस्ते परमं देवि तथा कृत्वा भविष्यति ॥ १८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकिये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 22563 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 1839

## अष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४८ ॥

सीतापरित्यागः ॥

लक्ष्मणस्य वचः श्रुत्वा दारुणं जनकात्मजा ।
परं विषादमागम्य वैदेही निपपात ह ॥ १ ॥

सा मुहूर्तमिवासंज्ञा बाष्पपर्याकुलेक्षणा ।
लक्ष्मणं दीनया वाचा उवाच जनकात्मजा ॥ २ ॥

मामिकेयं तनुर्नूनं सृष्टा दुःखाय लक्ष्मण ।
धात्रा यस्यास्तथा मेऽद्य दुःखमूर्तिः प्रदृश्यते ॥ ३ ॥

किं नु पापं कृतं पूर्वं को वा दारैर्वियोजितः ।
याऽहं शुद्धसमाचारा त्यक्ता नृपतिना सती ॥ ४ ॥

पुराहमाश्रमे वासं रामपादानुवर्तिनी ।
अनुरुध्यापि सौमित्रे दुःखे च परिवर्तिनी ॥ ५ ॥

सा कथं ह्याश्रमे सौम्य वत्स्यामि विजनीकृता ।
आख्यास्यामि च कस्याहं दुःखं दुःखपरायणा ॥ ६ ॥

किं नु वक्ष्यामि मुनिषु कर्म वा सत्कृतं च किम् ।
कस्मिंश्चित्कारणे त्यक्ता राघवेण महात्मना ॥ ७ ॥

न खल्वद्यैव सौमित्रे जीवितं जाह्नवीतले ।
त्यजेयं राजवंशस्तु भर्तुर्मे परिहास्यते ॥ ८ ॥

यथाज्ञं कुरु सौमित्रे त्यज मां दुःखभागिनीम् ।
निदेशे स्थीयतां राज्ञः शृणु चेदं वचो मम ॥ ९ ॥

श्वश्रूणामविशेषेण प्राञ्जलिप्रग्रहेण च ।
शिरसाऽऽवन्द्य चरणौ कुशलं ब्रूहि पार्थिवम् ॥ १० ॥

जानासि च यथा शुद्धा सीता तत्त्वेन राघव ।
भक्त्या च परया युक्ता हिता च तव नित्यशः ॥ ११ ॥

अहं त्यक्ता त्वया वीर अयशोभीरुणा जने ।
यच्च ते वचनीयं स्यादपवादसमुत्थितम् ॥
मया हि परिहर्तव्यं त्वं हि मे परमा गतिः ॥ १२ ॥

वक्तव्यश्चेति नृपतिर्धर्मेण सुसमाहितः ।
यथा भ्रातृषु वर्तेथास्तथा पौरेषु नित्यदा ॥ १३ ॥

परमो ह्येष धर्मस्ते तस्मात्कीर्तिरनुत्तमा ।
यत्तु पौरजनो राजन्धर्मेण समवाप्नुयात् ॥ १४ ॥

अहं तु नानुशोचामि स्वशरीरं नरर्षभ ।
यथाऽपवादं पौराणां तथैव रघुनन्दन ॥ १५ ॥

पतिर्हि देवता नार्याः पतिर्बन्धुः पतिर्गुरुः ।
प्राणैरपि प्रियं तस्माद्भर्तुः कार्यं विशेषतः ॥ १६ ॥

इति मद्वचनाद्रामो वक्तव्यो मम संग्रहः ॥ १७ ॥

निरीक्ष्य माऽद्य गच्छ त्वमृतुकालातिवर्तिनीम् ॥ १८ ॥

एवं ब्रुवन्त्यां सीतायां लक्ष्मणो दीनचेतनः ।
शिरसाऽऽवन्द्य धरणीं व्याहर्तुं न शशाक ह ॥ १९ ॥

प्रदक्षिणं च तां कृत्वा रुदन्नेव महास्वनः ।
ध्यात्वा मुहूर्तं तामाह किं मां वदसि शोभने ॥ २० ॥

दृष्टपूर्वं न ते रूपं पादौ दृष्टौ तवानघे ।
कथमत्र हि पश्यामि रामेण रहितां वने ॥ २१ ॥

इत्युक्त्वा तां नमस्कृत्य पुनर्नावमुपारुहत् ।
आरुह्य च पुनर्नावं नाविकं चाभ्यचोदयत् ॥ २२ ॥

स गत्वा चोत्तरं तीरं शोकभारसमन्वितः ।
संमूढ इव दुःखेन रथमध्यारुहद्द्रुतम् ॥ २३ ॥

मुहुर्मुहुः परावृत्य दृष्ट्वा सीतामनाथवत् ।
चेष्टतीं परतीरस्थां लक्ष्मणः प्रययावथ ॥ २४ ॥

दूरस्थं रथमालोक्य लक्ष्मणं च मुहुर्मुहुः ।
निरीक्षमाणां तूद्विग्नां सीतां शोकः समाविशत् ॥ २५ ॥

सा दुःखभारावनता यशस्विनी
यशोधना नाथमपश्यती सती ॥
रुरोद सा बर्हिणनादिते वने
महास्वनं दुःखपरायणा सती ॥ २६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे अष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 22589 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 1865

## एकोनपञ्चाशः सर्गः ॥ ४९ ॥

सीतायाः वाल्मीक्याश्रमप्रवेशः ॥

सीतां रुदन्तीं दृष्ट्वा तां तत्र वै मुनिदारकाः ।
प्राद्रवन्यत्र भगवानास्ते वाल्मीकिरुग्रधीः ॥ १ ॥
अभिवाद्य मुनेः पादौ मुनिपुत्रा महर्षये ।
सर्वं निवेदयामासुस्तस्यास्तु रुदितस्वनम् ॥ २ ॥
अदृष्टपूर्वा भगवन्कस्याप्येषा महात्मनः ।
पत्नी श्रीरिव संमोहाद्विरौति विकृताननना ॥ ३ ॥
भगवन्साधु पश्य त्वं देवतामिव खाच्च्युताम् ।
नद्यास्तु तीरे भगवन्वरस्त्री काऽपि दुःखिता ॥ ४ ॥
दृष्टाऽस्माभिः प्ररुदिता दृढं शोकपरायणा ।
अनर्हा दुःखशोकाभ्यामेका दीना ह्यनाथवत् ॥ ५ ॥

न ह्येनां मानुषीं विद्मः सत्क्रियाऽस्याः प्रयुज्यताम् ।
आश्रमस्याविदूरे च त्वामियं शरणं गता ॥
त्रातारमिच्छते साध्वी भगवंस्त्रातुमर्हसि ॥ ६ ॥

तेषां तु वचनं श्रुत्वा बुद्ध्या निश्चित्य धर्मवित् ।
तपसा लब्धचक्षुष्मान्प्राद्रवद्यत्र मैथिली ॥ ७ ॥

तं तु देशमभिप्रेत्य किञ्चित्पद्भ्यां महामतिः ।
अर्घ्यमादाय रुचिरं जाह्नवीतीरमागमत् ॥
ददर्श राघवस्येष्टां सीतां पत्नीमनाथवत् ॥ ८ ॥

विलपन्तीं सुशोकार्तां वाल्मीकिर्मुनिपुङ्गवः ।
उवाच मधुरां वाणीं ह्लादयन्निव तेजसा ॥ ९ ॥

स्नुषा दशरथस्य त्वं रामस्य महषी प्रिया ।
जनकस्य सुता राज्ञः स्वागतं ते पतिव्रते ॥ १० ॥

आयान्ती चासि विज्ञाता मया धर्मसमाधिना ।
कारणं चैव सर्वं मे हृदयेनोपलक्षितम् ॥ ११ ॥

तव चैव महाभागे विदितं मम तत्त्वतः ।
सर्वं च विदितं मह्यं त्रैलोक्ये यद्धि वर्तते ॥ १२ ॥

अपापां वेद्मि सीते त्वां तपोलब्धेन चक्षुषा ।
विस्रब्धा भव वैदेहि सांप्रतं मयि वर्तसे ॥ १३ ॥

आश्रमस्याविदूरे मे तापस्यस्तपसि स्थिताः ।
तास्त्वां वत्से यथा वत्सं पालयिष्यन्ति नित्यशः॥ १४ ॥

इदमर्घ्यं प्रतीच्छ त्वं विस्रब्धा विगतज्वरा ।
यथा स्वगृहमभ्येत्य विषादं चैव मा कृथाः ॥ १५ ॥

श्रुत्वा तु भाषितं सीता मुनेः परममद्भुतम् ।
शिरसा वन्द्य चरणौ तथेत्याह कृताञ्जलिः ॥ १६ ॥

तं प्रयान्तं मुनिं सीता प्राञ्जलिः पृष्ठतोऽन्वगात् ॥ १७ ॥

तं दृष्ट्वा मुनिमायान्तं वैदेह्या मुनिपत्नयः ।
उपाजग्मुर्मुदा युक्ता वचनं चेदमब्रुवन् ॥ १८ ॥

स्वागतं ते मुनिश्रेष्ठ चिरस्यागमनं च ते ।
अभिवादयामस्त्वां सर्वा उच्यतां किं च कुर्महे ॥ १९ ॥

तासां तद्वचनं श्रुत्वा वाल्मीकिरिदमब्रवीत् ।
सीतेयं समनुप्राप्ता पत्नी रामस्य धीमतः ॥ २० ॥

स्नुषा दशरथस्यैषा जनकस्य सुता सती ।
अपापा पतिना त्यक्ता परिपाल्या मया सदा ॥ २१ ॥

इमां भवन्त्यः पश्यन्तु स्नेहेन परमेण हि ।
गौरवान्मम वाक्याच्च पूज्या वोऽस्तु विशेषतः ॥ २२ ॥

मुहुर्मुहुश्च वैदेहीं प्रणिधाय महायशाः ।
स्वमाश्रमं शिष्यवृतः पुनरायान्महातपाः ॥ २३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे एकोनपञ्चाशः सर्गः ॥

## पञ्चाशः सर्गः ॥ ५० ॥

### दुर्वाससोवचनानुवादचोदना ॥

दृष्ट्वा तु मैथिलीं सीतामाश्रमे संप्रवेशिताम् ।
सन्तापमगमद्घोरं लक्ष्मणो दीनचेतनः ॥ १ ॥

अब्रवीच्च महातेजाः सुमन्त्रं मन्त्रसारथिम् ।
सीतासन्तापजं दुःखं पश्य रामस्य सारथे ॥ २ ॥

ततो दुःखतरं किं नु राघवस्य भविष्यति ।
पत्नीं शुद्धसमाचारां विसृज्य जनकात्मजाम् ॥ ३ ॥

व्यक्तं दैवादहं मन्ये राघवस्य विनाभवम् ।
वैदेह्या सारथे नित्यं दैवं हि दुरतिक्रमम् ॥ ४ ॥

यो हि देवान्सगन्धर्वानसुरान्सह राक्षसैः ।
निहन्याद्राघवः क्रुद्धः स दैवं पर्युपासते ॥ ५ ॥

पुरा रामः पितुर्वाक्यादण्डके विजने वने ।
उषित्वा नव वर्षाणि पञ्च चैव महावने ॥ ६ ॥

ततो दुःखतरं भूयः सीताया विप्रवासनम् ।
पौराणां वचनं श्रुत्वा नृशंसं प्रतिभाति मे ॥ ७ ॥

को नु धर्माश्रयः सूत कर्मण्यस्मिन्यशोहरे ।
मैथिलीं प्रति संप्राप्तः पौरैर्हीनार्थवादिभिः ॥ ८ ॥

एता वाचो बहुविधाः श्रुत्वा लक्ष्मणभाषिताः ।
सुमन्त्रः श्रद्धया प्राज्ञो वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ९ ॥

न सन्तापस्त्वया कार्यः सौमित्रे मैथिलीं प्रति ।
दृष्टमेतत्पुरा विप्रैः पितुस्ते लक्ष्मणाग्रतः ॥ १० ॥

भविष्यति दृढं रामो दुःखभागयोऽल्पभाग्यवान् ।
प्राप्स्यते च महाबाहुर्विप्रयोगं प्रियैर्ध्रुवम् ॥ ११ ॥

त्वां चैव मैथिलीं चैव शत्रुघ्नभरतावुभौ ।
सन्त्यजिष्यति धर्मात्मा कालेन महता महान् ॥ १२ ॥

इदं त्वयि न वक्तव्यं सौमित्रे भरतेऽपि वा ।
राज्ञा वो व्याहृतं वाक्यं दुर्वासा यदुवाच ह ॥ १३ ॥

महाजनसमीपे च मम चैव नरर्षभ ।
ऋषिणा व्याहृतं वाक्यं वसिष्ठस्य च सन्निधौ ॥ १४ ॥

ऋषेस्तु वचनं श्रुत्वा मामाह पुरुषर्षभः ।
सूत न क्वचिदेवं ते वक्तव्यं जनसन्निधौ ॥ १५ ॥

तस्याहं लोकपालस्य वाक्यं तत्सुसमाहितम् ।
नैव जात्वनृतं कार्यमिति मे सौम्य दर्शनम् ॥ १६ ॥

सर्वथैव न वक्तव्यं मया सौम्य तवाग्रतः ।
यदि ते श्रवणे श्रद्धा श्रूयतां रघुनन्दन ॥ १७ ॥

यद्यप्यहं नरेन्द्रेण रहस्यं श्रावितः पुरा ।
तथाऽप्युदाहरिष्यामि दैवं हि दुरतिक्रमम् ॥ १८ ॥

येनेदमीदृशं प्राप्तं दुःखं शोकसमन्वितम् ।
तच्छ्रुत्वा भाषितं तस्य गम्भीरार्थपदं महत् ॥
तथ्यं ब्रूहीति सौमित्रिः सूतं वाक्यमथाऽब्रवीत् ॥ १९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकिये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे पञ्चाशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 2263। उत्तरकाण्डे आ देतः श्लोकाः 1907



एकपञ्चाशः सर्गः ॥ ५१ ॥

भृगुशापः ॥

तथा सञ्चोदितः सूतो लक्ष्मणेन महात्मना ।
तद्वाक्यमृषिणा प्रोक्तं व्याहर्तुमुपचक्रमे ॥ १ ॥

पुरा नाम्ना हि दुर्वासा अत्रेः पुत्रो महामुनिः ।
वसिष्ठस्याश्रमे पुण्ये वार्षिक्यं समुवास ह ॥ २ ॥

तमाश्रमं महातेजाः पिता ते सुमहायशाः ।
पुरोहितं महात्मानं दिदृक्षुरगमत्स्वयम् ॥ ३ ॥

स दृष्ट्वा सूर्यसङ्काशं ज्वलन्तमिव तेजसा ।
उपविष्टं वसिष्ठस्य सव्यपार्श्वे महामुनिम् ॥ ४ ॥

तौ मुनी तापसश्रेष्ठौ विनीतो ह्यभिवादयत् ।
स ताभ्यां पूजितो राजा स्वागतेनासनेन च ॥
पाद्येन फलमूलैश्च उवास मुनिभिः सह ॥ ५ ॥

तेषां तत्रोपविष्टानां तास्ताः सुमधुराः कथाः ।
बभूवुः परमर्षीणां मध्यादित्यगतेऽहनि ॥ ६ ॥

ततः कथायां कस्याञ्चित्प्राञ्जलिः प्रग्रहो नृपः ।
उवाच तं महात्मानमत्रेः पुत्रं तपोधनम् ॥ ७ ॥

भगवन्किप्रमाणेन मम वंशो भविष्यति ।
किमायुश्च हि मे रामः पुत्राश्चान्ये किमायुषः ॥ ८ ॥

रामस्य च सुता ये स्युस्तेषामायुः कियद्भवेत् ।
काम्यया भगवन्ब्रूहि वंशस्यास्य गतिं मम ॥ ९ ॥

तच्छ्रुत्वा व्याहृतं वाक्यं राज्ञो दशरथस्य च ।
दुर्वासाः सुमहातेजा व्याहर्तुमुपचक्रमे ॥ १० ॥

शृणु राजन्पुरावृत्तं तदा दैवासुरे युधि ।
दैत्याः सुरैर्भर्त्स्यमाना भृगुपत्नीं समाश्रिताः ॥ ११ ॥

तया दत्ताभयास्तत्र न्यवसन्नभयास्तदा ॥ १२ ॥

तया परिगृहीतांस्तान्दृष्ट्वा क्रुद्धः सुरेश्वरः ।
चक्रेण शितधारेण भृगुपत्न्याः शिरोऽहरत् ॥ १३ ॥

ततस्तां निहतां दृष्ट्वा पत्नीं भृगुकुलोद्वहः ।
शशाप सहसा क्रुद्धो विष्णुं रिपुकुलार्दनम् ॥ १४ ॥

यस्मादवध्यां मे पत्नीमवधीः क्रोधमूर्च्छितः ।
तस्मात्त्वं मानुषे लोके जनिष्यसि जनार्दन ॥
तत्र पत्नीवियोगं त्वं प्राप्स्यसे बहुवार्षिकम् ॥ १५ ॥

एवं शापं भृगुर्दत्वा विष्णोः स्मृत्वा च वैभवम् ।
शापाभिहतचेताः स स्वात्मना भावितोऽभवत् ॥ १६ ॥

पुनरेव ययौ तापमृषिर्दुर्मददुर्मदः ।
विष्णुशक्तिमविद्वान्स प्रपेदे शापमूढताम् ॥ १७ ॥

चिरकालमसंज्ञोऽभूच्छापान्धतमसा वृतः ।
दृष्ट्वा सप्तर्षयश्चैवं कृपां चक्रुश्च भक्तितः ॥ १८ ॥

त्यक्तशापः पुरस्तस्थौ मन्दं भृगुरथाब्रवीत् ।
रक्षध्वं मां मुनिश्रेष्ठाः शापान्मत्पुरतः स्थिताः ॥ १९ ॥

श्रुत्वा तु भृगुवाक्यं तमाहुश्च परमर्षयः ॥ २० ॥

स्तुत्यैर्ब्रह्मेशशक्राद्यैः स्तूयमानमहर्निशम् ।
नारायणं प्रपद्यस्व स्तोत्रैरेव च सुव्रत ॥ २१ ॥

एवमुक्तस्तु ऋषिभिर्विष्णुपूजां चकार सः ॥ २२ ॥

भृगुणाऽऽराधितो विष्णुरागतः प्राह तं भृगुम् ।
मा भैर्भृगोऽनृतं वाक्यं न भविष्यति ते द्विज ॥
संमोचयसि पापान्मामहमेनं गृहीतवान् ॥ २३ ॥

अर्चयामास तं देवं भृगुः शापेन पीडितः ॥ २४ ॥

तपसाऽऽराधितो देवो ह्यब्रवीद्भक्तवत्सलः ।
लोकानां स हितार्थं तु तं शापं ग्राह्यमुक्तवान् ॥ २५ ॥

इति शप्तो महातेजा भृगुणा पूर्वजन्मनि ।
इहागतो हि पुत्रत्वं तव पार्थिवसत्तम ॥ २६ ॥

राम इत्यभिविख्यातस्त्रिषु लोकेषु मानद ।
तत्फलं प्राप्स्यते चापि भृगुशापकृतं महत् ॥ २७ ॥

अयोध्यायाः पती रामो दीर्घकालं भविष्यति ।
सुखिनश्च समृद्धाश्च भविष्यन्त्यस्य येऽनुगाः ॥ २८ ॥

दश वर्षसहस्राणि दश वर्षशतानि च ।
रामो राज्यमुपासित्वा ब्रह्मलोकं गमिष्यति ॥ २९ ॥

समृद्धैश्चाश्वमेधैश्च इष्ट्वा परमदुर्जयः ।
राजवंशांश्च बहुशो बहून्संस्थापयिष्यति ॥ ३० ॥

द्वौ पुत्रौ तु भविष्येते सीतायां राघवस्य तु ।
अन्यत्र न त्वयोध्यायां सत्यमेतन्न संशयः ॥ ३१ ॥

सीतायाश्च ततः पुत्रावभिषेक्ष्यति राघवः ॥ ३२ ॥

स सर्वमखिलं राज्ञो वंशस्याह गतागतम् ।
आख्याय सुमहातेजास्तूष्णीमासीन्महामुनिः ॥ ३३ ॥

तूष्णींभूते तदा तस्मिन्राजा दशरथो मुनौ ।
अभिवाद्य महात्मानौ पुनरायात्पुरोत्तमम् ॥ ३४ ॥

एतद्वचो मया तत्र मुनिना व्याहृतं पुरा ।
श्रुतं हृदि च निक्षिप्तं नान्यथा तद्भविष्यति ॥ ३५ ॥

एवं गते न सन्तापं कर्तुमर्हसि राघव ।
सीतार्थे राघवार्थे वा दृढो भव नरोत्तम ॥ ३६ ॥

श्रुत्वा तु व्याहृतं वाक्यं सूतस्य परमाद्भुतम् ।
प्रहर्षमतुलं लेभे साधु साध्विति चाब्रवीत् ॥ ३७ ॥

ततः संवदतोरेवं सूतलक्ष्मणयोः पथि ।
अस्तमर्के गते वासं गोमत्यां तावथोषतुः ॥ ३८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे एकपञ्चाशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 22669 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 1945



## द्विपञ्चाशः सर्गः ॥ ५२ ॥

श्रीरामसमाधानम् ॥

तत्र तां रजनीमुष्य गोमत्यां रघुनन्दनः ।
प्रभाते पुनरुत्थाय लक्ष्मणः प्रययौ तदा ॥ १ ॥

ततोऽर्धदिवसे प्राप्ते प्रविवेश महारथः ।
अयोध्यां रत्नसम्पूर्णां हृष्टपुष्टजनावृताम् ॥ २ ॥

सौमित्रिस्तु परं दैन्यं जगाम सुमहामतिः ।
रामपादौ समासाद्य वक्ष्यामि किमहं गतः ॥ ३ ॥

तस्यैवं चिन्तयानस्य भवनं शशिसन्निभम् ।
रामस्य परमोदारं पुरस्तात्समदृश्यत ॥ ४ ॥

राज्ञस्तु भवनद्वारि सोऽवतीर्य रथोत्तमात् ।
अवाङ्मुखो दीनमनाः प्रविवेशानिवारितः ॥ ५ ॥

स दृष्ट्वा राघवं दीनमासीनं परमासने ।
नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यां ददर्शाग्रजमग्रतः ॥ ६ ॥

जग्राह चरणौ तस्य लक्ष्मणो दीनचेतनः ।
उवाच दीनया वाचा प्राञ्जलिः सुसमाहितः ॥ ७ ॥

आर्यस्याज्ञां पुरस्कृत्य विसृज्य जनकात्मजाम् ।
गङ्गातीरे यथोद्दिष्टे वाल्मीकेराश्रमे शुचौ ॥
पुनरप्यागतो वीर पादमूलमुपासितुम् ॥ ८ ॥

मा शुचः पुरुषव्याघ्र कालस्य गतिरीदृशी ।
त्वद्विधा न हि शोचन्ति बुद्धिमन्तो मनस्विनः ॥ ९ ॥

सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः ।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं च जीवितम् ॥ १० ॥

तस्मात्पुत्रेषु दारेषु मित्रेषु च धनेषु च ।
नातिप्रसङ्गः कर्तव्यो विप्रयोगो हि तैर्ध्रुवम् ॥ ११ ॥

शक्तस्त्वमात्मनाऽऽत्मानं विनेतुं मनसैव हि ।
लोकान्सर्वांश्च काकुत्स्थ किं पुनः शोकमात्मनः ॥ १२ ॥

नेदृशेषु विमुह्यन्ति त्वद्विधाः पुरुषर्षभाः ।
अपवादः स किल ते पुनरेष्यति राघव ॥ १३ ॥

यदर्थं मैथिली त्यक्ता अपवादभयान्नृप ।
सोऽपवादः पुरे राजन्भविष्यति न संशयः ॥ १४ ॥

स त्वं पुरुषशार्दूल धैर्येण सुसमाहितः ।
त्यजैनां दुर्बलां बुद्धिं सन्तापं मा कुरुष्व ह ॥ १५ ॥
एवमुक्तः स काकुत्स्थो लक्ष्मणेन महात्मना ।
उवाच परया प्रीत्या सौमित्रिं मित्रवत्सलः ॥ १६ ॥
एवमेतन्नरश्रेष्ठ यथा वदसि लक्ष्मण ।
परितोषश्च मे वीर मम कार्यानुशासने ॥ १७ ॥
निर्वृतिश्चागता सौम्य सन्तापश्च निराकृतः ।
भवद्वाक्यैः सुरुचिरैरनुनीतोऽसि लक्ष्मण ॥ १८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे द्विपञ्चाशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 22687 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 1963

## त्रिपञ्चाशः सर्गः ॥ ५३ ॥

नृगशापः ॥

लक्ष्मणस्य तु तद्वाक्यं निशम्य परमाद्भुतम् ।
सुप्रीतश्चाभवद्रामो वाक्यमेतदुवाच ह ॥ १ ॥
चत्वारो दिवसाः सौम्य कार्यं पौरजनस्य वै ।
अकुर्वाणस्य सौमित्रे तन्मे मर्माणि कृन्तति ॥ २ ॥
आहूयन्तां प्रकृतयः पुरोधा मन्त्रिणस्तथा ।
कार्यार्थिनश्च पुरुषाः स्त्रियश्च पुरुषर्षभ ॥ ३ ॥
पौरकार्याणि यो राजा न करोति दिने दिने ।
संवृते नरके घोरे पतितो नात्र संशयः ॥ ४ ॥

श्रूयते हि पुरा राजा नृगो नाम महायशाः ।
बभूव पृथिवीपालो ब्रह्मण्यः सत्यवाक् शुचिः ॥ ५ ॥

स कदाचिद्गवां कोटीः सवत्साः स्वर्णभूषिताः ।
नृदेवो भूमिदेवेभ्यः पुष्करेषु ददौ नृपः ॥ ६ ॥

ततः सङ्गाद्गता धेनुः सवत्सा स्पर्शिताऽनघ ।
ब्राह्मणस्याहिताग्नेश्च दरिद्रस्योञ्छवर्तिनः ॥ ७ ॥

स नष्टां गां क्षुधार्तो वा अन्विष्यंस्तत्र तत्र च ।
नापश्यत्सर्वराज्येषु संवत्सरगणान्बहून् ॥ ८ ॥

ततः कनखलं गत्वा जीर्णवत्सां निरामयाम् ।
ददर्श गां स्वकां धेनुं ब्राह्मणस्य निवेशने ॥ ९ ॥

अथ तां नामधेयेन स्वकेनोवाच स द्विजः ।
आगच्छ शबलेत्येवं सा तु शुश्राव गौः स्वरम् ॥ १० ॥

तस्य तु स्वरमाज्ञाय क्षुधार्तस्य द्विजस्य वै ।
अन्वगात्पृष्ठतः सा गौर्गच्छन्तं पावकोपमम् ॥ ११ ॥

योऽपि पालयते विप्रः सोऽपि गामन्वगाद्द्रुतम् ।
गत्वा तमृषिमाचष्ट मम गौरिति सत्वरम् ॥ १२ ॥

स्पर्शिता राजसिंहेन मम दत्ता नृगेण ह ।
तयोर्ब्राह्मणयोर्वादो महानासीद्विपश्चितोः ॥ १३ ॥

विवदन्तौ ततोऽन्योन्यं दातारमभिजग्मतुः ।
तौ राजभवनद्वारि न प्राप्तौ नृगशासनम् ॥ १४ ॥

अहोरात्राण्यनेकानि वसन्तौ क्रोधमीयतुः ।
ऊचतुश्च महात्मानौ तावुभौ द्विजसत्तमौ ॥
क्रुद्धौ परमसन्तप्तौ वाक्यं घोराभिसंहितम् ॥ १५ ॥
अर्थिनां कार्यसिद्ध्यर्थं यस्मात्त्वं नैषि दर्शनम् ।
अदृश्यः सर्वभूतानां कृकलासो भविष्यसि ॥ १६ ॥
बहुवर्षसहस्राणि बहुवर्षशतानि च ।
श्वभ्रेऽस्मिन्कृकलासो वै दीर्घकालं वसिष्यसि ॥ १७ ॥
उत्पत्स्यते हि लोकेऽस्मिन्यदूनां कीर्तिवर्धनः ।
वासुदेव इति ख्यातो लोके पुरुषविग्रहः ॥ १८ ॥
स ते मोक्षयिता राजंस्तस्माच्छापाद्भविष्यति ।
कृता च तेन कालेन निष्कृतिस्ते भविष्यति ॥ १९ ॥
एवं तौ शापमुत्सृज्य ब्राह्मणौ विगतज्वरौ ।
तां गां हि दुर्बलां वृद्धां ददतुर्ब्राह्मणाय वै ॥
एवं स राजा तं शापमुपभुङ्क्ते सुदारुणम् ॥ २० ॥
कार्यार्थिनां विमर्दो हि राज्ञां दोषाय कल्पते ।
तच्छीघ्रं दर्शनं मह्यमभिवर्तन्तु कार्यिणः ॥ २१ ॥
सुकृतस्य हि कार्यस्य फलं नाप्नोति पार्थिवः ।
तस्माद्गच्छ प्रतीक्षस्व सौमित्रे कार्यवाञ्जनः ॥ २२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे त्रिपञ्चाशः सर्गः ॥

## चतुःपञ्चाशः सर्गः ॥ ५४ ॥

नृगस्य कृकालत्वप्राप्तिः ॥

रामस्य भाषितं श्रुत्वा लक्ष्मणः परमार्थवित् ।
उवाच प्राञ्जलिर्वाक्यं राघवं दीप्ततेजसम् ॥ १ ॥

अल्पापराधे काकुत्स्थ द्विजाभ्यां शाप ईदृशः ।
महान्नृगस्य राजर्षेर्यमदण्ड इवापरः ॥ २ ॥

श्रुत्वा तु पापसंयुक्तमात्मानं पुरुषर्षभ ।
किमुवाच नृगो राजा द्विजौ क्रोधसमन्वितौ ॥ ३ ॥

लक्ष्मणेनैवमुक्तस्तु राघवः पुनरब्रवीत् ।
शृणु सौम्य यथापूर्वं स राजा शापविक्षतः ॥ ४ ॥

अथाध्वनि गतौ विप्रौ विज्ञाय स नृगस्तदा ।
आहूय मन्त्रिणः सर्वान्नैगमान्सपुरोधसः ॥ ५ ॥

तानुवाच नृगो राजा सर्वांश्च प्रकृतीस्तथा ।
दुःखेन सुसमाविष्टः श्रूयतां मे समाहितैः ॥ ६ ॥

नारदः पर्वतश्चैव मम दत्त्वा महद्धनम् ।
गतौ त्रिभुवनं भद्रौ वायुभूतावनिन्दितौ ॥ ७ ॥

कुमारोऽयं वसुर्नाम स देवोऽद्याभिषिच्यताम् ।
श्वभ्रं च यत्सुखस्पर्शं क्रियतां शिल्पिभिर्मम ॥
यत्राहं संक्षयिष्यामि शापं ब्राह्मणनिःसृतम् ॥ ८ ॥

वर्षघ्नमेकं श्वभ्रं तु हिमघ्नमपरं तथा ।
ग्रीष्मघ्नं तु सुखस्पर्शमेकं कुर्वन्तु शिल्पिनः ॥ ९ ॥

फलवन्तश्च ये वृक्षाः पुष्पवत्यश्च या लताः ।
विरोप्यन्तां बहुविधाश्छायावन्तश्च गुल्मिनः ॥ १० ॥
क्रियतां रमणीयं च श्वभ्राणां सर्वतो दिशम् ।
सुखमत्र वसिष्यामि यावत्कालस्य पर्ययः ॥ ११ ॥
पुष्पाणि च सुगन्धीनि क्रियन्तां तेषु नित्यशः ।
परिवार्य यथा मे स्युरध्यर्धं योजनं तथा ॥ १२ ॥
एवं कृत्वा विधानं स सन्दिदेश वसुं तदा ।
धर्मनित्यः प्रजाः पुत्र क्षत्रधर्मेण पालय ॥ १३ ॥
प्रत्यक्षं ते यथा शापो द्विजाभ्यां मयि पातितः ।
नरश्रेष्ठ सरोषाभ्यामपराधेऽपि तादृशे ॥ १४ ॥
मा कृथास्तनुसन्तापं मत्कृतेऽपि नरर्षभ ।
कृतान्तः कुशलः पुत्र येनास्मि व्यसनीकृतः ॥ १५ ॥
प्राप्तव्यान्येव प्राप्नोति गन्तव्यान्येव गच्छति ।
लब्धव्यान्येव लभते दुःखानि च सुखानि च ॥
पूर्वे जात्यन्तरे वत्स मा विषादं कुरुष्व ह ॥ १६ ॥
एवमुक्त्वा नृपस्तत्र सुतं राजा महायशाः ।
श्वभ्रं जगाम सुकृतं वासाय पुरुषर्षभ ॥ १७ ॥
एवं प्रविश्यैव नृपस्तदानीं श्वभ्रं महारत्नविभूषितं तत् ।
सम्पादयामास तदा महात्मा शापं द्विजाभ्यां हि रुषाविमुक्तम् ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे चतुःपञ्चाशः सर्गः ॥

## पञ्चपञ्चाशः सर्गः ॥ ५५ ॥

### निमिवसिष्ठयोः परस्परं शापः ॥

एष ते नृगशापस्य विस्तरोऽभिहितो मया ।
यद्यस्ति श्रवणे श्रद्धा शृणुष्वेहापरां कथाम् ॥ १ ॥

एवमुक्तस्तु रामेण सौमित्रिः पुनरब्रवीत् ।
तृप्तिराश्चर्यभूतानां कथानां नास्ति मे नृप ॥ २ ॥

लक्ष्मणेनैवमुक्तस्तु राम इक्ष्वाकुनन्दनः ।
कथां परमधर्मिष्ठां व्याहर्तुमुपचक्रमे ॥ ३ ॥

आसीद्राजा निमिर्नाम इक्ष्वाकूणां महात्मनाम् ।
पुत्रो द्वादशमो वीर्ये धर्मे च परिनिष्ठितः ॥ ४ ॥

स राजा वीर्यसम्पन्नः पुरं देवपुरोपमम् ।
निवेशयामास तदा अभ्याशे गौतमस्य तु ॥ ५ ॥

पुरस्य सुकृतं नाम वैजयन्तमिति श्रुतम् ।
निवेशं यत्र राजर्षिर्निमिश्चक्रे महायशाः ॥ ६ ॥

तस्य बुद्धिः समुत्पन्ना निवेश्य सुमहापुरम् ।
यजेयं दीर्घसत्रेण पितुः प्रह्लादयन्मनः ॥ ७ ॥

ततः पितरमामन्त्र्य इक्ष्वाकुं हि मनोः सुतम् ।
वसिष्ठं वरयामास पूर्वं ब्रह्मर्षिसत्तमम् ॥ ८ ॥

अनन्तरं स राजर्षिर्निमिरिक्ष्वाकुनन्दनः ।
अत्रिमङ्गिरसं चैव भृगुं चैव तपोधनम् ॥ ९ ॥

तमुवाच वसिष्ठस्तु निमिं राजर्षिसत्तमम् ।
वृतोऽहं पूर्वमिन्द्रेणानन्तरं प्रतिपादय ॥ १० ॥

अनन्तरं महाविप्रो गौतमः प्रत्यपूरयत् ।
वसिष्ठोऽपि महातेजा इन्द्रयज्ञमथाकरोत् ॥ ११ ॥

निमिस्तु राजा विप्रांस्तान्समानीय नराधिपः ।
अयजद्धिमवत्पार्श्वे स्वपुरस्य समीपतः ॥
पञ्च वर्षसहस्राणि राजा दीक्षामुपागमत् ॥ १२ ॥

इन्द्रयज्ञावसाने तु वसिष्ठो भगवानृषिः ।
सकाशमागतो राज्ञो होतृं कर्तुमनिन्दितः ॥ १३ ॥

तदन्तरमथापश्यद्धौतमेनाभिपूरितम् ।
कोपेन महताऽऽविष्टो वसिष्ठो ब्रह्मणः सुतः ॥ १४ ॥

स राज्ञो दर्शनाकाङ्क्षी मुहूर्तं समुपाविशत् ।
तस्मिन्नहनि राजर्षिर्निद्रयाऽपहृतो भृशम् ॥ १५ ॥

ततो मन्युर्वसिष्ठस्य प्रादुरासीन्महात्मनः ।
अदर्शनेन राजर्षेर्व्याहर्तुमुपचक्रमे ॥ १६ ॥

यस्मात्त्वमन्यं वृतवान्मामवज्ञाय पार्थिव ।
चेतनेन विनाभूतो देहस्तव भविष्यति ॥ १७ ॥

ततः प्रबुद्धो राजर्षिः श्रुत्वा शापमुदाहृतम् ।
ब्रह्मयोनिमथोवाच संरम्भात्क्रोधमूर्च्छितः ॥ १८ ॥

अजानतः शयानस्य क्रोधेन कलुषीकृतः ।
मुक्तवान्मयि शापार्चिं यमदण्डमिवापरम् ॥ १९ ॥
तस्मात्त्वयापि ब्रह्मर्षे चेतनेन विनाकृतः ।
देहः सुरुचिरप्रख्यो भविष्यति न संशयः ॥ २० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे पञ्चपञ्चाशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 22747 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 2023

## षट्पञ्चाशः सर्गः ॥ ५६ ॥

उर्वशीशापः ॥

रामस्य भाषितं श्रुत्वा लक्ष्मणः परवीरहा ।
उवाच प्राञ्जलिर्वाक्यं राघवं दीप्ततेजसम् ॥ १ ॥
निक्षिप्तदेहौ काकुत्स्थ कथं तौ द्विजपार्थिवौ ।
पुनर्देहेन संयोगं जग्मतुर्देवसंमतौ ॥ २ ॥
लक्ष्मणेनैवमुक्तस्तु रामश्चेक्ष्वाकुनन्दनः ।
प्रत्युवाच महातेजा लक्ष्मणं पुरुषर्षभः ॥ ३ ॥
तौ परस्परशापेन देहावुत्सृज्य धार्मिकौ ।
अभूतां नृपविप्रर्षी वायुभूतौ तपोधनौ ॥ ४ ॥
अशरीरः शरीरस्य कृतेऽन्यस्य महामुनिः ।
वसिष्ठः सुमहातेजा जगाम पितुरन्तिकम् ॥ ५ ॥

सोऽभिवाद्य ततः पादौ देवदेवस्य धर्मवित् ।
पितामहमथोवाच वायुभूत इदं वचः ॥ ६ ॥

भगवन्निमिशापेन विदेहोऽस्मि कृतः प्रभो ।
देहस्यान्यस्य सद्भावे प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ ७ ॥

तमुवाच ततो ब्रह्मा स्वयम्भूरमितप्रभः ।
मित्रावरुणजं तेजः प्रविश त्वं महायशाः ॥ ८ ॥

अयोनिजस्त्वं भविता तत्रापि द्विजसत्तम ।
धर्मेण महता युक्तः पुनरेष्यसि मे वशम् ॥ ९ ॥

एवमुक्तस्तु देवेन चाभिवाद्य प्रदक्षिणम् ।
कृत्वा पितामहं तूर्णं प्रययौ वरुणालयम् ॥ १० ॥

तमेव कालं मित्रोऽपि वरुणत्वमकारयत् ।
क्षीरोदेन सहोपेतः पूज्यमानः सुरोत्तमैः ॥ ११ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु उर्वशी परमाप्सराः ।
यदृच्छया समुद्देशमाययौ सखिभिर्वृता ॥ १२ ॥

तां दृष्ट्वा रूपसम्पन्नां क्रीडन्तीं वरुणालये ।
आविशत्परमो हर्षो वरुणं चोर्वशीकृते ॥ १३ ॥

स तां पद्मपलाशाक्षीं पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ।
वरुणो वरयामास मैथुनायाप्सरोवराम् ॥ १४ ॥

प्रत्युवाच ततः सा तु वरुणं प्राञ्जलिः स्थिता ।
मित्रेणाहं वृता साक्षात्पूर्वमेव सुरेश्वर ॥ १५ ॥

वरुणस्त्वब्रवीद्वाक्यं कन्दर्पशरपीडितः ।
इदं तेजः समुत्सृक्ष्ये कुम्भेऽस्मिन्देवनिर्मिते ॥ १६ ॥
एवमुत्सृज्य सुश्रोणि त्वय्यहं वरवर्णिनि ।
कृतकामो भविष्यामि यदि नेच्छसि सङ्गमम् ॥ १७ ॥
तस्य तल्लोकपालस्य वरुणस्य सुभाषितम् ।
उर्वशी परमप्रीता श्रुत्वा वाक्यमुवाच ह ॥ १८ ॥
काममेतद्भवत्वेवं हृदयं मे त्वयि स्थितम् ।
भावश्चाभ्यधिकस्तुभ्यं देहो मित्रस्य तु प्रभो ॥ १९ ॥
उर्वश्या एवमुक्तस्तु रेतस्तन्महदद्भुतम् ।
ज्वलदग्निशिखाप्रख्यं तस्मिन्कुम्भे ह्यपासृजत् ॥ २० ॥
उर्वशी त्वगमत्तत्र मित्रो वै यत्र देवता ।
तां तु मित्रः सुसंक्रम्य उर्वशीमिदमब्रवीत् ॥ २१ ॥
मया निमन्त्रिता पूर्वं कस्मात्त्वमवसर्जिता ।
पतिमन्यं वृतवती तस्मात्त्वं दुष्टचारिणी ॥ २२ ॥
अनेन दुष्कृतेन त्वं मत्क्रोधकलुषीकृता ।
मनुष्यलोकमास्थाय कञ्चित्कालं निवत्स्यसि ॥ २३ ॥
बुधस्य पुत्रो राजर्षिः काशिराजः पुरूरवाः ।
तमद्य गच्छ दुर्बुद्धे स ते भर्ता भविष्यति ॥ २४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे षट्पञ्चाशः सर्गः ॥

## सप्तपञ्चाशः सर्गः ॥ ५७ ॥

### वसिष्ठस्य मैत्रावरुणित्वेनोत्पत्तिः ॥

तां श्रुत्वा दिव्यसङ्काशां कथामद्भुतदर्शनाम् ।
लक्ष्मणः परमप्रीतो राघवं वाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥

निक्षिप्तदेहौ काकुत्स्थ कथं तौ द्विजपार्थिवौ ।
पुनर्देहेन संयोगं जग्मतुर्देवसंमतौ ॥ २ ॥

तस्य तद्वाक्षितं श्रुत्वा रामः सत्यपराक्रमः ।
तां कथां कथयामास वसिष्ठस्य महात्मनः ॥ ३ ॥

यस्तु कुम्भो रघुश्रेष्ठ तेजःपूर्णो महात्मनोः ।
तस्मिंस्तेजोमयौ विप्रौ सम्भूतावृषिसत्तमौ ॥ ४ ॥

पूर्वं समभवत्तत्र ह्यगस्त्यो भगवानृषिः ।
नाहं सुतस्तवेत्युक्त्वा मित्रं तस्मादपाक्रमत् ॥ ५ ॥

तद्धि तेजस्तु मित्रस्य उर्वश्याः पूर्वमाहितम् ।
तस्मिन्समभवत्कुम्भे तत्तेजो यत्र वारुणम् ॥ ६ ॥

कस्यचित्त्वथ कालस्य मित्रावरुणसम्भवः ।
वसिष्ठस्तेजसा युक्तो जज्ञे चेक्ष्वाकुदैवतम् ॥ ७ ॥

तमिक्ष्वाकुर्महातेजा जातमात्रमनिन्दितम् ।
वव्रे पुरोहितं सौम्य वंशस्यास्य भवाय नः ॥ ८ ॥

एवं त्वपूर्वदेहस्य वसिष्ठस्य महात्मनः ।
कथितो निर्गमः सौम्य निमेः शृणु यथाऽभवत् ॥ ९ ॥

दृष्ट्वा विदेहं राजानमृषयः सर्व एव ते ।
तं ततो योजयामासुर्यागदीक्षां मनीषिणः ॥ १० ॥

तं च देहं नरेन्द्रस्य रक्षन्ति स्म द्विजोत्तमाः ।
गन्धैर्माल्यैश्च वस्त्रैश्च पौरभृत्यसमन्विताः ॥ ११ ॥

ततो यज्ञे समाप्ते तु भृगुस्तत्रेदमब्रवीत् ।
आनयिष्यामि ते चेतस्तुष्टोऽस्मि तव पार्थिव ॥ १२ ॥

सुप्रीताश्च सुराः सर्वे निमेश्चेतस्तथाऽब्रुवन् ।
वरं वरय राजर्षे क्व ते चेतो निरूप्यताम् ॥ १३ ॥

एवमुक्तः सुरैः सर्वैर्निमेश्चेतस्तदाऽब्रवीत् ।
नेत्रेषु सर्वभूतानां वसेयं सुरसत्तमाः ॥ १४ ॥

बाढमित्येव विबुधा निमेश्चेतस्तदाऽब्रुवन् ।
नेत्रेषु सर्वभूतानां वायुभूतश्चरिष्यसि ॥ १५ ॥

त्वत्कृते च निमिष्यन्ति चक्षूंषि पृथिवीपते ।
वायुभूतेन चरता विश्रमार्थं मुहुर्मुहुः ॥ १६ ॥

एवमुक्त्वा तु विबुधाः सर्वे जग्मुर्यथागतम् ।
ऋषयोऽपि महात्मानो निमेर्देहं समाहरन् ॥ १७ ॥

अरणिं तत्र निक्षिप्य मथनं चक्रुरोजसा ।
मन्त्रहोमैर्महात्मानः पुत्रहेतोर्निमेस्तदा ॥ १८ ॥

अरण्यां मथ्यमानायां प्रादुर्भूतो महातपाः ।
मथनान्मिथिरित्याहुर्जननाज्जनकोऽभवत् ॥
यस्माद्विदेहात्सम्भूतो वैदेहस्तु ततः स्मृतः ॥ १९ ॥

एवं विदेहराजश्च जनकः पूर्वकोऽभवत् ।
मिथिर्नाम महातेजास्तेनायं मैथिलोऽभवत् ॥ २० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे सप्तपञ्चाशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 22791 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 2067



अष्टपञ्चाशः सर्गः ॥ ५८ ॥

ययातिचरितम् ॥

एवं ब्रुवति रामे तु लक्ष्मणः परवीरहा ।
प्रत्युवाच महात्मानं ज्वलन्तमिव तेजसा ॥ १ ॥

महदद्भुतमाश्चर्यं विदेहस्य पुरातनम् ।
निवृत्तं राजशार्दूल वसिष्ठस्य निमेः सह ॥ २ ॥

निमिस्तु क्षत्रियः शूरो विशेषेण च दीक्षितः ।
न क्षमां कृतवान्राजा वसिष्ठस्य महात्मनः ॥ ३ ॥

एवमुक्तस्तु तेनायं श्रीमान्क्षत्रियपुङ्गवः ।
उवाच लक्ष्मणं वाक्यं सर्वशास्त्रविशारदम् ॥
रामो रमयतां श्रेष्ठो भ्रातरं दीप्ततेजसम् ॥ ४ ॥

सौमित्रे दुःसहो रोषो यथा क्षान्तो ययातिना ।
सत्त्वं गुणं पुरस्कृत्य तं निबोध समाहितः ॥ ५ ॥

नहुषस्य सुतो राजा ययातिः पौरवर्धनः ।
तस्य भार्याद्वयं सौम्य रूपेणाप्रतिमं भुवि ॥ ६ ॥

एका तु तस्य राजर्षेर्नाहुषस्य पुरस्कृता ।
शर्मिष्ठा नाम दैतेयी दुहिता वृषपर्वणः ॥ ७ ॥

सुता तूशनसः पत्नी ययातेः पुरुषर्षभ ।
न तु सा दयिता राज्ञो देवयानी सुमध्यमा ॥ ८ ॥

तयोः पुत्रौ तु सम्भूतौ रूपवन्तौ समाहितौ ।
शर्मिष्ठाऽजनयत्पूरुं देवयानी यदुं तदा ॥ ९ ॥

पूरुस्तु दयितो राज्ञो गुणैर्मातृकृतेन च ।
ततो दुःखसमाविष्टो यदुर्मातरमब्रवीत् ॥ १० ॥

भार्गवस्य कुले जाता देवस्याक्लिष्टकर्मणः ।
सहसे हृद्गतं दुःखमवमानं च दुःसहम् ॥ ११ ॥

आवां च सहितौ देवि प्रविशाव हुताशनम् ।
राजा तु रमतां सार्धं दैत्यपुत्र्या बहुक्षपाः ॥ १२ ॥

यदि वा सहनीयं ते मामनुज्ञातुमर्हसि ।
क्षम त्वं न क्षमिष्येऽहं मरिष्यामि न संशयः ॥ १३ ॥

पुत्रस्य भाषितं श्रुत्वा परमार्तस्य रोदतः ।
देवयानी तु संक्रुद्धा सस्मार पितरं तदा ॥ १४ ॥

इङ्गितं तदभिज्ञाय दुहितुर्भार्गवस्तदा ।
आगतस्त्वरितं तत्र देवयानी तु यत्र सा ॥ १५ ॥
दृष्ट्वा चाप्रकृतिस्थां तामप्रहृष्टामचेतनाम् ।
पिता दुहितरं वाक्यं किमेतदिति चाब्रवीत् ॥ १६ ॥
पृच्छन्तमसकृत्तं वै भार्गवं दीप्ततेजसम् ।
देवयानी तु संक्रुद्धा पितरं वाक्यमब्रवीत् ॥ १७ ॥
अहमग्निं विषं तीक्ष्णमपो वा मुनिसत्तम ।
भक्षयिष्ये प्रवेक्ष्यामि न तु शक्ष्यामि जीवितुम् ॥ १८ ॥
न मां त्वमवजानीषे दुःखितामवमानिताम् ।
वृक्षस्यावज्ञया ब्रह्मंश्छिद्यन्ते वृक्षजीविनः ॥ १९ ॥
अवज्ञया च राजर्षिः परिभूय च भार्गव ।
मय्यवज्ञां प्रयुङ्क्ते हि न च मां बहु मन्यते ॥ २० ॥
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा कोपेनाभिपरिप्लुतः ।
व्याहर्तुमुपचक्राम भार्गवो नहुषात्मजम् ॥ २१ ॥
यस्मान्मामवजानीषे नाहुष त्वं दुरात्मवान् ।
जरया परया जीर्णः शैथिल्यमुपयास्यसि ॥ २२ ॥
एवमुक्त्वा दुहितरं समाश्वास्य च भार्गवः ।
पुनर्जगाम ब्रह्मर्षिर्भवनं स्वं महायशाः ॥ २३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे अष्टपञ्चाशः सर्गः ॥

## एकोनषष्टितमः सर्गः ॥ ५९ ॥

### पूरोः राज्याभिषेकः ॥

श्रुत्वा तूशनसं क्रुद्धं तदार्तो नहुषात्मजः ।
जरां परमिकां प्राप्य यदुं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥

यतस्त्वमसि धर्मज्ञो मदर्थं प्रतिगृह्यताम् ।
जरां परमिकां पुत्र भोगै रंस्ये महायशाः ॥ २ ॥

न तावत्कृतकृत्योऽस्मि विषयेषु नरर्षभ ।
अनुभूय तथा कामं ततः प्राप्स्याम्यहं जराम् ॥ ३ ॥

यदुस्तद्वचनं श्रुत्वा प्रत्युवाच नरर्षभम् ।
पुत्रस्ते दयितः पूरुः प्रतिगृह्णातु वै जराम् ॥ ४ ॥

बहिष्कृतोऽहमर्थेषु सन्निकर्षाच्च पार्थिव ।
प्रतिगृह्णातु वै राजन्कः सहाश्नाति भोजनम् ॥ ५ ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राजा पूरुमथाब्रवीत् ।
इयं जरा महाबाहो मदर्थं प्रतिगृह्यताम् ॥ ६ ॥

नाहुषेणैवमुक्तस्तु पूरुः प्राञ्जलिरब्रवीत् ।
धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि शासनेऽस्मि तव स्थितः ॥

पूरोर्वचनमाज्ञाय नाहुषः परया मुदा ।
प्रहर्षमतुलं लेभे जरां संक्रामयच्च ताम् ॥ ८ ॥

ततः स राजा तरुणः प्राप्य यज्ञान्सहस्रशः ।
बहुवर्षसहस्राणि पालयामास मेदिनीम् ॥ ९ ॥

अथ दीर्घस्य कालस्य राजा पूरुमथाब्रवीत् ।
आनयस्व जरां पुत्र न्यासं निर्यातयस्व मे ॥ १० ॥

न्यासभूता मया पुत्र त्वयि संक्रामिता जरा ।
तस्मात्प्रतिगृहीष्यामि तां जरां मा व्यथां कृथाः ॥ ११ ॥

प्रीतश्चास्मि महाबाहो शासनस्य प्रतिग्रहात् ।
त्वां चाहमभिषेक्ष्यामि प्रीतियुक्तो नराधिपम् ॥ १२ ॥

एवमुक्त्वा सुतं पूरुं ययातिर्नहुषात्मजः ।
देवयानीसुतं क्रुद्धो राजा वाक्यमुवाच ह ॥ १३ ॥

राक्षसस्त्वं मया जातः क्षत्ररूपो दुरासदः ।
प्रतिहंसि ममाज्ञां यत्प्रजार्थे विफलो भव ॥ १४ ॥

पितरं गुरुभूतं मां यस्मात्त्वमवमन्यसे ।
राक्षसान्यातुधानांस्त्वं जनयिष्यसि दारुणान् ॥ १५ ॥

न तु सोमकुलोत्पन्ने वंशे स्थास्यति दुर्मतेः ।
वंशोऽपि भवतस्तुल्यो दुर्विनीतो भविष्यति ॥ १६ ॥

तमेवमुक्त्वा राजर्षिः पूरुं राज्यविवर्धनम् ।
अभिषेकेण सम्पूज्य आश्रमं प्रविवेश ह ॥ १७ ॥

ततः कालेन महता दिष्टान्तमुपजग्मिवान् ।
त्रिदिवं सङ्गतो राजा ययातिर्नहुषात्मजः ॥ १८ ॥

पूरुश्चकार तद्राज्यं धर्मेण महता वृतः ।
प्रतिष्ठाने पुरवरे काशिराज्ये महायशाः ॥ १९ ॥

यदुस्तु जनयामास यातुधानान्सहस्रशः ।
पुरे क्रौञ्चवने दुर्गे राजवंशबहिष्कृतः ॥ २० ॥

एष तूशनसा मुक्तः शापोत्सर्गो ययातिना ।
धारितः क्षत्रधर्मेण यं निमिश्च न चक्षमे ॥ २१ ॥

एतत्ते सर्वमाख्यातं दर्शनं सर्वकारिणाम् ।
अनुवर्तामहे सौम्य दोषो न स्याद्यथा नृगे ॥ २२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे एकोनषष्टितमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 22836 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 2112



षष्टितमः सर्गः ॥ ६० ॥

महर्षिसमागमः ॥

तयोः संवदतोरेवं रामलक्ष्मणयोस्तदा ।
वासन्तिकी निशा प्राप्ता न शीता न च घर्मदा ॥ १ ॥

ततः प्रभाते विमले कृत्वा पौर्वाह्णिकीं क्रियाम् ।
अभिचक्राम काकुत्स्थो दर्शनं पौरकार्यवित् ॥ २ ॥

ततः सुमन्त्रस्त्वागम्य राघवं वाक्यमब्रवीत् ।
एते निवारिता राजन्द्वारि तिष्ठन्ति तापसाः ॥ ३ ॥

भार्गवच्यवनं चैव पुरस्कृत्य महर्षयः ।
दर्शनं ते महाराज्ञश्चोदयन्ति कृतत्वराः ॥
प्रीयमाणा नरव्याघ्र यमुनातीरवासिनः ॥ ४ ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा रामः प्रोवाच धर्मवित् ।
प्रवेश्यन्तां महाभागा भार्गवप्रमुखा द्विजाः ॥ ५ ॥

राज्ञस्त्वाज्ञां पुरस्कृत्य द्वाःस्थो मूर्ध्नि कृताञ्जलिः ।
प्रवेशयामास तदा तापसान्मुदुरासदान् ॥ ६ ॥

शतं समधिकं तत्र दीप्यमानं स्वतेजसा ।
प्रविष्टं राजभवनं तापसानां महात्मनाम् ॥ ७ ॥

ते द्विजाः पूर्णकलशैः सर्वतीर्थाम्बुसत्कृतैः ।
गृहीत्वा फलमूलं च रामस्याभ्याहरन्बहु ॥ ८ ॥

प्रतिगृह्य तु तत्सर्वं रामः प्रीतिपुरस्कृतः ।
तीर्थोदकानि सर्वाणि फलानि विविधानि च ॥ ९ ॥

उवाच च महाबाहुः सर्वानेव महामुनीन् ।
इमान्यासनमुख्यानि यथार्हमुपविश्यताम् ॥ १० ॥

रामस्य भाषितं श्रुत्वा सर्व एव महर्षयः ।
बृसीषु रुचिराख्यासु निषेदुः काञ्चनीषु ते ॥ ११ ॥

उपविष्टानृषींस्तत्र दृष्ट्वा परपुरञ्जयः ।
प्रयतः प्राञ्जलिर्भूत्वा राघवो वाक्यमब्रवीत् ॥ १२ ॥

किमागमनकार्यं वः किं करोमि समाहितः ।
आज्ञाप्योऽहं महर्षीणां सर्वकामकरः सुखम् ॥ १३ ॥

इदं राज्यं च सकलं जीवितं च हृदि स्थितम् ।
सर्वमेतद्द्विजार्थं मे सत्यमेतद्ब्रवीमि वः ॥ १४ ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा साधुकारो महानभूत् ।
ऋषीणामुग्रतपसां यमुनातीरवासिनाम् ॥ १५ ॥

ऊचुश्च ते महात्मानो हर्षेण महताऽऽवृताः ।
उपपन्नं नरश्रेष्ठ तवैव भुवि नान्यतः ॥ १६ ॥

बहवः पार्थिवा राजन्नतिक्रान्ता महाबलाः ।
कार्यस्य गौरवं मत्वा प्रतिज्ञां नाभ्यरोचयन् ॥ १७ ॥

त्वया पुनर्ब्राह्मणगौरवादियं
कृता प्रतिज्ञा ह्यनवेक्ष्य कारणम् ।
ततश्च कर्ता ह्यसि नात्र संशयो
महाभयात्त्रातुमृषींस्त्वमर्हसि ॥ १८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे षष्टितमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 22854 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 2130

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे अष्टाविंशेऽह्नि वर्तमानकथाप्रसङ्गः ॥



[पुरा कुशलवाभ्यां श्रीरामसन्निधावश्वमेधयज्ञवाटे
द्वात्रिंशति दिनेषु गीते श्रीमद्रामायणे एकोनत्रिंशेऽह्नि
उत्तरकाण्डे एकषष्टितमसर्गमारभ्य अशीतितमसर्गपर्यन्तं
(22855—23334 श्लोकाः) गीतम्।
तस्मिन् दिने गीताः श्लोकाः 480]

## एकषष्टितमः सर्गः ॥ ६१ ॥

### लवणपीडानिवेदनम् ॥

एवं ब्रुवद्भिर्ऋषिभिः काकुत्स्थो वाक्यमब्रवीत् ।
किं कार्यं ब्रूत मुनयो भयं तावदपैतु वः ॥ १ ॥

तथा ब्रुवति काकुत्स्थे भार्गवो वाक्यमब्रवीत् ।
भयानां शृणु यन्मूलं देशस्य च नरेश्वर ॥ २ ॥

पूर्वं कृतयुगे राजन्दैत्यः सुमहाबलः ।
लोलापुत्रोऽभवज्ज्येष्ठो मधुर्नाम महासुरः ॥ ३ ॥

ब्रह्मण्यश्च शरण्यश्च बुद्ध्या च परिनिष्ठितः ।
सुरैश्च परमोदारैः प्रीतिस्तस्यातुलाऽभवत् ॥ ४ ॥

स मधुर्वीर्यसम्पन्नो धर्मे च सुसमाहितः ।
बहुमानाच्च रुद्रेण दत्तस्तस्याद्भुतो वरः ॥ ५ ॥

शूलं शूलाद्विनिष्कृष्य महावीर्यं महाप्रभम् ।
ददौ महात्मा सुप्रीतो वाक्यं चैतदुवाच ह ॥ ६ ॥

त्वयाऽयमतुलो धर्मो [illegible]ः शुभः ।
प्रीत्या परमया युक्तो ददाम्यायुधमुत्तमम् ॥ ७ ॥

यावत्सुरैश्च विप्रैश्च न विरुध्येर्महासुर ।
तावच्छूलं तवेदं स्यादन्यथा नाशमेष्यति ॥ ८ ॥

यश्च त्वामभियुञ्जीत युद्धाय विगतज्वरः ।
तं शूलो भस्मसात्कृत्वा पुनरेष्यति ते करम् ॥ ९ ॥

एवं रुद्राद्वरं लब्ध्वा भूय एव महासुरः ।
प्रणिपत्य महादेवं वाक्यमेतदुवाच ह ॥ १० ॥

भगवन्मम वंशस्य शूलमेतदनुत्तमम् ।
भवेत्तु सततं देव सुराणामीश्वरो ह्यसि ॥ ११ ॥

तं ब्रुवाणं मधुं देवः सर्वभूतपतिः शिवः ।
प्रत्युवाच महातेजा नैतदेवं भविष्यति ॥ १२ ॥

मा भूत्ते विफला वाणी मत्प्रसादकृता शुभा ।
भवतः पुत्रमेकं तु शूलमेतद्व्रजिष्यते ॥ १३ ॥

यावत्करस्थः शूलोऽयं भविष्यति सुतस्य ते ।
अवध्यः सर्वभूतानां शूलहस्तो भविष्यति ॥ १४ ॥

एवं मधुर्वरं लब्ध्वा देवात्सुमहदद्भुतम् ।
भवनं सोऽसुरश्रेष्ठः कारयामास सुप्रभम् ॥ १५ ॥

तस्य पत्नी महाभागा प्रिया कुम्भीनसीति या ।
तस्याः पुत्रो महावीर्यो लवणो नाम दारुणः ॥
बाल्यात्प्रभृति दुष्टात्मा पापान्येव समाचरत् ॥ १६ ॥

तं पुत्रं दुर्विनीतं तु दृष्ट्वा दुःखसमन्वितः ।
मधुः स शोकमापेदे न चैनं किञ्चिदब्रवीत् ॥ १७ ॥

स विहाय त्विमं लोकं प्रविष्टो वरुणालयम् ।
शूलं निवेश्य लवणे वरं तस्मै न्यवेदयत् ॥ १८ ॥

स प्रभावेन शूलस्य दौरात्म्येनात्मनस्तथा ।
सन्तापयति लोकांस्त्रीन्विशेषेण च तापसान् ॥ १९ ॥

एवंप्रभावो लवणः शूलं चैव तथाविधम् ।
श्रुत्वा प्रमाणं काकुत्स्थ त्वं हि नः परमा गतिः ॥ २० ॥

बहवः पार्थिवा राम भयार्तैर्ऋषिभिः पुरा ।
अभयं याचिता वीर त्रातारं न च विद्महे ॥ २१ ॥

ते वयं रावणं श्रुत्वा हतं सबलवाहनम् ।
त्रातारं विद्महे तात नान्यं भुवि नराधिपम् ॥ २२ ॥'

तत्परित्रातुमिच्छामो लवणाद्भयपीडितान् ॥ २३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे एकषष्टितमः सर्गः ॥

## द्विषष्टितमः सर्गः ॥ ६२ ॥

### लवणवधार्थं शत्रुघ्नप्रेषणम् ॥

तथोक्ते तापसीत्रामः प्रत्युवाच कृताञ्जलिः ।
किमाहारः किमाचारो लवणः क्व च वर्तते ॥ १ ॥

राघवस्य वचः श्रुत्वा ऋषयः सर्व एव ते ।
ततो निवेदयामासुर्लवणो वर्तते यथा ॥ २ ॥

आहारः सर्वसत्त्वानि विशेषेण च तापसाः ।
आचारो रौद्रता नित्यं वासो मधुवने तथा ॥ ३ ॥

हत्वा बहुसहस्राणि सिंहव्याघ्रमृगद्विपान् ।
मानुषांश्चैव कुरुते नित्यमाहारमाह्निकम् ॥ ४ ॥

ततोऽन्तराणि सत्त्वानि खादते स महाबलः ।
संहारे समनुप्राप्ते व्यादितास्य इवान्तकः ॥ ५ ॥

शूलहस्तो रिपून्सर्वान्निर्दहत्येष दुर्मतिः ॥ ६ ॥

तच्छ्रुत्वा राघवो वाक्यमुवाच स महामुनीन् ।
घातयिष्यामि तद्रक्षो ह्यपगच्छतु वो भयम् ॥ ७ ॥

प्रतिज्ञाय तथा तेषां मुनीनामुग्रतेजसाम् ।
स भ्रातॄन्सहितान्सर्वानुवाच रघुनन्दनः ॥ ८ ॥

को हन्ता लवणं वीरः कस्यांशः स विधीयताम् ।
भरतस्य महाबाहोः शत्रुघ्नस्य च धीमतः ॥ ९ ॥

राघवेणैवमुक्तस्तु भरतो वाक्यमब्रवीत् ।
अहमेनं वधिष्यामि ममांशः स विधीयताम् ॥ १० ॥

भरतस्य वचः श्रुत्वा धैर्यशौर्यसमन्वितम् ।
लक्ष्मणावरजस्तस्थौ हित्वा सौवर्णमासनम् ॥ ११ ॥

शत्रुघ्नस्त्वब्रवीद्वाक्यं प्रणिपत्य नराधिपम् ।
कृतकर्मा महाबाहुर्मध्यमो रघुनन्दनः ॥ १२ ॥

आर्येण हि पुरा शून्या त्वयोध्या रक्षिता पुरी ।
सन्तापं हृदये कृत्वा आर्यस्यागमनं प्रति ॥ १३ ॥

दुःखानि च बहूनीह ह्यनुभूतानि पार्थिव ।
शयानो दुःखशय्यासु नन्दिग्रामे महामनाः ॥ १४ ॥

फलमूलाशनो भूत्वा जटी चीरधरस्तथा ।
अनुभूयेदृशं दुःखमेष राघवनन्दनः ॥
प्रेष्ये मयि स्थिते राजन्न भूयः क्लेशमाप्नुयात् ॥ १५ ॥

तथा ब्रुवति शत्रुघ्ने राघवः पुनरब्रवीत् ।
एवं भवतु काकुत्स्थ क्रियतां मम शासनम् ॥ १६ ॥

राज्ये त्वामभिषेक्ष्यामि मधोस्तु नगरे शुभे ।
निवेशय महाबाहो भरतं यद्यवेक्षसे ॥ १७ ॥

शूरस्त्वं कृतविद्यश्च समर्थश्च निवेशने ।
नगरं यमुनाजुष्टं तथा जनपदाञ्च्छुभान् ॥ १८ ॥

यो हि वंशं समुत्पाट्य पार्थिवस्य पुनः क्षये ।
न विधत्ते नृपं तत्र नरकं स हि गच्छति ॥ १९ ॥

स त्वं हत्वा मधुसुतं लवणं पापनिश्चयम् ।
राज्यं प्रशाधि धर्मेण वाक्यं मे यद्यवेक्षसे ॥ २० ॥

उत्तरं च न वक्तव्यं शूर वाक्यान्तरे मम ।
बालेन पूर्वजस्याज्ञा कर्तव्या नात्र संशयः ॥ २१ ॥

अभिषेकं च काकुत्स्थ प्रतीच्छस्व मयोद्यतम् ।
वसिष्ठप्रमुखैर्विप्रैर्विधिमन्त्रपुरस्कृतम् ॥ २२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे द्विषष्टितमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 22899 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 2175

## द्विषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥

शत्रुघ्नाभिषेकः दिव्यास्त्रदानं च ॥

एवमुक्तस्तु रामेण परां व्रीडामुपागमत् ।
शत्रुघ्नो वीर्यसम्पन्नो मन्दं मन्दमुवाच ह ॥ १ ॥

अधर्मं विद्म काकुत्स्थ ह्यस्मिन्नर्थे नरेश्वर ।
कथं तिष्ठत्सु ज्येष्ठेषु कनीयानभिषिच्यते ॥ २ ॥

अवश्यं करणीयं च शासनं पुरुषर्षभ ।
तव चैव महाभाग शासनं दुरतिक्रमम् ॥ ३ ॥

त्वत्तो मया श्रुतं वीर श्रुतिभ्यश्च मया श्रुतम् ।
नोत्तरं हि मया वाच्यं मध्यमे प्रतिजानति ॥ ४ ॥

व्याहृतं दुर्वचो घोरं हन्तास्मि लवणं मृधे ।
तस्येयं मे दुरुक्तस्य दुर्गतिः पुरुषर्षभ ॥ ५ ॥

उत्तरं हि न वक्तव्यं ज्येष्ठेनाभिहिते पुनः ।
अधर्मसहितं चैव परलोकविवर्जितम् ॥ ६ ॥

सोऽहं द्वितीयं काकुत्स्थ न वक्ष्यामि तवोत्तरम् ।
मा द्वितीयेन दण्डो वै निपतेन्मयि मानद ॥ ७ ॥

कामकारो ह्यहं राजंस्तवास्मि पुरुषर्षभ ।
अधर्मं जहि काकुत्स्थ मत्कृते रघुनन्दन ॥ ८ ॥

एवमुक्तस्तु शूरेण शत्रुघ्नेन महात्मना ।
उवाच रामः संहृष्टो भरतं लक्ष्मणं तथा ॥ ९ ॥

सम्भारानभिषेकस्य आनयध्वं समाहिताः ।
अद्यैव पुरुषव्याघ्रमभिषेक्ष्यामि राघवम् ॥ १० ॥

पुरोहितं च काकुत्स्थं नैगमानृत्विजस्तथा ।
मन्त्रिणश्चैव तान्सर्वानानयध्वं ममाज्ञया ॥ ११ ॥

राज्ञः शासनमाज्ञाय तथाऽकुर्वन्महारथाः ॥ १२ ॥

अभिषेकसमारम्भं पुरस्कृत्य पुरोधसम् ।
प्रविष्टा राजभवनं राजानो ब्राह्मणास्तथा ॥ १३ ॥

तथाऽभिषेको ववृधे शत्रुघ्नस्य महात्मनः ।
सम्प्रहर्षकरः श्रीमान्राघवस्य पुरस्य च ॥ १४ ॥

अभिषिक्तस्तु शत्रुघ्नो बभौ चादित्यसन्निभः ।
अभिषिक्तः पुरा स्कन्दः सेन्द्रैरिव मरुद्गणैः ॥ १५ ॥

अभिषिक्ते तु शत्रुघ्ने रामेणाक्लिष्टकर्मणा ।
पौराः प्रमुदिताश्वासन्ब्राह्मणाश्च बहुश्रुताः ॥ १६ ॥

कौसल्या च सुमित्रा च मङ्गलं कैकयी तथा ।
चक्रुस्ता राजभवने याश्चान्या राजयोषितः ॥ १७ ॥

ऋषयश्च महात्मानो यमुनातीरवासिनः ।
हतं लवणमाशंसुः शत्रुघ्नस्याभिषेचनात् ॥ १८ ॥

ततोऽभिषिक्तं शत्रुघ्नमङ्कमारोप्य राघवः ।
उवाच मधुरां वाणीं तेजस्तस्याभिपूरयन् ॥ १९ ॥

अयं शरस्त्वमोघस्ते दिव्यः परपुरञ्जयः ॥ २० ॥

अनेन लवणं सौम्य हन्तासि रघुनन्दन ॥ २१ ॥

सृष्टः शरोऽयं काकुत्स्थ यदा शेते महार्णवे ।
स्वयम्भूरजितो देवो यं नापश्यन्सुरासुराः ॥
अदृश्यः सर्वभूतानां तेनायं तु शरोत्तमः ॥ २२ ॥

सृष्टः क्रोधाभिभूतेन विनाशार्थं दुरात्मनोः ।
मधुकैटभयोर्वीर विघाते वर्तमानयोः ॥
स्रष्टुकामेन लोकांस्त्रीस्तौ चानेन हतौ युधि ॥ २३ ॥

तौ हत्वा जनभोगार्थं कैटभं तु मधुं तथा ।
अनेन शरमुख्येन ततो लोकांश्चकार सः ॥ २४ ॥
नायं मया शरः पूर्वं रावणस्य वधार्थिना ।
मुक्तः शत्रुघ्न भूतानां महांस्त्रासो भवेदिति ॥ २५ ॥
यच्च तस्य महच्छूलं त्र्यम्बकेन महात्मना ।
दत्तं शत्रुविनाशाय मधोरायुधमुत्तमम् ॥ २६ ॥
स तं निक्षिप्य भवने पूज्यमानं पुनः पुनः ।
दिशः सर्वाः समासाद्य प्राप्नोत्याहारमुत्तमम् ॥ २७ ॥
यदा तु युद्धमाकाङ्क्षन्कश्चिदेनं समाह्वयेत् ।
तदा शूलं गृहीत्वा तं भस्म कुर्यात्स राक्षसः ॥ २८ ॥
स त्वं पुरुषशार्दूल तमायुधविनाकृतम् ।
अप्रविष्टं पुरं पूर्वं द्वारि तिष्ठ धृतायुधः ॥ २९ ॥
अप्रविष्टं च भवनं युद्धाय पुरुषर्षभ ।
आह्वयेथा महाबाहो ततो हन्तासि राक्षसम् ॥ ३० ॥
अन्यथा क्रियमाणे तु अवध्यः स भविष्यति ।
यदि त्वेवं कृते वीर विनाशमुपयास्यति ॥ ३१ ॥
एतत्ते सर्वमाख्यातं शूलस्य च विपर्ययः ।
श्रीमतः शितिकण्ठस्य कृत्यं हि दुरतिक्रमम् ॥ ३२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे त्रिषष्टितमः सर्गः ॥

## चतुःषष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥

### शत्रुघ्नप्रस्थानम् ॥

एवमुक्त्वा च काकुत्स्थं प्रशस्य च पुनः पुनः ।
पुनरेवापरं वाक्यमुवाच रघुनन्दनः ॥ १ ॥

इमान्यश्वसहस्राणि चत्वारि पुरुषर्षभ ।
रथानां द्वे सहस्रे च गजानां शतमुत्तमम् ॥ २ ॥

अन्तरे पण्यवीथ्यश्च नानापण्योपशोभिताः ।
अनुगच्छन्तु काकुत्स्थं तथैव नटनर्तकाः ॥ ३ ॥

हिरण्यस्य सुवर्णस्य नियुतं पुरुषर्षभ ।
आदाय गच्छ शत्रुघ्न पर्याप्तधनवाहनः ॥ ४ ॥

बलं च सुभृतं वीर हृष्टपुष्टमनुद्धतम् ।
सम्भाषासम्प्रदानेन रञ्जयस्व नरोत्तम ॥ ५ ॥

न ह्यर्थास्तत्र तिष्ठन्ति न दारा न च बान्धवाः ।
सुप्रीतो भृत्यवर्गश्च यत्र तिष्ठति राघव ॥ ६ ॥

ततो हृष्टजनाकीर्णां प्रस्थाप्य महतीं चमूम् ।
एक एव धनुष्पाणिर्गच्छ त्वं मधुनो वनम् ॥ ७ ॥

यथा त्वां न प्रजानाति गच्छन्तं युद्धकाङ्क्षिणम् ।
लवणस्तु मधोः पुत्रस्तथा गच्छेरशङ्कितम् ॥ ८ ॥

न तस्य मृत्युरन्योऽस्ति कश्चिद्धि पुरुषर्षभ ।
दर्शनं योऽभिगच्छेत स वध्यो लवणेन हि ॥ ९ ॥

स हि ग्रीष्मेऽपयाते तु वर्षारात्र उपागते ।
हन्यास्त्वं लवणं सौम्य स हि कालोऽस्य दुर्मतेः ॥ १० ॥

महर्षींस्तु पुरस्कृत्य प्रयान्तु तव सैनिकाः ।
यथा ग्रीष्मावशेषेण तरेयुर्जाह्नवीजलम् ॥ ११ ॥

तत्र स्थाप्य बलं सर्वं नदीतीरे समाहितः ।
अग्रतो धनुषा सार्धं गच्छ त्वं लघुविक्रमः ॥ १२ ॥

एवमुक्तस्तु रामेण शत्रुघ्नस्तान्महाबलान् ।
सेनाध्यक्ष्यान्समानीय ततो वाक्यमुवाच ह ॥ १३ ॥

एते वो गणिता वासा यत्र तत्र निवत्स्यथ ।
स्थातव्यं चाविरोधेन यथा बाधा न कस्यचित् ॥ १४ ॥

तथा तांस्तु समाज्ञाय प्रस्थाप्य च महद्बलम् ।
कौसल्यां च सुमित्रां च कैकेयीं चाभ्यवादयत् ॥ १५ ॥

रामं प्रदक्षिणीकृत्य शिरसाऽभिप्रणम्य च ।
रामेण चाभ्यनुज्ञातः शत्रुघ्नः शत्रुतापनः ॥ १६ ॥

लक्ष्मणं भरतं चैव प्रणिपत्य कृताञ्जलिः ।
पुरोहितं वसिष्ठं च शत्रुघ्नः प्रयतात्मवान् ॥
प्रदक्षिणमथो कृत्वा निर्जगाम महाबलः ॥ १७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे चतुःषष्टितमः सर्गः ॥

## पञ्चषष्टितमः सर्गः ॥ ६५ ॥

### लौदासचरितम् ॥

प्रस्थाप्य तु बलं सर्वं मासमत्रोषितः पथि ।
एक एवाशु शत्रुघ्नो जगाम त्वरितं तदा ॥ १ ॥

द्विरात्रमन्तरे शूर उष्य राघवनन्दनः ।
वाल्मीकेराश्रमं पुण्यमगच्छद्वासमुत्तमम् ॥ २ ॥

सोऽभिवाद्य महात्मानं वाल्मीकिं मुनिसत्तमम् ।
कृताञ्जलिरथो भूत्वा वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ३ ॥

भगवन्वस्तुमिच्छामि गुरोः कृत्यादिहागतः ।
श्वः प्रभाते गमिष्यामि प्रतीचीं वारुणीं दिशम् ॥ ४ ॥

शत्रुघ्नस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य मुनिपुङ्गवः ।
प्रत्युवाच महात्मानं स्वागतं ते महायशः ॥ ५ ॥

स्वमाश्रममिदं सौम्य राघवाणां कुलस्य हि ।
आसनं पाद्यमर्घ्यं च निर्विशङ्कं प्रतीच्छ मे ॥ ६ ॥

प्रतिगृह्य तदा पूजां फलमूलं च भोजनम् ।
भक्षयामास काकुत्स्थस्तृप्तिं च परमां गतः ॥ ७ ॥

स भुक्त्वा फलमूलं च महर्षिं तमुवाच ह ।
इयं यज्ञविभूतिस्ते कस्याश्रमसमीपतः ॥ ८ ॥

तत्तस्य भाषितं श्रुत्वा वाल्मीकिर्वाक्यमब्रवीत् ।
शत्रुघ्न शृणु यस्येदं बभूवायतनं पुरा ॥ ९ ॥

युष्माकं पूर्वको राजा सुदासस्तस्य भूपतेः ।
पुत्रो वीरसहो नाम वीर्यवानतिधार्मिकः ॥ १० ॥

स बाल एव सौदासो मृगयामुपचक्रमे ।
चञ्चूर्यमाणं ददृशे स शूरो राक्षसद्वयम् ॥ ११ ॥

शार्दूलरूपिणौ घोरौ मृगान्बहुसहस्रशः ।
भक्षमाणावसन्तुष्टौ पर्याप्तिं नैव जग्मतुः ॥ १२ ॥

स तु तौ राक्षसौ दृष्ट्वा निर्मृगं च वनं कृतम् ।
क्रोधेन महताऽऽविष्टो जघानैकं महेषुणा ॥ १३ ॥

विनिपात्य तमेकं तु सौदासः पुरुषर्षभ ।
विज्वरो विगतामर्षो हतं रक्षो ह्युदैक्षत ॥ १४ ॥

निरीक्षमाणं तं दृष्ट्वा सहायं तस्य रक्षसः ।
सन्तापमकरोद्घोरं सौदासं चेदमब्रवीत् ॥ १५ ॥

यस्मादनपराधं त्वं सहायं मम जघ्निवान् ।
तस्मात्त्वापि पापिष्ठ प्रदास्यामि प्रतिक्रियाम् ॥ १६ ॥

एवमुक्त्वा तु तद्रक्षस्तत्रैवान्तरधीयत ।
कालपर्याययोगेन राजा मित्रसहोऽभवत् ॥ १७ ॥

राजा तु यजते यज्ञमस्याश्रमसमीपतः ।
अश्वमेधं महायज्ञं तं वसिष्ठोऽभ्यपालयत् ॥ १८ ॥

तत्र यज्ञो महानासीद्बहुवर्षगणायुतः ।
समृद्धः परया लक्ष्म्या देवयज्ञसमोऽभवत् ॥ १९ ॥

अथावसाने यज्ञस्य पूर्ववैरमनुस्मरन् ।
वसिष्ठरूपी राजानमिति होवाच राक्षसः ॥ २० ॥

अस्य यज्ञस्य जातोऽन्तो सामिषं भोजनं मम ।
दीयतामिह शीघ्रं वै नात्र कार्या विचारणा ॥ २१ ॥

तच्छ्रुत्वा व्याहृतं वाक्यं रक्षसा ब्रह्मरूपिणा ।
भक्ष्यसंस्कारकुशलमुवाच पृथिवीपतिः ॥ २२ ॥

हविष्यं सामिषं स्वादु यथा भवति भोजनम् ।
तथा कुरुष्व शीघ्रं वै परितुष्येद्यथा गुरुः ॥ २३ ॥

शासनात्पार्थिवेन्द्रस्य सूदः संभ्रान्तमानसः ।
स राक्षसः पुनस्तत्र सूदवेषमथाकरोत् ॥ २४ ॥

स मानुषमथो मांसं पार्थिवाय न्यवेदयत् ।
इदं स्वादु हविष्यं च सामिषं चान्नमाहृतम् ॥ २५ ॥

स भोजनं वसिष्ठाय पत्न्या सार्धमुपाहरत् ।
मदयन्त्या नरव्याघ्र सामिषं रक्षसा हृतम् ॥ २६ ॥

ज्ञात्वा तदामिषं विप्रो मानुषं भोजनागतम् ।
क्रोधेन महताऽऽविष्टो व्याहर्तुमुपचक्रमे ॥ २७ ॥

यस्मात्त्वं भोजनं राजन्ममैतदातुमिच्छसि ।
तस्माद्देऽचरेतस्ते भविष्यति न संशयः ॥ २८ ॥

स राजा सह पत्न्या वै प्रणिपत्य मुहुर्मुहुः ।
पुनर्वसिष्ठं प्रोवाच यदुक्तं ब्रह्मरूपिणा ॥ २९ ॥

तच्छ्रुत्वा पार्थिवेन्द्रस्य रक्षसा विकृतं च तत् ।
पुनः प्रोवाच राजानं वसिष्ठः पुरुषर्षभम् ॥ ३० ॥

मया रोषपरीतेन यदिदं व्याहृतं वचः ।
नैतच्छक्यं वृथा कर्तुं प्रदास्यामि च ते वरम् ॥ ३१ ॥

कालो द्वादश वर्षाणि शापस्यान्तो भविष्यति ।
मत्प्रसादाच्च राजेन्द्र व्यतीतं न स्मरिष्यसि ॥ ३२ ॥

एवं स राजा तं शापमुपभुज्यारिसूदनः ।
प्रतिलेभे पुना राज्यं प्रजाश्चैवान्वपालयत् ॥ ३३ ॥

तस्य कल्माषपादस्य यज्ञस्यायतनं शुभम् ।
आश्रमस्य समीपेऽस्य यन्मां पृच्छसि राघव ॥ ३४ ॥

तस्य तां पार्थिवेन्द्रस्य कथां श्रुत्वा सुदारुणाम् ।
विवेश पर्णशालायां महर्षिमभिवाद्य च ॥ ३५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे पञ्चषष्टितमः सर्गः ॥





## षट्षष्टितमः सर्गः ॥ ६६ ॥

### कुशलवोत्पत्तिः ॥

यामेव रात्रिं शत्रुघ्नः पर्णशालामुपाविशत् ।
तामेव रात्रिं सीताऽपि प्रसूता दारकद्वयम् ॥ १ ॥

ततोऽर्धरात्रसमये बालका मुनिदारकाः ।
वाल्मीकेः प्रियमाचख्युः सीतायाः प्रसवं शुभम् ॥ २ ॥

भगवन्नामपत्नी सा प्रसूता दारकद्वयम् ।
ततो रक्षां महातेजः कुरु भूतविनाशिनीम् ॥ ३ ॥

तेषां तद्वचन श्रुत्वा महर्षिः समुपागमत् ।
जगाम तत्र हृष्टात्मा ददर्श च कुमारकौ ॥
भूतघ्नीं चाकरोत्ताभ्यां रक्षां रक्षोविनाशिनीम् ॥ ४ ॥

कुशमुष्टिमुपादाय लवं चैव तु स द्विजः ।
वाल्मीकिः प्रददौ ताभ्यां रक्षां भूतविनाशिनीम् ॥ ५ ॥

यस्तयोः पूर्वजो जातः स कुशैर्मन्त्रसत्कृतैः ।
निर्मार्जनीयस्तु तदा कुश इत्यस्य नाम तत् ॥ ६ ॥

यश्चावरो भवेत्ताभ्यां लवेन स समाहितः ।
निर्मार्जनीयो वृद्धाभिर्लव इत्येव नामतः ॥ ७ ॥

एवं कुशलवौ नाम्ना तावुभौ यमजातकौ ।
मत्कृताभ्यां च नामभ्यां ख्यातियुक्तौ भविष्यतः ॥ ८ ॥

तां रक्षां जगृहुस्ताश्च मुनिहस्तात्समाहिताः ।
अकुर्वंश्च ततो रक्षां तयोर्विगतकल्मषाः ॥ ९ ॥

तथा तां क्रियमाणां च रक्षां गोत्रं च नाम च ।
सङ्कीर्तनं च रामस्य सीतायाः प्रसवौ शुभौ ॥ १० ॥

अर्धरात्रे तु शत्रुघ्नः शुश्राव सुमहत्प्रियम् ।
पर्णशालां ततो गत्वा मातर्दिष्ट्येति चाब्रवीत् ॥ ११ ॥

तथा तस्य प्रहृष्टस्य शत्रुघ्नस्य महात्मनः ।
व्यतीता वार्षिकी रात्रिः श्रावणी लघुविक्रमा ॥ १२ ॥

प्रभाते सुमहावीर्यः कृत्वा पौर्वाह्णिकीं क्रियाम् ।
मुनिं प्राञ्जलिरामन्त्र्य ययौ पश्चान्मुखः पुनः ॥ १३ ॥

स गत्वा यमुनातीरं सप्तरात्रोषितः पथि ।
ऋषीणां पुण्यकीर्तीनामाश्रमे वासमभ्ययात् ॥ १४ ॥

स तत्र मुनिभिः सार्धं भार्गवप्रमुखैर्नृपः ।
कथाभिरभिरूपाभिर्वासं चक्रे महायशाः ॥ १५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकिये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे षट्षष्टितमः सर्गः ॥

## सप्तषष्टितमः सर्गः ॥ ६७ ॥

### मान्धातृवधः ॥

अथ रात्र्यां प्रवृत्तायां शत्रुघ्नो भृगुनन्दनम् ।
पप्रच्छ च्यवनं विप्रं लवणस्य यथा बलम् ॥ १ ॥

शूलस्य च बलं ब्रह्मन्के च पूर्वं विनाशिताः ।
अनेन शूलमुख्येन द्वन्द्वयुद्धमुपागताः ॥ २ ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा शत्रुघ्नस्य महात्मनः ।
प्रत्युवाच महातेजाश्च्यवनो रघुनन्दनम् ॥ ३ ॥

असङ्ख्येयानि कर्माणि यान्यस्य रघुनन्दन ।
इक्ष्वाकुवंशप्रभवे यद्वृत्तं तच्छृणुष्व मे ॥ ४ ॥

अयोध्यायां पुरा राजा युवनाश्वसुतो बली ।
मान्धातेति स विख्यातस्त्रिषु लोकेषु वीर्यवान् ॥ ५ ॥

स कृत्वा पृथिवीं कृत्स्नां शासने पृथिवीपतिः ।
सुरलोकमितो जेतुमुद्योगमकरोन्नृपः ॥ ६ ॥

इन्द्रस्य च भयं तीव्रं सुराणां च महात्मनाम् ।
मान्धातरि कृतोद्योगे देवलोकजिगीषया ॥ ७ ॥

अर्धासनेन शक्रस्य राज्यार्धेन च पार्थिवः ।
वन्द्यमानः सुरगणैः प्रतिज्ञामधिरोहत ॥ ८ ॥

तस्य पापमभिप्रायं विदित्वा पाकशासनः ।
सान्त्वपूर्वमिदं वाक्यमुवाच युवनाश्वजम् ॥ ९ ॥

राजा त्वं मानुषे लोके न तावत्पुरुषर्षभ ।
अकृत्वा पृथिवीं वश्यां देवराज्यमिहेच्छसि ॥ १० ॥

यदि वीर समग्रा ते मेदिनी निखिला वशे ।
देवराज्यं कुरुष्वेह सभृत्यबलवाहनः ॥ ११ ॥

इन्द्रमेवं ब्रुवाणं तं मान्धाता वाक्यमब्रवीत् ।
क्व मे शक्र प्रतिहतं शासनं पृथिवीतले ॥ १२ ॥

तमुवाच सहस्राक्षो लवणो नाम राक्षसः ।
मधुपुत्रो मधुवने न चाज्ञां कुरुतेऽनघ ॥ १३ ॥

तच्छ्रुत्वा विप्रियं घोरं सहस्राक्षेण भाषितम् ।
व्रीडितोऽवाङ्मुखो राजा व्याहर्तुं न शशाक ह ॥ १४ ॥

आमन्त्र्य तु सहस्राक्षं ह्रिया किञ्चिदवाङ्मुखः ।
पुनरेवागमच्छ्रीमानिमं लोकं नरेश्वरः ॥ १५ ॥

स कृत्वा हृदयेऽमर्षं सभृत्यबलवाहनः ।
आजगाम मधोः पुत्रं वशे कर्तुमरिन्दमः ॥ १६ ॥

स काङ्क्षमाणो लवणं युद्धाय पुरुषर्षभः ।
दूतं सम्प्रेषयामास सकाशं लवणस्य हि ॥ १७ ॥

स गत्वा विप्रियाण्याह बहूनि मधुनः सुतम् ।
वदन्तमेवं तं दूतं भक्षयामास राक्षसः ॥ १८ ॥

चिरायमाणे दूते तु राजा क्रोधसमन्वितः ।
अर्दयामास तद्रक्षः शरवृष्ट्या समन्ततः ॥ १९ ॥

ततः प्रहस्य तद्रक्षः शूलं जग्राह पाणिना ।
वधाय सानुबन्धस्य मुमोचायुधमुत्तमम् ॥ २० ॥

तच्छूलं दीप्यमानं तु सभृत्यबलवाहनम् ।
भस्मीकृत्वा नृपं भूयो लवणस्यागमत्करम् ॥ २१ ॥

एवं स राजा सुमहान्हतः सबलवाहनः ।
शूलस्य तु बलं सौम्य अप्रमेयमनुत्तमम् ॥ २२ ॥

श्वः प्रभाते तु लवणं वधिष्यसि न संशयः ।
अगृहीतायुधं क्षिप्रं ध्रुवो हि विजयस्तव ॥
लोकानां स्वस्ति चैव स्यात्कृते कर्मणि च त्वया ॥ २३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे सप्तषष्टितमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 23021 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 2297



## अष्टषष्टितमः सर्गः ॥ ६८ ॥

लवणशत्रुघ्नविवादः ॥

कथां कथयतां तेषां जयं चाकाङ्क्षतां शुभम् ।
व्यतीता रजनी शीघ्रं शत्रुघ्नस्य महात्मनः ॥ १ ॥

ततः प्रभाते विमले क्रूरकर्मा स राक्षसः ।
निर्गतस्तु पुराद्धीरो भक्ष्याहारप्रचोदितः ॥ २ ॥

एतस्मिन्नन्तरे वीरः शत्रुघ्नो यमुनां नदीम् ।
तीर्त्वा मधुपुरद्वारि धनुष्पाणिरतिष्ठत ॥ ३ ॥

ततोऽर्धदिवसे प्राप्ते कृतकर्मा स राक्षसः ।
आगच्छद्धहुसाहस्रं प्राणिनां भारमुद्वहन् ॥ ४ ॥

ततो ददर्श शत्रुघ्नं स्थितं द्वारि धृतायुधम् ।
तमुवाच ततो रक्षः किमनेन करिष्यसि ॥ ५ ॥

ईदृशानां सहस्राणि सायुधानां नराधम ।
भक्षितानि मया रोषात्कालमाकाङ्क्षसे नु किम् ॥ ६ ॥

आहारश्चाप्यसम्पूर्णो ममायं पुरुषाधम ।
स्वयं प्रविष्टोऽद्य मुखं कथं यास्यसि दुर्मते ॥ ७ ॥

तस्यैवं भाषमाणस्य हसतश्च मुहुर्मुहुः ।
शत्रुघ्नो वीर्यसम्पन्नो रोषादश्रूण्यवासृजत् ॥ ८ ॥

तस्य रोषाभिभूतस्य शत्रुघ्नस्य महात्मनः ।
तेजोमया मरीच्यस्तु सर्वगात्रैर्विनिष्पतन् ॥ ९ ॥

उवाच च सुसंक्रुद्धः शत्रुघ्नस्तं निशाचरम् ।
योद्धुमिच्छामि दुर्बुद्धे द्वन्द्वयुद्धं त्वया सह ॥ १० ॥

पुत्रो दशरथस्याहं भ्राता रामस्य धीमतः ।
शत्रुघ्नो नित्यशत्रुघ्नो वधाकाङ्क्षी तवागतः ॥ ११ ॥

तस्य मे युद्धकामस्य द्वन्द्वयुद्धं प्रदीयताम् ।
शत्रुस्त्वं सर्वभूतानां न मे जीवन्गमिष्यसि ॥ १२ ॥

तस्मिंस्तथा ब्रुवाणे तु राक्षसः प्रहसन्निव ।
प्रत्युवाच नरश्रेष्ठं दिष्ट्या प्राप्तोऽसि दुर्मते ॥ १३ ॥

मम मातृष्वसुर्भ्राता रावणो राक्षसाधिपः ।
हतो रामेण दुर्बुद्धे स्त्रीहेतोः पुरुषाधम ॥ १४ ॥

तच्च सर्वं मया क्षान्तं रावणस्य कुलक्षयम् ।
अवज्ञां पुरतः कृत्वा मया यूयं विशेषतः ॥ १५ ॥

निहताश्च हि मे सर्वे परिभूतास्तृणं यथा ।
भूताश्चैव भविष्याश्च यूयं च पुरुषाधमाः ॥ १६ ॥

तस्य ते युद्धकामस्य युद्धं दास्यामि दुर्मते ।
तिष्ठ त्वं च मुहूर्तं तु यावदायुधमानये ॥
ईप्सितं यादृशं तुभ्यं सज्जये यावदायुधम् ॥ १७ ॥

तमुवाचाथ शत्रुघ्नः क्व मे जीवन्गमिष्यसि ।
शत्रुर्यदृच्छया दृष्टो न मोक्तव्यः कृतात्मना ॥ १८ ॥

यो हि विक्लबया बुद्ध्या प्रसरं शत्रवे ददौ ।
स हतो मन्दबुद्धित्वाद्यथा कापुरुषस्तथा ॥ १९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकिये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे अष्टषष्टितमः सर्गः ॥





## एकोनसप्ततितमः सर्गः ॥ ६९ ॥

### लवणवधः ॥

तच्छ्रुत्वा भाषितं तस्य शत्रुघ्नस्य महात्मनः ।
क्रोधमाहारयत्तीव्रं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ १ ॥

पाणौ पाणिं विनिष्पिष्य दन्तान्कटकटाप्य च ।
लवणो रघुशार्दूलमाह्वयामास चासकृत् ॥ २ ॥

तमाह्वयन्तं सौमित्रिर्लवणं घोरदर्शनम् ।
शत्रुघ्नो देवशत्रुघ्न इदं वचनमब्रवीत् ॥ ३ ॥

न शत्रुघ्नस्तथा जातो यथाऽन्ये निर्जितास्त्वया ।
तदद्य बाणाभिहतो व्रज त्वं यमसादनम् ॥ ४ ॥

ऋषयोऽप्यद्य पापात्मन्मया त्वां निहतं रणे ।
पश्यन्तु विप्रा विद्वांसस्त्रिदशा इव रावणम् ॥ ५ ॥

त्वयि मद्बाणनिर्दग्धे पतितेऽद्य निशाचर ।
पुरे जनपदे चापि क्षेममेव भविष्यति ॥ ६ ॥

अद्य मद्बाहुनिष्क्रान्तः शरो वज्रनिभाननः ।
प्रवेक्ष्यते ते हृदयं पद्ममंशुरिवार्कजः ॥ ७ ॥

एवमुक्तो महावृक्षं लवणः क्रोधमूर्च्छितः ।
शत्रुघ्नोरसि चिक्षेप स च तं शतधाऽच्छिनत् ॥ ८ ॥

तद्दृष्ट्वा विफलं कर्म राक्षसः पुनरेव तु ।
पादपान्सुबहून्गृह्य शत्रुघ्नायासृजद्बली ॥ ९ ॥

शत्रुघ्नश्चापि तेजस्वी वृक्षानापततो बहून् ।
त्रिभिश्चतुर्भिरेकैकं चिच्छेद नतपर्वभिः ॥ १० ॥

ततो बाणमयं वर्षं व्यसृजद्राक्षसोरसि ।
शत्रुघ्नो वीर्यसम्पन्नो विव्यथे न स राक्षसः ॥ ११ ॥

ततः प्रहस्य लवणो वृक्षमुत्पाट्य वीर्यवान् ।
शिरस्यभ्यहनच्छूरं स्रस्ताङ्गः स मुमोह वै ॥ १२ ॥

तस्मिन्निपतिते वीरे हाहाकारो महानभूत् ।
ऋषीणां देवसङ्घानां गन्धर्वाप्सरसां तथा ॥ १३ ॥

तमवज्ञाय तु हतं शत्रुघ्नं भुवि पातितम् ।
रक्षो लब्धान्तरमपि न विवेश स्वमालयम् ॥ १४ ॥

नापि शूलं प्रजग्राह तं दृष्ट्वा भुवि पातितम् ।
ततो हत इति ज्ञात्वा तान्भक्षान्समुदावहत् ॥ १५ ॥

मुहूर्तालब्धसंज्ञस्तु पुनस्तस्थौ धृतायुधः ।
शत्रुघ्नो वै पुरद्वारि ऋषिभिः सम्पूजितः ॥ १६ ॥

ततो दिव्यममोघं तं जग्राह शरमुत्तमम् ।
ज्वलन्तं तेजसा घोरं पूरयन्तं दिशो दश ॥ १७ ॥

वज्राननं वज्रवेगं मेरुमन्दरसन्निभम् ।
नतं पर्वसु सर्वेषु संयुगेष्वपराजितम् ॥ १८ ॥

असृक्चन्दनदिग्धाङ्गं चारुपत्रं पतत्रिणम् ।
दानवेन्द्राचलेन्द्राणामसुराणां च दारणम् ॥ १९ ॥

तं दीप्तमिव कालाग्निं युगान्ते समुपस्थिते ।
दृष्ट्वा सर्वाणि भूतानि परित्रासमुपागमन् ॥ २० ॥

सदेवासुरगन्धर्वं मुनिभिः साप्सरोगणम् ।
जगर्द्धि सर्वमस्वस्थं पितामहमुपस्थितम् ॥ २१ ॥

उवाच देवदेवेशं वरदं प्रपितामहम् ।
कांच्चिल्लोकक्षयो देव सम्प्राप्तो वा युगक्षयः ॥ २२ ॥

नेदृशं दृष्टपूर्वं च न श्रुतं प्रपितामह ।
देवानां भयसम्मोहो लोकानां संक्षयं प्रति ॥ २३ ॥

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा ब्रह्मा लोकपितामहः ।
भयकारणमाचष्ट देवानामभयङ्करः ॥
उवाच मधुरां वाणीं शृणुध्वं सर्वदेवताः ॥ २४ ॥

वधाय लवणस्याजौ शरः शत्रुघ्नधारितः ।
तेजसा तस्य सम्मूढाः सर्वे स्म सुरसत्तमाः ॥ २५ ॥

एष पूर्वस्य देवस्य लोककर्तुः सनातनः ।
शरस्तेजोमयो वत्स येन वै भयमागतम् ॥ २६ ॥

एष वै कैटभस्यार्थे मधुनश्च महाशरः ।
सृष्टो महात्मना तेन वधार्थे दैत्ययोस्तयोः ॥ २७ ॥

एक एव प्रजानाति विष्णुस्तेजोमयं शरम् ।
एषा एव तनुः पूर्वा विष्णोस्तस्य महात्मनः ॥ २८ ॥

इतो गच्छत पश्यध्वं वध्यमानं महात्मना ।
रामानुजेन वीरेण लवणं राक्षसोत्तमम् ॥ २९ ॥

तस्य ते देवदेवस्य निशम्य वचनं सुराः ।
आजग्मुर्यत्र युध्येते शत्रुघ्नलवणावुभौ ॥ ३० ॥

तं शरं दिव्यसङ्काशं शत्रुघ्नकरधारितम् ।
ददृशुः सर्वभूतानि युगान्ताग्निमिवोत्थितम् ॥ ३१ ॥

आकाशमावृतं दृष्ट्वा देवैर्हि रघुनन्दनः ।
सिंहनादं भृशं कृत्वा ददर्श लवणं पुनः ॥ ३२ ॥

आहूतश्च पुनस्तेन शत्रुघ्नेन महात्मना ।
लवणः क्रोधसंयुक्तो युद्धाय समुपस्थितः ॥ ३३ ॥

आकर्णात्स विकृष्याथ तद्धनुर्धन्विनां वरः ।
तं मुमोच महाबाणं लवणस्य महोरसि ॥ ३४ ॥

उरस्तस्य विदीर्याशु प्रविवेश रसातलम् ॥ ३५ ॥

गत्वा रसातलं दिव्यः शरो विबुधपूजितः ।
पुनरेवागमत्तूर्णमिक्ष्वाकुकुलनन्दनम् ॥ ३६ ॥

शत्रुघ्नशरनिर्भिन्नो लवणः स निशाचरः ।
पपात सहसा भूमौ वज्राहत इवाचलः ॥ ३७ ॥

तच्च शूलं महत्तेन हते लवणराक्षसे ।
पश्यतां सर्वदेवानां रुद्रस्य वशमन्वगात् ॥ ३८ ॥

एकेषुपातेन भृशं निपात्य लोकत्रयस्यापि रघुप्रवीरः ।
विनिर्बभावुत्तमचापबाणस्तमः प्रणुद्येव सहस्ररश्मिः ॥

ततो हि देवा ऋषिपन्नगाश्च प्रपूजिरे ह्यप्सरसश्च सर्वाः ।
दिष्ट्या जयो दाशरथेरवाप्तो लोकाश्च सर्वे प्रवदन्ति तुष्टाः ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे एकोनसप्ततितमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 23080 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 2356



## सप्ततितमः सर्गः ॥ ७० ॥

मधुपुर्यां प्रजापालनम् ॥

हते तु लवणे देवाः सेन्द्राः साग्निपुरोगमाः ।
ऊचुः सुमधुरां वाणीं शत्रुघ्नं शत्रुतापनम् ॥ १ ॥

दिष्ट्या ते विजयो वत्स दिष्ट्या लवणराक्षसः ।
हतः पुरुषशार्दूल वरं वरय सुव्रत ॥ २ ॥

वरदास्तु महाबाहो सर्व एव समागताः ।
विजयाकाङ्क्षिणस्तुभ्यममोघं दर्शनं हि नः ॥ ३ ॥

देवानां भाषितं श्रुत्वा शूरो मूर्ध्नि कृताञ्जलिः ।
प्रत्युवाच महाबाहुः शत्रुघ्नः प्रयतात्मवान् ॥ ४ ॥

इयं मधुपुरी रम्या मधुरा देवनिर्मिता ।
निवेशं प्राप्नुयाच्छीघ्रमेष मेऽस्तु वरः परः ॥ ५ ॥

तं देवाः प्रीतमनसो बाढमित्येव राघवम् ।
भविष्यति पुरी रम्या शूरसेना न संशयः ॥ ६ ॥

ते तथोक्त्वा महात्मानो दिवमारुरुहुस्तदा ।
शत्रुघ्नोऽपि महातेजास्तां सेनां समुपानयत् ॥ ७ ॥

सा सेना शीघ्रमागच्छच्छ्रुत्वा शत्रुघ्नशासनम् ।
निवेशनं च शत्रुघ्नः श्रावणेन समारभत् ॥ ८ ॥

सा पुरा दिव्यसङ्काशा वर्षे द्वादशमे शुभे ।
निविष्टा शूरसेनानां विषयश्चाकुतोभयः ॥ ९ ॥

क्षेत्राणि सस्ययुक्तानि काले वर्षति वासवः ।
अरोगवीरपुरुषा शत्रुघ्नभुजपालिता ॥ १० ॥

अर्धचन्द्रप्रतीकाशा यमुनातीरशोभिता ।
शोभिता गृहमुख्यैश्च चत्वरापणवीथिकैः ॥
चातुर्वर्ण्यसमायुक्ता नानावाणिज्यशोभिता ॥ ११ ॥

यच्च तेन पुरा शुभ्रं लवणेन कृतं महत् ।
तच्छोभयति शत्रुघ्नो नानावर्णोपशोभितम् ॥ १२ ॥

आरामैश्च विहारैश्च शोभमानां समन्ततः ।
शोभितां शोभनीयैश्च तथान्यैर्देवमानुषैः ॥ १३ ॥

तां पुरीं दिव्यसङ्काशां नानापण्योपशोभिताम् ।
नानादेशागतैश्चापि वणिग्भिरुपशोभिताम् ॥ १४ ॥

तां समृद्धां समृद्धार्थः शत्रुघ्नो भरतानुजः ।
निरीक्ष्य परमप्रीतः परं हर्षमुपागमत् ॥ १५ ॥

तस्य बुद्धिः समुत्पन्ना निवेश्य मधुरां पुरीम् ।
रामपादौ निरीक्षेऽहं वर्षे द्वादश आगते ॥ १६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे सप्ततितमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 23096 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 2372



एकसप्ततितमः सर्गः ॥ ७१ ॥

वाल्मीकिना शत्रुघ्नप्रशंसनम् ॥

ततो द्वादशमे वर्षे शत्रुघ्नो रामपालिताम् ।
अयोध्यां चकमे गन्तुमल्पभृत्यबलानुगः ॥ १ ॥

ततो मन्त्रिपुरोगांश्च बलमुख्यानिवर्त्य च ।
जगाम हयमुख्यैश्च रथानां च शतेन सः ॥ २ ॥

स गत्वा गणितान्वासान्सप्ताष्टौ रघुनन्दनः ।
वाल्मीक्याश्रममागत्य वासं चक्रे महायशाः ॥ ३ ॥

सोऽभिवाद्य ततः पादौ वाल्मीकेः पुरुषर्षभः ।
पाद्यमर्घ्यं तथाऽऽतिथ्यं जग्राह मुनिहस्ततः ॥ ४ ॥

बहुरूपाः सुमधुराः कथास्तत्र सहस्रशः ।
कथयामास स मुनिः शत्रुघ्नाय महात्मने ॥ ५ ॥

उवाच च मुनिर्वाक्यं लवणस्य वधाश्रितम् ।
सुदुष्करं कृतं कर्म लवणं निघ्नता त्वया ॥ ६ ॥

बहवः पार्थिवाः सौम्य हताः सबलवाहनाः ।
लवणेन महाबाहो युध्यमाना दुरात्मना ॥ ७ ॥

स त्वया निहतः पापो लीलया पुरुषर्षभ ।
जगतश्च भयं तत्र प्रशान्तं तव तेजसा ॥ ८ ॥

रावणस्य वधो घोरो यत्नेन महता कृतः ।
इदं तु सुमहत्कर्म त्वया कृतमयत्नतः ॥ ९ ॥

प्रीतिश्चास्मिन्परा जाता देवानां लवणे हते ।
भूतानां चैव सर्वेषां जगतश्च प्रियं कृतम् ॥ १० ॥

तच्च युद्धं मया दृष्टं यथावत्पुरुषर्षभ ।
सभायां वासवस्याथ उपविष्टेन राघव ॥ ११ ॥

ममापि परमा प्रीतिर्हृदि शत्रुघ्न वर्तते ।
उपाघ्रास्यामि ते मूर्ध्नि स्नेहस्यैषा परा गतिः ॥ १२ ॥

इत्युक्त्वा मूर्ध्नि शत्रुघ्नमुपाघ्राय महामुनिः ।
आतिथ्यमकरोत्तस्य ये च तस्य पदानुगाः ॥ १३ ॥

स भुक्तवान्नरश्रेष्ठो गीतमाधुर्यमुत्तमम् ।
शुश्राव रामचरितं तस्मिन्काले यथाक्रमम् ॥ १४ ॥

तन्त्रीलयसमायुक्तं त्रिस्थानकरणान्वितम् ।
संस्कृतं लक्षणोपेतं समतालसमन्वितम् ॥ १५ ॥

तान्यक्षराणि सत्यानि यथावृत्तानि पूर्वशः ।
श्रुत्वा पुरुषशार्दूलो विसंज्ञो बाष्पलोचनः ॥ १६ ॥
स मुहूर्तमिवासंज्ञो विनिश्चस्य मुहुर्मुहुः ।
तस्मिन्गीते यथावृत्तं वर्तमानमिवाशृणोत् ॥ १७ ॥
पदानुगाश्च ये राज्ञस्तां श्रुत्वा गीतिसम्पदम् ।
अवाङ्मुखाश्च दीनाश्च आश्चर्यमिति चाब्रुवन् ॥ १८ ॥
परस्परं च ये तत्र सैनिकाः सम्बभाषिरे ।
किमिदं क्व च वर्तामः किमेतत्स्वप्नदर्शनम् ॥ १९ ॥
अर्थो यो नः पुरा दृष्टस्तमाश्रमपदे पुनः ।
शृणुमः किमिदं स्वप्नो गीतबद्धमनुत्तमम् ॥ २० ॥
विस्मयं ते परं गत्वा शत्रुघ्नमिदमब्रुवन् ।
साधु पृच्छ नरश्रेष्ठ वाल्मीकिं मुनिपुङ्गवम् ॥ २१ ॥
शत्रुघ्नस्त्वब्रवीत्सर्वान्कौतूहलसमन्वितान् ।
सैनिका न क्षमोऽस्माकं परिप्रष्टुमिहेदृशः ॥ २२ ॥
आश्चर्याणि बहूनीह भवन्त्यस्याश्रमे मुनेः ।
न तु कौतूहलाद्युक्तमन्वेष्टुं तं महामुनिम् ॥ २३ ॥
एवं तद्वाक्यमुक्त्वा च सैनिकान्रघुनन्दनः ।
अभिवाद्य महर्षिं तं स्वं निवेशं ययौ तदा ॥ २४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे एकसप्ततितमः सर्गः ॥

## द्विसप्ततितमः सर्गः ॥ ७२ ॥

### श्रीरामशत्रुघ्नसमागमः ॥

तं शयानं नरव्याघ्रं निद्रा नाभ्यागमत्तदा ।
चिन्तयन्तमनेकार्थं रामगीतमनुत्तमम् ॥ १ ॥

तस्य शब्दं सुमधुरं तन्त्रीलयसमन्वितः ।
श्रुत्वा रात्रिर्जगामाशु शत्रुघ्नस्य महात्मनः ॥ २ ॥

तस्यां निशायां व्युष्टायां कृत्वा पौर्वाह्णिकक्रमम् ।
उवाच प्राञ्जलिर्वाक्यं शत्रुघ्नो मुनिपुङ्गवम् ॥ ३ ॥

भगवन्द्रष्टुमिच्छामि राघवं रघुनन्दनम् ।
त्वयाऽनुज्ञातुमिच्छामि सहैभिः संशितव्रतैः ॥ ४ ॥

इत्येवं वादिनं तं तु शत्रुघ्नं शत्रुतापनम् ।
वाल्मीकिः सम्परिष्वज्य विससर्ज च राघवम् ॥ ५ ॥

सोऽभिवाद्य मुनिश्रेष्ठं रथमारुह्य सुप्रभम् ।
अयोध्यामगमत्तूर्णं राघवोत्सुकदर्शनः ॥ ६ ॥

स प्रविष्टः पुरीं रम्यां श्रीमानिक्ष्वाकुनन्दनः ।
प्रविवेश महाबाहुर्यत्र रामो महाद्युतिः ॥ ७ ॥

सोऽभिवाद्य महात्मानं ज्वलन्तमिव तेजसा ।
उवाच प्राञ्जलिर्वाक्यं रामं सत्यपराक्रमः ॥ ८ ॥

यथाऽऽज्ञप्तं महाराज सर्वं तत्कृतवानहम् ।
हतः स लवणः पापः पुरी चास्य निवेशिता ॥ ९ ॥

द्वादशैते गता वर्षास्त्वां विना रघुनन्दन ।
नोत्सहेयमहं वस्तुं त्वया विरहितो नृप ॥ १० ॥

स मे प्रसादं काकुत्स्थ कुरुष्वामितविक्रम ।
मातृहीनो यथा वत्सो न चिरं प्रवसाम्यहम् ॥ ११ ॥

एवं ब्रुवाणं शत्रुघ्नं परिष्वज्येदमब्रवीत् ।
मा विषादं कृथाः शूर नैतत्क्षत्रियचेष्टितम् ॥ १२ ॥

नावसीदन्ति राजानो विप्रवासेषु राघव ।
प्रजा नः परिपाल्या हि क्षत्रधर्मेण राघव ॥ १३ ॥

काले काले तु मां वीर ह्ययोध्यामवलोकितुम् ।
आगच्छ त्वं नरश्रेष्ठ गन्तासि च पुरं तव ॥ १४ ॥

ममापि त्वं सुदयितः प्राणैरपि न संशयः ।
अवश्यं करणीयं च राज्यस्य परिपालनम् ॥ १५ ॥

तस्मात्त्वं वत्स काकुत्स्थ सप्तरात्रं मया सह ।
ऊर्ध्वं गन्तासि मधुरां सभृत्यबलवाहनः ॥ १६ ॥

रामस्यैतद्वचः श्रुत्वा धर्मयुक्तं मनोगतम् ।
शत्रुघ्नो दीनया वाचा बाढमित्येव चाब्रवीत् ॥ १७ ॥

सप्तरात्रं च काकुत्स्थो राघवस्य यथाज्ञया ।
उष्य तत्र महेष्वासो गमनायोपचक्रमे ॥ १८ ॥

आमन्त्र्य तु महात्मानं रामं सत्यपराक्रमः ।
भरतं लक्ष्मणं चैव महारथमुपारुहत् ॥ १९ ॥

दूरं ताभ्यामनुगतो लक्ष्मणेन महात्मना ।
भरतेन च शत्रुघ्नो जगामाशु पुरं ततः ॥ २० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे द्विसप्ततितमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 23140 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 2416



त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥ ७३ ॥

मृतबालकद्विजविलापः ॥

प्रस्थाप्य तु स शत्रुघ्नं भ्रातृभ्यां सह राघवः ।
प्रमुमोद सुखी राज्यं धर्मेण परिपालयन् ॥ १ ॥

ततः कतिपयाहस्तु वृद्धो जानपदो द्विजः ।
मृतं बालमुपादाय राजद्वारमुपागमत् ॥ २ ॥

रुदन्बहुविधा वाचः स्नेहदुःखसमन्विताः ।
असकृत्पुत्र पुत्रेति वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ३ ॥

किं नु मे दुष्कृतं कर्म पुरा देहान्तरे कृतम् ।
यदहं पुत्रमेकं त्वां पश्यामि निधनं गतम् ॥ ४ ॥

अप्राप्तयौवनं बालं पञ्चवर्षसमन्वितम् ।
अकाले कालमापन्नं मम दुःखाय पुत्रक ॥ ५ ॥

अल्पैरहोभिर्निधनं गमिष्यामि न संशयः ।
अहं च जननी चैव तव शोकेन पुत्रक ॥ ६ ॥

न प्रमाद्यद्भुं भुक्तं न च हिंसां स्मराम्यहः ।
सर्वेषां प्राणिनां पापं कृतं नैव स्मराम्यहम् ॥ ७ ॥

केनाद्य दुष्कृतेनायं बाल एव ममात्मजः ।
अकृत्वा पितृकार्याणि गतो वैवस्वतक्षयम् ॥ ८ ॥

नेदृशं दृष्टपूर्वं मे श्रुतं वा घोरदर्शनम् ।
मृत्युरप्राप्तकालानां रामस्य विषये यथा ॥ ९ ॥

रामस्य दुष्कृतं किञ्चिन्महदस्ति न संशयः ।
यथा हि विषयस्थानां बालानां मृत्युरागतः ॥ १० ॥

न ह्यन्यविषयस्थानां बालानां मृत्युतो भयम् ।
त्वं राजन्निमित्तं बालं मृत्युवशं गतम् ॥ ११ ॥

राजद्वारि मरिष्यामि पत्न्या सार्धमनाथवत् ।
ब्रह्महत्यां ततो राम समुपेत्य सुखी भव ॥ १२ ॥

भ्रातृभिः सहितो राजन्दीर्घमायुरवाप्स्यसि ।
उषिताः स्म सुखं राज्ये तवास्मिन्सुमहाबल ॥ १३ ॥

इदं तु पतितं ह्यस्मात्तव राम वशे स्थिताः ।
कालस्य वशमापन्नाः स्वल्पं हि न हि नः सुखम् ॥

संप्रत्यनाथो विषय इक्ष्वाकूणां महात्मनाम् ।
रामं नाथमिहासाद्य बालान्तकरणं ध्रुवम् ॥ १५ ॥

राजदोषैर्विपद्यन्ते प्रजा ह्यविधिपालिताः ।
असद्वृत्तं तु नृपतावकाले म्रियते जनः ॥ १६ ॥

यद्वा पुरेष्वयुक्तानि जना जनपदेषु च ।
कुर्वते न च रक्षाऽस्ति तदा कालकृतं भयम् ॥ १७ ॥
सुव्यक्तं राजदोषो हि भविष्यति न संशयः ।
पुरे जनपदे चापि ततो बालवधो ह्ययम् ॥ १८ ॥
एवं बहुविधैर्वाक्यैरुपरुध्य मुहुर्मुहुः ।
राजानं दुःखसंतप्तः सुतं तमुपगूहते ॥ १९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 23159 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 2435

## चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥ ७४ ॥

### नारदवाक्यम् ॥

तथा तु करुणं तस्य द्विजस्य परिदेवनम् ।
शुश्राव राघवः सर्वं दुःखशोकसमन्वितम् ॥ १ ॥
स दुःखेन च सन्तप्तो मन्त्रिणस्तानुपाह्वयत् ।
वसिष्ठं वामदेवं च भ्रातरौ सहनैगमान् ॥ २ ॥
ततो द्विजा वसिष्ठेन सार्धमष्टौ प्रवेशिताः ।
राजानं देवसङ्काशं वर्धस्वेति ततोऽब्रुवन् ॥ ३ ॥
मार्कण्डेयोऽथ मौद्गल्यो वामदेवश्च काश्यपः ।
कात्यायनोऽथ जाबालिर्गौतमो नारदस्तथा ॥
एते द्विजर्षभाः सर्वे आसनेषूपवेशिताः ॥ ४ ॥

महर्षीन्समुपप्राप्तानभिवाद्य कृताञ्जलिः ।
मन्त्रिणो नैगमांश्चैव यथार्हमनुकूलतः ॥ ५ ॥

तेषां समुपविष्टानां सर्वेषां दीप्ततेजसाम् ।
राघवः सर्वमाचष्टे द्विजोऽयमुपरोधते ॥ ६ ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राज्ञो दीनस्य नारदः ।
प्रत्युवाच शुभं वाक्यमृषीणां सन्निधौ नृपम् ॥ ७ ॥

शृणु राजन्यथाऽकाले प्राप्तो बालस्य संक्षयः ।
श्रुत्वा कर्तव्यतां राजन्कुरुष्व रघुनन्दन ॥ ८ ॥

पुरा कृतयुगे राजन्ब्राह्मणा वै तपस्विनः ।
अब्राह्मणस्तदा राजन्न तपस्वी कथञ्चन ॥ ९ ॥

तस्मिन्युगे प्रज्वलिते ब्रह्मभूते त्वनावृते ।
अमृत्यवस्तदा सर्वे जज्ञिरे दीर्घदर्शिनः ॥ १० ॥

ततस्त्रेतायुगं नाम मानवानां वपुष्मताम् ।
क्षत्रियास्तत्र जायन्ते पूर्वेण तपसाऽन्विताः ॥ ११ ॥

वीर्येण तपसा चैव तेऽधिकाः पूर्वजन्मनि ।
मानवा ये महात्मानस्त्वत्र त्रेतायुगे युगे ॥ १२ ॥

ब्रह्म क्षत्रं च तत्सर्वं यत्पूर्वमपरं च यत् ।
युगयोरुभयोरासीत्समवीर्यसमन्वितम् ॥ १३ ॥

अपश्यंस्तु न ते सर्वे विशेषमधिकं ततः ।
स्थापनं चक्रिरे तत्र चातुर्वर्ण्यस्य सम्मतम् ॥ १४ ॥

तस्मिन्युगे प्रज्वलिते धर्मभूते ह्यनावृते ।
अधर्मः पादमेकं तु पातयत्पृथिवीतले ॥ १५ ॥
अधर्मेण हि संयुक्तस्तेजो मन्दं भविष्यति ॥ १६ ॥
आमिषं यच्च पूर्वेषां राजसं च मलं भृशम् ।
अनृतं नाम तद्भूतं पादेन पृथिवीतले ॥ १७ ॥
अनृतं पातयित्वा तु पादमेकमधर्मतः ।
ततः प्रादुष्कृतं पूर्वमायुषः परिनिष्ठितम् ॥ १८ ॥
पतिते त्वनृते तस्मिन्नधर्मे च महीतले ।
शुभान्येवाचरल्लोकः सत्यधर्मपरायणः ॥ १९ ॥
त्रेतायुगे च वर्तन्ते ब्राह्मणाः क्षत्रियाश्च ये ।
तपोऽतप्यन्त ते सर्वे शुश्रूषामपरे जनाः ॥ २० ॥
स धर्मः परमस्तेषां वैश्यशूद्रं समागमत् ।
पूजां च सर्ववर्णानां शूद्राश्चक्रुर्विशेषतः ॥ २१ ॥
एतस्मिन्नन्तरे तेषामधर्मे चानृते च ह ।
ततः पूर्वे भृशं ह्रासमगमन्नृपसत्तम ॥ २२ ॥
ततः पादमधर्मः स द्वितीयमवतारयत् ।
ततो द्वापरसंज्ञाऽस्य युगस्य समजायत ॥ २३ ॥
तस्मिन्द्वापरसंज्ञे तु वर्तमाने युगक्षये ।
अधर्मश्चानृतं चैव ववृधे पुरुषर्षभ ॥ २४ ॥
तस्मिन्द्वापरसंख्याते तपो वैश्यान्समाविशत् ।
त्रिभ्यो युगेभ्यस्त्रीन्वर्णान्क्रमाद्वै तप आविशत् ॥ २५ ॥

त्रिभ्यो युगेभ्यस्त्रीन्वर्णान्धर्मश्च परिनिष्ठितः ।
न शूद्रो लभते धर्मं युगतस्तु नरर्षभ ॥ २६ ॥
हीनवर्णो नृपश्रेष्ठ तप्यते सुमहत्तपः ॥ २७ ॥

भविष्यच्छूद्रयोन्यां वै तपश्चर्या कलौ युगे ।
अधर्मः परमो राजन्द्वापरे शूद्रजन्मनः ॥ २८ ॥

स वै विषयपर्यन्ते तव राजन्महातपाः ।
अद्य तप्यति दुर्बुद्धिस्तेन बालवधो ह्ययम् ॥ २९ ॥

यो ह्यधर्ममकार्यं वा विषये पार्थिवस्य तु ।
करोति चाश्रीमूलं तत्पुरे वा दुर्मतिर्नरः ॥
क्षिप्रं च नरकं याति स च राजा न संशयः ॥ ३० ॥

अधीतस्य च तप्तस्य कर्मणः सुकृतस्य च ।
षष्ठं भजति भागं तु प्रजा धर्मेण पालयन् ॥
षड्भागस्य च भोक्ताऽसौ रक्षते न प्रजाः कथम् ॥

स त्वं पुरुषशार्दूल मार्गस्व विषयं स्वकम् ।
दुष्कृतं यत्र पश्येथास्तत्र यत्नं समाचर ॥ ३२ ॥

एवं चेद्धर्मबुद्धिश्च नृणां चायुर्विवर्धनम् ।
भविष्यति नरश्रेष्ठ बालस्यास्य च जीवितम् ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥





## पञ्चसप्ततितमः सर्गः ॥ ७५ ॥

### शूद्रमुन्यन्वेषणम् ॥

नारदस्य तु तद्वाक्यं श्रुत्वाऽमृतमयं तदा ।
प्रहर्षमतुलं लेभे लक्ष्मणं चेदमब्रवीत् ॥ १ ॥
गच्छ सौम्य द्विजश्रेष्ठं समाश्वासय सुव्रतम् ।
बालस्य तु शरीरं तत्तैलद्रोण्यां निधापय ॥ २ ॥
गन्धैश्च परमोदारैस्तैलैश्चापि सुगन्धिभिः ।
यथा न क्षीयते बालस्तथा सौम्य विधीयताम् ॥ ३ ॥
यथा शरीरो बालस्य गुप्तः सन् क्लिष्टकर्मणः ।
विपत्तिः परिभेदो वा न भवेच्च तथा कुरु ॥ ४ ॥
एवमादिश्य काकुत्स्थो लक्ष्मणं शुभलक्षणम् ।
मनसा पुष्पकं दध्यावागच्छेति महायशाः ॥ ५ ॥
इङ्गितं स तु विज्ञाय पुष्पको हेमभूषितः ।
आजगाम मुहूर्तेन समीपं राघवस्य वै ॥ ६ ॥
सोऽब्रवीत्प्रणतो भूत्वा अयमस्मि नराधिप ।
वश्यस्तव महाबाहो किङ्करः समुपस्थितः ॥ ७ ॥
भाषितं रुचिरं श्रुत्वा पुष्पकस्य नराधिपः ।
अभिवाद्य महर्षींस्तान्विमानं सोऽध्यरोहत ॥ ८ ॥
धनुर्गृहीत्वा तूणी च खड्गं च रुचिरप्रभम् ।
निक्षिप्य नगरे वीरौ सौमित्रिभरतावुभौ ॥ ९ ॥
प्रायात्प्रतीचीं हरितं विचिन्वंश्च ततस्ततः ।
उत्तरामगमच्छ्रीमान्दिशं हिमवता वृताम् ॥ १० ॥

अपश्यमानस्तत्रापि स्वल्पमप्यथ दुष्कृतम् ।
पूर्वामपि दिशं सर्वामथापश्यन्नराधिपः ॥ ११ ॥

प्रविशुद्धसमाचारामादर्शतलनिर्मलाम् ।
पुष्पकस्थो महाबाहुस्तदाऽपश्यन्नराधिपः ॥ १२ ॥

दक्षिणां दिशमाक्रामत्ततो राजर्षिनन्दनः ।
शैलस्योत्तरे पार्श्वे ददर्श सुमहत्सरः ॥ १३ ॥

तस्मिन्सरसि तप्यन्तं तापसं सुमहत्तपः ।
ददर्श राघवः श्रीमल्लम्बमानमधोमुखम् ॥ १४ ॥

राघवस्तमुपागम्य तप्यन्तं तप उत्तमम् ।
उवाच स तदा वाक्यं धन्यस्त्वमसि सुव्रत ॥ १५ ॥

कस्यां योन्यां तपोवृद्ध वर्तसे दृढविक्रम ।
कौतूहलात्त्वां पृच्छामि रामो दाशरथिर्ह्यहम् ॥ १६ ॥

कोऽर्थो मनीषितस्तुभ्यं स्वर्गलाभः परोऽथ वा ।
वराश्रयो यदर्थं त्वं तपस्यसि सुदुष्करम् ॥
यमाश्रित्य तपस्तप्तं श्रोतुमिच्छामि तापस ॥ १७ ॥

ब्राह्मणो वाऽसि भद्रं ते क्षत्रियो वाऽसि दुर्जयः ।
वैश्यस्तृतीयवर्णो वा शूद्रो वा सत्यवाग्भव ॥ १८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे पञ्चसप्ततितमः सर्गः ॥

## षट्सप्ततितमः सर्गः ॥ ७६ ॥

### शम्बूकवधः ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा रामस्याक्लिष्टकर्मणः ।
अवाक्शिरास्तथा भूत्वा वाक्यमेतदुवाच ह ॥ १ ॥

शूद्रयोन्यां प्रजातोऽस्मि तप उग्रं समास्थितः ।
देवत्वं प्रार्थये राम सशरीरो महायशः ॥ २ ॥

न मिथ्याऽहं वदे राम देवलोकजिगीषया ।
शूद्रं मां विद्धि काकुत्स्थ शम्बूको नाम नामतः ॥ ३ ॥

भाषतस्तस्य शूद्रस्य खड्गं सुरुचिरप्रभम् ।
निष्कृष्य कोशाद्विमलं शिरश्चिच्छेद राघवः ॥ ४ ॥

तस्मिञ्च्छूद्रे हते देवाः सेन्द्राः साग्निपुरोगमाः ।
साधु साध्विति काकुत्स्थं प्रशशंसुर्मुहुर्मुहुः ॥ ५ ॥

पुष्पवृष्टिर्महत्यासीद्दिव्यानां सुसुगन्धिनाम् ।
पुष्पाणां वायुमुक्तानां सर्वतः प्रपपात ह ॥ ६ ॥

सुप्रीताश्चाब्रुवन्रामं देवाः सत्यपराक्रमम् ।
सुरकार्यमिदं सौम्य सुकृतं ते महामते ॥ ७ ॥

गृहाण च वरं सौम्य यत्त्वमिच्छस्यरिन्दम ।
स्वर्गभाङ्न हि शूद्रोऽयं त्वत्कृते रघुनन्दन ॥ ८ ॥

देवानां भाषितं श्रुत्वा राघवः सुसमाहितः ।
उवाच प्राञ्जलिर्वाक्यं सहस्राक्षं पुरन्दरम् ॥ ९ ॥

यदि देवाः प्रसन्ना मे द्विजपुत्रः स जीवतु ।
दिशन्तु वरमेतन्म ईप्सितं परमं मम ॥ १० ॥

ममापचारात्बालोऽसौ ब्राह्मणस्यैकपुत्रकः ।
अप्राप्तकालः कालेन नीतो वैवस्वतक्षयम् ॥ ११ ॥

तं जीवयत भद्रं वो नानृतं कर्तुमर्हथ ।
द्विजस्य संश्रुतोऽर्थो मे जीवयिष्यामि ते सुतम् ॥ १२ ॥

राघवस्य तु तद्वाक्यं श्रुत्वा विबुधसत्तमाः ।
प्रत्यूचू राघवं प्रीता देवाः प्रीतिसमन्वितम् ॥ १३ ॥

निर्वृतो भव काकुत्स्थ सोऽस्मिन्नहनि बालकः ।
जीवितं प्राप्तवान्भूयः समेतश्चापि बन्धुभिः ॥ १४ ॥

यस्मिन्मुहूर्ते काकुत्स्थ शूद्रोऽयं विनिपातितः ।
तस्मिन्मुहूर्ते बालोऽसौ जीवेन समयुज्यत ॥ १५ ॥

स्वस्ति प्राप्नुहि भद्रं ते साधु याम नरर्षभ ।
अगस्त्यस्याश्रमपदं द्रष्टुमिच्छाम राघव ॥ १६ ॥

तस्य दीक्षा समाप्ता हि ब्रह्मर्षेः सुमहाद्युतेः ।
द्वादशं हि गतं वर्षं जलशय्यां समासतः ॥ १७ ॥

काकुत्स्थ तद्गमिष्यामो मुनिं समभिनन्दितुम् ।
त्वं चाप्यागच्छ भद्रं ते द्रष्टुं तमृषिसत्तमम् ॥ १८ ॥

स तथेति प्रतिज्ञाय देवानां रघुनन्दनः ।
आरुरोह विमानं तं पुष्पकं हेमभूषितम् ॥ १९ ॥

ततो देवाः प्रयातास्ते विमानैर्बहुविस्तरैः ।
रामोऽप्यनुजगामाशु कुम्भयोनेस्तपोवनम् ॥ २० ॥

दृष्ट्वा तु देवान्संप्राप्तानगस्त्यस्तपसां निधिः ।
अर्चयामास धर्मात्मा सर्वांस्तानविशेषतः ॥ २१ ॥

प्रतिगृह्य ततः पूजां सम्पूज्य च महामुनिम् ।
जग्मुस्ते त्रिदशा हृष्टा नाकपृष्ठं सहानुगैः ॥ २२ ॥

गतेषु तेषु काकुत्स्थः पुष्पकादवरुह्य च ।
ततोऽभिवादयामास ह्यगस्त्यमृषिसत्तमम् ॥ २३ ॥

सोऽभिवाद्य महात्मानं ज्वलन्तमिव तेजसा ।
आतिथ्यं परमं प्राप्य निषसाद नराधिपः ॥ २४ ॥

तमुवाच महातेजाः कुम्भयोनिर्महातपाः ।
स्वागतं ते नरश्रेष्ठ दिष्ट्या प्राप्तोऽसि राघव ॥ २५ ॥

त्वं मे बहुमतो राम गुणैर्बहुभिरुत्तमैः ।
अतिथिः पूजनीयश्च मम नित्यं हृदि स्थितः ॥ २६ ॥

सुरा हि कथयन्ति त्वामागतं शूद्रघातिनम् ।
ब्राह्मणस्य तु धर्मेण त्वया जीवापितः सुतः ॥ २७ ॥

उष्यतां चेह रजनी सकाशे मम राघव ।
प्रभाते पुष्पकेण त्वं गन्तासि पुरमेव हि ॥ २८ ॥

त्वं हि नारायणः श्रीमांस्त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
त्वं प्रभुः सर्वभूतानां पुरुषस्त्वं सनातनः ॥ २९ ॥

इदं चाभरणं सौम्य निर्मितं विश्वकर्मणा ।
दिव्यं दिव्येन वपुषा दीप्यमानं स्वतेजसा ॥
प्रतिगृह्णीष्व काकुत्स्थ मत्प्रियं कुरु राघव ॥ ३० ॥

दत्तस्य हि पुनर्दाने सुमहत्फलमुच्यते ।
भरणे हि भवाञ्च्छक्तः सेन्द्राणां मरुतामपि ॥ ३१ ॥

तस्मात्प्रदास्ये विधिवत्तत्प्रतीच्छ नराधिप ॥ ३२ ॥

तद्रामः प्रतिजग्राह मुनेस्तस्य महात्मनः ।
दिव्यमाभरणं चित्रं प्रदीप्तमिव भास्करम् ॥ ३३ ॥

प्रतिगृह्य ततो रामस्तदाभरणमुत्तमम् ।
आगमं तस्य दीप्तस्य प्रष्टुमेवोपचक्रमे ॥ ३४ ॥

अत्यद्भुतमिदं दिव्यं वपुषा [illegible] ।
कथं भगवता प्राप्तं कुतो वा केन वा हृतम् ॥ ३५ ॥

कुतूहलितया ब्रह्मन्पृच्छामि त्वां महायशः ।
आश्चर्याणां बहूनां हि निधिः परमको भवान् ॥ ३६ ॥

एवं ब्रुवति काकुत्स्थे मुनिर्वाक्यमथाब्रवीत् ।
शृणु राम यथावृत्तं पुरा त्रेतायुगे युगे ॥ ३७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे षट्सप्ततितमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 23247 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 2523

## सप्तसप्ततितमः सर्गः ॥ ७७ ॥

### स्वर्गिप्रश्नः ॥

पुरा त्रेतायुगे राम ह्यरण्यं बहुविस्तरम् ।
समन्ताद्योजनशतं निर्मृगं पक्षिवर्जितम् ॥ १ ॥

तस्मिन्निर्मानुषेऽरण्ये कुर्वाणस्तप उत्तमम् ।
अहमाक्रमितुं सौम्य तदरण्यमुपागमम् ॥ २ ॥

तस्य रूपमरण्यस्य निर्देष्टुं न शशाक ह ।
फलमूलैः सुखास्वादैर्बहुरूपैश्च काननैः ॥ ३ ॥

तस्यारण्यस्य मध्ये तु सरो योजनमायतम् ।
हंसकारण्डवाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम् ॥ ४ ॥

पद्मोत्पलसमाकीर्णं समतिक्रान्तशैवलम् ।
तदाश्चर्यमिवात्यर्थं सुखास्वादमनुत्तमम् ॥ ५ ॥

अरजस्कं तथाऽक्षोभ्यं श्रीमत्पक्षिगणायुतम् ।
समीपे तस्य सरसो महदद्भुतमाश्रमम् ॥ ६ ॥

पुराणं पुण्यमत्यर्थं तपस्विजनवर्जितम् ।
तत्राहमवसं रात्रिं नैदाघीं पुरुषर्षभ ॥ ७ ॥

प्रभाते कार्यमुत्थाय सरस्तदुपचक्रमे ।
अथापश्यं शवं तत्र सुपुष्टमरजः क्वचित् ॥ ८ ॥

पङ्क्तिभेदेन पुष्टाङ्गं समाश्रितसरोवरम् ।
तिष्ठन्तं परया लक्ष्म्या तस्मिंस्तोयाशये नृप ॥ ९ ॥

तमर्थं चिन्तयानोऽहं मुहूर्तं तत्र राघव ।
विस्मितोऽस्मि सरस्तीरे किं न्विदं स्यादिति प्रभो ॥

अथापश्यं मुहूर्तात्तु दिव्यमद्भुतदर्शनम् ।
विमानं परमोदारं हंसयुक्तं मनोजवम् ॥ ११ ॥

अत्यर्थं स्वर्गिणं तत्र विमाने रघुनन्दन ।
उपास्तेऽप्सरसां वीर सहस्रं दिव्यभूषणम् ॥ १२ ॥

गायन्ति दिव्यगेयानि वादयन्ति तथाऽपराः ।
मृदङ्गवीणापणवान्नृत्यन्ति च तथाऽपराः ॥ १३ ॥

अपराश्चन्द्ररश्म्याभैर्हेमदण्डैश्च चामरैः ।
दोधूयुर्वदनं तस्य पुण्डरीकनिभेक्षणम् ॥ १४ ॥

ततः सिंहासनं त्यक्त्वा मेरुकूटमिवांशुमान् ।
पश्यतो मे तदा राम विमानादवरुह्य च ॥
तं शवं भक्षयामास स स्वर्गी रघुनन्दन ॥ १५ ॥

तथा भुक्त्वा यथाकामं मांसं बहुसुपीवरम् ।
अवतीर्य सरः स्वर्गी संस्पृष्टुमुपचक्रमे ॥ १६ ॥

उपस्पृश्य यथान्यायं स स्वर्गी रघुपुङ्गव ।
आरोढुमुपचक्राम विमानवरमुत्तमम् ॥ १७ ॥

तमहं देवसङ्काशमारोहन्तमुदीक्ष्य वै ।
अथाहमब्रुवं वाक्यं स्वर्गिणं पुरुषर्षभ ॥ १८ ॥

को भवान्देवसङ्काश आहारश्च विगर्हितः ।
त्वयेदं भुज्यते सौम्य किमर्थं वक्तुमर्हसि ॥ १९ ॥

कस्य स्यादीदृशो भाव आहारो देवसम्मतः ।
आश्चर्यं वर्धते सौम्य श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ २० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे सप्तसप्ततितमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 23267 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 2543



अष्टसप्ततितमः सर्गः ॥ ७८ ॥

श्वेतराजोपाख्यानम् ॥

श्रुत्वा तु भणितं वाक्यं मम राम शुभाक्षरम् ।
प्राञ्जलिः प्रत्युवाचेदं स स्वर्गी रघुनन्दन ॥ १ ॥

शृणु ब्रह्मन्पुरावृत्तं ममैतत्सुखदुःखयोः ।
दुरतिक्रमणीयं हि यथा पृच्छसि मां द्विज ॥ २ ॥

पुरा वैदर्भको राजा पिता मम महायशाः ।
सुदेव इति विख्यातस्त्रिषु लोकेषु वीर्यवान् ॥ ३ ॥

तस्य पुत्रद्वयं ब्रह्मन्द्वाभ्यां स्त्रीभ्यामजायत ।
अहं श्वेत इति ख्यातो यवीयान्सुरथोऽभवत् ॥ ४ ॥

ततः पितरि स्वर्याते पौरा मामभ्यषेचयन् ।
तत्राहं कृतवान्राज्यं धर्म्यं च सुसमाहितः ॥ ५ ॥

एवं वर्षसहस्राणि समतीतानि सुव्रत ।
राज्यं कारयतो ब्रह्मन्प्रजा धर्मेण रक्षतः ॥ ६ ॥

सोऽहं निमित्ते कस्मिंश्चिद्विज्ञातायुर्द्विजोत्तम ।
कालधर्मं हृदि न्यस्य ततो वनमुपागमम् ॥ ७ ॥

सोऽहं वनमिदं दुर्गं मृगपक्षिविवर्जितम् ।
तपश्चर्तुं प्रविष्टोऽस्मि समीपे सरसः शुभे ॥ ८ ॥

भ्रातरं सुरथं राज्ये ह्यभिषिच्य महीपतिम् ।
इदं सरः समासाद्य तपस्तप्तं मया चिरम् ॥ ९ ॥

सोऽहं वर्षसहस्राणि तपस्त्रीणि महावने ।
तप्त्वा सुदुष्करं प्राप्तो ब्रह्मलोकमनुत्तमम् ॥ १० ॥

तस्य मे स्वर्गभूतस्य क्षुत्पिपासे द्विजोत्तम ।
बाधेते परमोदार ततोऽहं व्यथितेन्द्रियः ॥
गत्वा त्रिभुवनश्रेष्ठं पितामहमुवाचं ह ॥ ११ ॥

भगवन्ब्रह्मलोकोऽयं क्षुत्पिपासाविवर्जितः ।
कस्यायं कर्मणः पाकः क्षुत्पिपासानुगो ह्यहम् ॥ १२ ॥

आहारः कश्च मे देव तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १३ ॥

पितामहस्तु मामाह तवाहारः सुदेवज ।
स्वादूनि स्वानि मांसानि तानि भक्षय नित्यशः ॥

स्वशरीरं त्वया पुष्टं कुर्वता तप उत्तमम् ।
अनुप्तं रोहते श्वेत न कदाचिन्महामते ॥ १५ ॥

दत्तं न तेऽस्ति सूक्ष्मोऽपि तप एव निषेवसे ।
तेन स्वर्गगतो वत्स बाध्यसे क्षुत्पिपासया ॥ १६ ॥

स त्वं सुपुष्टमाहारैः स्वशरीरमनुत्तमम् ।
भक्षयित्वाऽमृतरसं तेन तृप्तिर्भविष्यति ॥ १७ ॥

यदा तु तद्वनं श्वेत अगस्त्यः सुमहानृषिः ।
आगमिष्यति दुर्धर्षस्तदा कृच्छ्राद्विमोक्ष्यसे ॥ १८ ॥

स हि तारयितुं सौम्य शक्तः सुरगणानपि ।
किं पुनस्त्वां महाबाहो क्षुत्पिपासावशं गतम् ॥ १९ ॥

सोऽहं भगवतः श्रुत्वा देवदेवस्य निश्चयम् ।
आहारं गर्हितं कुर्मि स्वशरीरं द्विजोत्तम ॥ २० ॥

बहून्वर्षगणान्ब्रह्मन्भुज्यमानमिदं मया ।
क्षयं नाभ्येति ब्रह्मर्षे तृप्तिश्चापि ममोत्तमा ॥ २१ ॥

तस्य मे कृच्छ्रभूतस्य कृच्छ्रादस्माद्विमोचय ।
अन्येषां न गतिर्ह्यत्र कुम्भयोनिमृते द्विजम् ॥ २२ ॥

इदमाभरणं सौम्य तारणार्थं द्विजोत्तम ।
प्रतिगृह्णीष्व भद्रं ते प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ २३ ॥

इदं तावत्सुवर्णं च धनं वस्त्राणि च द्विज ।
भक्ष्यं भोज्यं च ब्रह्मर्षे ददात्याभरणानि च ॥ २४ ॥

सर्वान्कामान्प्रयच्छामि भोगांश्च मुनिपुङ्गव ।
तारणे भगवन्मह्यं प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ २५ ॥

तस्याहं स्वर्गिणो वाक्यं श्रुत्वा दुःखसमन्वितम् ।
तारणायोपजग्राह तदाभरणमुत्तमम् ॥ २६ ॥

यो द्विजाल्लुभते ज्ञानं स तं वित्तेन पूजयेत् ।
अन्यथा ज्ञानदर्शी स्यान्नरकं भवति ध्रुवम् ॥ २७ ॥

मया प्रतिगृहीते तु तस्मिन्नाभरणे शुभे ।
मानुषः पूर्वको देहो राजर्षेर्विननाश ह ॥ २८ ॥

प्रणष्टे तु शरीरेऽसौ राजर्षिः परया मुदा ।
तृप्तः प्रमुदितो राजा जगाम त्रिदिवं सुखम् ॥ २९ ॥

तेनेदं शक्रतुल्येन दिव्यमाभरणं मम ।
तस्मिन्निमित्ते काकुत्स्थ दत्तमद्भुतदर्शनम् ॥ ३० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे अष्टसप्ततितमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 23297 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 2573

## एकोनाशीतितमः सर्गः ॥ ७९ ॥

दण्डराज्यनिवेशकथनम् ॥

तदद्भुततमं वाक्यं श्रुत्वाऽगस्त्यस्य राघवः ।
गौरवाद्विस्मयाच्चैव पुनः प्रष्टुं प्रचक्रमे ॥ १ ॥

भगवंस्तद्वनं घोरं तपस्तप्यति यत्र सः ।
श्वेतो वैदर्भको राजा कथं स्यादमृगद्विजम् ॥ २ ॥

तद्वनं स कथं राजा शून्यं मनुजवर्जितम् ।
तपश्चर्तुं प्रविष्टः स श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ ३ ॥

रामस्य वचनं श्रुत्वा कौतूहलसमन्वितम् ।
वाक्यं परमतेजस्वी वक्तुमेवोपचक्रमे ॥ ४ ॥

पुरा कृतयुगे राम मनुर्दण्डधरः प्रभुः ।
तस्य पुत्रो महानासीदिक्ष्वाकुः कुलनन्दनः ॥ ५ ॥

तं पुत्रं पूर्वकं राज्ये निक्षिप्य भुवि दुर्जयम् ।
पृथिव्यां राजवंशानां भव कर्तेत्युवाच ह ॥ ६ ॥

तथेति च प्रतिज्ञातं पितुः पुत्रेण राघव ।
ततः परमसन्तुष्टो मनुः पुत्रमुवाच ह ॥ ७ ॥

प्रीतोऽस्मि परमोदार त्वं कर्तासि न संशयः ।
दण्डेन च प्रजा रक्ष मा च दण्डमकारणे ॥ ८ ॥

अपराधिषु यो दण्डः पात्यते मानवेषु वै ।
स दण्डो विधिवन्मुक्तः स्वर्गं नयति पार्थिवम् ॥ ९ ॥

तस्माद्दण्डे महाबाहो यत्नवान्भव पुत्रक ।
धर्मो हि परमो लोके कुर्वतस्ते भविष्यति ॥ १० ॥

इति तं बहु सन्दिश्य मनुः पुत्रं समाधिना ।
जगाम त्रिदिवं हृष्टो ब्रह्मलोकं सनातनम् ॥ ११ ॥

प्रयाते त्रिदिवं तस्मिन्निक्ष्वाकुरमितप्रभः ।
जनयिष्ये कथं पुत्रानिति चिन्तापरोऽभवत् ॥ १२ ॥

कर्मभिर्बहुरूपैश्च तैस्तैर्मनुसुतः सुतान् ।
जनयामास धर्मात्मा शतं देवोपमान् ॥ १३ ॥

तेषामवरजस्तात सर्वेषां रघुनन्दन ।
मूढश्चाकृतविद्यश्च न शुश्रूषति पूर्वजान् ॥ १४ ॥

नाम तस्य च दण्डेति पिता चक्रेऽल्पमेधसः ।
अवश्यं दण्डपतनं शरीरेऽस्य भविष्यति ॥ १५ ॥

अपश्यमानस्तं देशं घोरं पुत्रस्य राघव ।
विन्ध्यशैवलयोर्मध्ये राज्यं प्रादादरिन्दम ॥ १६ ॥

स दण्डस्तत्र राजाऽभूद्रम्ये पर्वतरोधसि ।
पुरं चाप्रतिमं राम न्यवेशयदनुत्तमम् ॥ १७ ॥

पुरस्य चाकरोन्नाम मधुमन्तमिति प्रभो ।
पुरोहितं तूशनसं वरयामास सुव्रतम् ॥ १८ ॥

एवं स राजा तद्राज्यमकरोन्सपुरोहितः ।
प्रहृष्टमनुजाकीर्णं देवराजो यथा दिवि ॥ १९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे एकोनाशीतितमः सर्गः ॥

आदितः श्लोका 23316 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 2592



## अशीतितमः सर्गः ॥ ८० ॥

### शुक्रकन्याधर्षणम् ॥

एतदाख्याय रामाय महर्षिः कुम्भसम्भवः ।
अस्यामेवापरं वाक्यं कथायामुपचक्रमे ॥ १ ॥

ततः स दण्डः काकुत्स्थ बहुवर्षगणायुतम् ।
अकण्टकं तत्र दान्तात्मा राज्यं निहतकण्टकम् ॥ २ ॥

अथ काले तु कस्मिंश्चिद्राजा भार्गवमाश्रमम् ।
रमणीयमुपाक्रामच्चैत्रे मासि मनोहरे ॥ ३ ॥

तत्र भार्गवकन्यां स रूपेणाप्रतिमां भुवि ।
विचरन्तीं वनोद्देशे दण्डोऽपश्यदनुत्तमाम् ॥ ४ ॥

स दृष्ट्वा तां सुदुर्मेधा अनङ्गशरपीडितः ।
अभिगम्य सुसंविग्नां कन्यां वचनमब्रवीत् ॥ ५ ॥

कुतस्त्वमसि सुश्रोणि कस्य वाऽसि सुता शुभे ।
पीडितोऽहमनङ्गेन गच्छामि त्वां शुभानने ॥ ६ ॥

तस्य चैवं ब्रुवाणस्य मोहोन्मत्तस्य कामिनः ।
भार्गवी प्रत्युवाचेदं वचः सानुनयं नृपम् ॥ ७ ॥

भार्गवस्य सुतां विद्धि देवस्याक्लिष्टकर्मणः ।
अरजां नाम राजेन्द्र ज्येष्ठामाश्रमवासिनीम् ॥ ८ ॥

मा मां स्पृश बलाद्राजन्कन्या पितृवशा ह्यहम् ।
गुरुः पिता मे राजेन्द्र त्वं च शिष्यो महात्मनः ॥
व्यसनं सुमहत्क्रुद्धः स ते दद्यान्महातपाः ॥ ९ ॥

यदि वाऽन्यन्मया कार्यं धर्मदृष्टेन सत्पथा ।
वरयस्व नृपश्रेष्ठ पितरं मे महाद्युतिम् ॥ १० ॥
अन्यथा तु फलं तुभ्यं भवेद्घोराभिसंहितम् ।
क्रोधेन हि पिता मेऽसौ त्रैलोक्यमपि निर्दहेत् ॥ ११ ॥
दास्यते चानवद्याङ्ग तव मां याचतः पिता ॥ १२ ॥
एवं [illegible] दण्डः कामवशं गतः ।
प्रत्युवाच मदोन्मत्तः शिरस्याधाय चाञ्जलिम् ॥ १३ ॥
प्रसादं कुरु सुश्रोणि न कालं क्षेप्तुमर्हसि ।
त्वत्कृते हि मम प्राणा विदीर्यन्ते वरानने ॥ १४ ॥
त्वां प्राप्य मे वधो वा स्याच्छापो वा यदि दारुणः ।
भक्तं भजस्व मां भीरु भजमानं सुविह्वलम् ॥ १५ ॥
एवमुक्त्वा तु तां कन्यां दोर्भ्यां गृह्य बलाद्बली ।
विस्फुरन्तीं यथाकामं मैथुनायोपचक्रमे ॥ १६ ॥
तमनर्थं महाघोरं दण्डः कृत्वा सुदारुणम् ।
नगरं प्रययावाशु मधुमन्तमनुत्तमम् ॥ १७ ॥
अरजाऽपि रुदन्ती सा आश्रमस्याविदूरतः ।
प्रतीक्षते स्म सन्त्रस्ता पितरं देवसन्निभम् ॥ १८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे अशीतितमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 23334 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 2610

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे एकोनत्रिंशेऽह्नि वर्तमानकथाप्रसङ्गः ॥

[ पुरा कुशलवाभ्यां श्रीरामसन्निधावश्वमेधयज्ञवाटे
द्वात्रिंशति दिनेषु गीते श्रीमद्रामायणे त्रिंशेऽह्नि उत्तरकाण्डे
एकाशीतितमसर्गमारभ्य अष्टनवतितमसर्गपर्यन्तं
(23335—23739 श्लोकाः) गीतम् ।
तस्मिन् दिने गीताः श्लोकाः 405 ]

## एकाशीतितमः सर्गः ॥ ८१ ॥

### दण्डशापः ॥

स मुहूर्तादुपश्रुत्य देवर्षिरमितप्रभः ।
स्वमाश्रमं शिष्यवृतः क्षुधार्तः संन्यवर्तत ॥ १ ॥

सोऽपश्यदरजां दीनां रजसा समभिप्लुताम् ।
ज्योत्स्नामिवारुणग्रस्तां प्रत्यूषे न विराजतीम् ॥ २ ॥

तस्य रोषः समभवत्क्षुधार्तस्य विशेषतः ।
निर्दहन्निव लोकांस्त्रीञ्जिच्छिष्यांश्चैतदुवाच ह ॥ ३ ॥

पश्यध्वं विपरीतस्य दण्डस्याविजितात्मनः ।
विपत्तिं घोरसङ्काशां क्रुद्धामग्निशिखामिव ॥ ४ ॥

क्षयोऽस्य दुर्मतेः प्राप्तः सानुगस्य दुरात्मनः ।
यः प्रदीप्तां हुताशस्य शिखां वै स्प्रष्टुमिच्छति ॥ ५ ॥

यस्मात्स कृतवान्पापमीदृशं घोरसंहितम् ।
तस्मात्प्राप्स्यति दुर्मेधाः फलं पापस्य कर्मणः ॥ ६ ॥

सप्तरात्रेण राजाऽसौ सभृत्यबलवाहनः ।
पापकर्मसमाचारो वधं प्राप्स्यति दुर्मतिः ॥ ७ ॥

समन्ताद्योजनशतं विषयं चास्य दुर्मतेः ।
धक्ष्यते पांसुवर्षेण महता पाकशासनः ॥ ८ ॥

सर्वसत्त्वानि यानीह स्थावराणि चराणि च ।
महता पांसुवर्षेण विलयं सर्वतोऽगमन् ॥ ९ ॥

दण्डस्य विषयो यावत्तावत्सर्वसमुच्छ्रयम् ।
पांसुवर्षमिवालक्ष्यं सप्तरात्रं भविष्यति ॥ १० ॥

इत्युक्त्वा क्रोधताम्राक्षस्तदाश्रमनिवासिनम् ।
जनं जनपदान्तेषु स्थीयतामिति चाब्रवीत् ॥ ११ ॥

श्रुत्वा तूशनसो वाक्यं सोऽश्रमावसथो जनः ।
निष्क्रान्तो विषयात्तस्मात्स्थानं चक्रेऽथ बाह्यतः । १२ ॥

स तथोक्त्वा मुनिजनमरजामिदमब्रवीत् ।
इहैव वस दुर्मेधे आश्रमे सुसमाहिता ॥ १३ ॥

इदं योजनपर्यन्तं सरः सुरुचिरप्रभम् ।
अरजे विज्वरा भुङ्क्ष्व कालश्चात्र प्रतीक्ष्यताम् ॥ १४ ॥

त्वत्समीपे च ये सत्त्वा वासमेष्यन्ति तां निशाम् ।
अवध्याः पांसुवर्षेण ते भविष्यन्ति नित्यदा ॥
इत्युक्त्वा भार्गवो वासमन्यत्र समकारयत् ॥ १५ ॥

तच्च राज्यं नरेन्द्रस्य सभृत्यबलवाहनम् ।
सप्ताहाद्भस्मसाद्भूतं यथोक्तं ब्रह्मवादिना ॥ १६ ॥

तस्यासौ दण्डविषयो विन्ध्यशैवलयोर्नृप ।
शप्तो ब्रह्मर्षिणा तेन वैधर्म्ये सहिते कृते ॥ १७ ॥

ततःप्रभृति काकुत्स्थ दण्डकारण्यमुच्यते ।
तपस्विनः स्थिता ह्यत्र जनस्थानमतोऽभवत् ॥ १८ ॥

एतत्ते सर्वमाख्यातं यन्मां पृच्छसि राघव ।
सन्ध्यामुपासितुं वीर समयो ह्यतिवर्तते ॥ १९ ॥

एते महर्षयः सर्वे पूर्णकुम्भाः समन्ततः ।
कृतोदका नरव्याघ्र आदित्यं पर्युपासते ॥ २० ॥

स तैर्ब्राह्मणमभ्यस्तं सहितैर्ब्रह्मवित्तमैः ।
रविरस्तं गतो राम गच्छोदकमुपस्पृश ॥ २१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे एकाशीतितमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 23355 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 2631



## द्व्यशीतितमः सर्गः ॥ ८२ ॥

### श्रीरामस्यायोध्यां प्रत्यागमनम् ॥

ऋषेर्वचनमाज्ञाय रामः सन्ध्यामुपासितुम् ।
अपाक्रामत्सरः पुण्यमप्सरोगणसेवितम् ॥ १ ॥

तत्रोदकमुपस्पृश्य सन्ध्यामन्वास्य पश्चिमाम् ।
आश्रमं प्राविशद्रामः कुम्भयोनेर्महात्मनः ॥ २ ॥

तस्यागस्त्यो बहुगुणं कन्दमूलं तथौषधिम् ।
शाल्यादीनि पवित्राणि भोजनार्थमकल्पयत् ॥ ३ ॥

स भुक्तवान्नरश्रेष्ठस्तत्कन्दमूलौषधम् ।
प्रीतश्च परितुष्टश्च तां रात्रिं समुपाविशत् ॥ ४ ॥

प्रभाते कालमुत्थाय कृत्वाऽऽह्निकमरिन्दमः ।
ऋषिं समुपचक्राम गमनाय रघूत्तमः ॥ ५ ॥

अभिवाद्याब्रवीद्रामो महर्षिं कुम्भसम्भवम् ।
आपृच्छे त्वां पुरीं गन्तुं मामनुज्ञातुमर्हसि ॥ ६ ॥

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि दर्शनेन महात्मनः ।
द्रष्टुं चैवागमिष्यामि पावनार्थमिहात्मनः ॥ ७ ॥

तथा वदति काकुत्स्थे वाक्यमद्भुतदर्शनम् ।
उवाच परमप्रीतो धर्मनेत्रस्तपोधनः ॥ ८ ॥

अत्यद्भुतमिदं वाक्यं तव राम शुभाक्षरम् ।
पावनः सर्वभूतानां त्वमेव रघुनन्दन ॥ ९ ॥

मुहूर्तमपि राम त्वां ये च पश्यन्ति केचन ।
पाविताः स्वर्गभूताश्च पूज्यास्ते सर्वदैवतैः ॥ १० ॥

ये च त्वां घोरचक्षुर्भिः पश्यन्ति प्राणिनो भुवि ।
हतास्ते यमदण्डेन सद्यो निरयगामिनः ॥ ११ ॥

ईदृशस्त्वं रघुश्रेष्ठ पावनः सर्वदेहिनाम् ।
भुवि त्वां कथयन्तोऽपि सिद्धिमेष्यन्ति राघव ॥ १२ ॥

गच्छ चारिष्टमव्यग्रः पन्थानमकुतोभयम् ।
प्रशाधि राज्यं धर्मेण गतिर्हि जगतो भवान् ॥ १३ ॥

एवमुक्तस्तु मुनिना प्राञ्जलिः प्रग्रहो नृपः ।
अभ्यवादयत प्राज्ञस्तमृषिं पुण्यशालिनम् ॥ १४ ॥

अभिवाद्य मुनिश्रेष्ठं तांश्च सर्वांस्तपोधनान् ।
अध्यारोहत्तदव्यग्रः पुष्पकं हेमभूषितम् ॥ १५ ॥

तं प्रयान्तं मुनिगणा ह्याशीर्वादैः समन्ततः ।
अपूजयन्महेन्द्राभं सहस्राक्षमिवामराः ॥ १६ ॥

स्वस्थः स ददृशे रामः पुष्पके हेमभूषिते ।
शशी मेघसमीपस्थो यथा जलधरागमे ॥ १७ ॥

ततोऽर्धदिवसे प्राप्ते पूज्यमानस्ततस्ततः ।
अयोध्यां प्राप्य काकुत्स्थो मध्यकक्ष्यामवारुहत् ॥ १८ ॥

ततो विसृज्य रुचिरं पुष्पकं कामगामि तत् ।
विसर्जयित्वा गच्छेति स्वस्ति तेऽस्त्विति च प्रभुः ॥ १९ ॥

कक्ष्यान्तरविनिक्षिप्तं द्वाःस्थं रामोऽब्रवीद्वचः ।
लक्ष्मणं भरतं चैव गत्वा तौ लघुविक्रमौ ॥
ममागमनमाख्याय शब्दापयत मा चिरम् ॥ २० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकिये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे द्व्यशीतितमः सर्गः ॥

## त्र्यशीतितमः सर्गः ॥ ८३ ॥

### राजसूयाकरणनिर्धारणम् ॥

तच्छ्रुत्वा भाषितं तस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः ।
द्वाःस्थः कुमारावाहूय राघवाय न्यवेदयत् ॥ १ ॥

दृष्ट्वा तु राघवः प्राप्तौ प्रियौ भरतलक्ष्मणौ ।
परिष्वज्य तदा रामो वाक्यमेतदुवाच ह ॥ २ ॥

कृतं मया यथा तथ्यं द्विजकार्यमनुत्तमम् ।
धर्मसेतुमतो भूयः कर्तुमिच्छामि राघवौ ॥ ३ ॥

अक्षय्यश्चाव्ययश्चैव धर्मसेतुर्मतो मम ।
धर्मप्रसाधकं ह्येतत्सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ४ ॥

युवाभ्यामात्मभूताभ्यां राजसूयमनुत्तमम् ।
सहितो यष्टुमिच्छामि तत्र धर्मो हि शाश्वतः ॥ ५ ॥

इष्ट्वा तु राजसूयेन मित्रः शत्रुनिबर्हणः ।
सुहुतेन सुयज्ञेन वरुणत्वमुपागमत् ॥ ६ ॥

सोमश्च राजसूयेन इष्ट्वा धर्मेण धर्मवित् ।
प्राप्तश्च सर्वलोकेषु कीर्तिस्थानं च शाश्वतम् ॥ ७ ॥

अस्मिन्नहनि यच्छ्रेयश्चिन्त्यतां तन्मया सह ।
हितं चायतियुक्तं च प्रयतौ कर्तुमर्हथः ॥ ८ ॥

श्रुत्वा तु राघवस्यैतद्वाक्यं वाक्यविशारदः ।
भरतः प्राञ्जलिर्भूत्वा वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ९ ॥

त्वयि धर्मः परः साधो त्वयि सर्वा वसुन्धरा ।
प्रतिष्ठिता महाबाहो यशश्चामितविक्रम ॥ १० ॥

महीपालाश्च सर्वे त्वां प्रजापतिमिवामराः ।
निरीक्षन्ते महात्मानं लोकनाथं यथा वयम् ॥ ११ ॥

प्रजाश्च पितृवद्राजन्पश्यन्ति त्वां महाबल ।
पृथिव्या गतिभूतोऽसि प्राणिनामपि राघव ॥ १२ ॥

स त्वमेवंविधं यज्ञमाहर्ताऽसि कथं नृप ।
पृथिव्यां राजवंशानां विनाशो यत्र दृश्यते ॥ १३ ॥

पृथिव्यां ये च पुरुषा राजन्पौरुषमागताः ।
सर्वेषां भविता तत्र क्षयः सर्वान्तकोपमः ॥ १४ ॥

स त्वं पुरुषशार्दूल गुणैरतुलविक्रम ।
पृथिवीं नार्हसे हन्तुं वशे हि तव वर्तते ॥ १५ ॥

भरतस्य तु तद्वाक्यं श्रुत्वाऽमृतमयं तदा ।
महर्षमतुलं लेभे रामः सत्यपराक्रमः ॥ १६ ॥

उवाच च शुभं वाक्यं कैकेय्यानन्दवर्धनम् ।
प्रीतोऽस्मि परितुष्टोऽस्मि तवाद्य वचनेऽनघ ॥ १७ ॥

इदं वचनमक्लीबं त्वया धर्मसमाहितम् ।
व्याहृतं पुरुषव्याघ्र पृथिव्याः परिपालनम् ॥ १८ ॥

एष्यदस्मदभिप्रायाद्राजसूयात्क्रतूत्तमात् ।
निवर्तयामि धर्मज्ञ तव सुव्याहृतेन च ॥ १९ ॥

बालानां तु शुभं वाक्यं ग्राह्यं लक्ष्मणपूर्वज ।
तस्माच्छृणोमि ते वाक्यं साधुयुक्तं महामते ॥ २० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे त्र्यशीतितमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 23395 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 2670



## चतुरशीतितमः सर्गः ॥ ८४ ॥

वृत्राख्यानवर्णनम् ॥

तथोक्तवति रामे तु भरते च महात्मनि ।
लक्ष्मणोऽथ शुभं वाक्यमुवाच रघुनन्दनम् ॥ १ ॥

अश्वमेधो महायज्ञः पावनः सर्वपाप्मनाम् ।
पावनस्तव दुर्धर्षो रोचतां रघुनन्दन ॥ २ ॥

श्रूयते हि पुरा वृत्तं वासवे सुमहात्मनि ।
ब्रह्महत्याऽऽवृतः शक्रो हयमेधेन पावितः ॥ ३ ॥

पुरा किल महाबाहो देवासुरसमागमे ।
वृत्रो नाम महानासीद्दैतेयो लोकसंमतः ॥ ४ ॥

विस्तीर्णो योजनशतमुच्छ्रितस्त्रिगुणं ततः ।
अनुरागेण लोकांस्त्रीन्स्नेहात्पश्यति सर्वतः ॥ ५ ॥

धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च बुद्ध्या च परिनिष्ठितः ।
शशास पृथिवीं स्फीतां धर्मेण सुसमाहितः ॥ ६ ॥

तस्मिन्प्रशासति तदा सर्वकामदुघा मही ।
रसवन्ति प्रसूतानि मूलानि च फलानि च ॥ ७ ॥

अकृष्टपच्या पृथिवी सुसंपन्ना महात्मनः ।
स राज्यं तादृशं भुङ्क्ते स्फीतमद्भुतदर्शनम् ॥ ८ ॥

तस्य बुद्धिः समुत्पन्ना तपः कुर्यामनुत्तमम् ।
तपो हि परमं श्रेयः सम्मोहमितरत्सुखम् ॥ ९ ॥

स निक्षिप्य सुतं ज्येष्ठं पौरेषु मधुरेश्वरम् ।
तप उग्रं समातिष्ठत्तापयन्सर्वदेवताः ॥ १० ॥

तपस्तप्यति वृत्रे तु वासवः परमार्तवत् ।
विष्णुं समुपसंक्रम्य वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ११ ॥

तपस्यता महाबाहो लोका वृत्रेण निर्जिताः ।
बलवान्स हि धर्मात्मा नैनं शक्ष्यामि शासितुम् ॥ १२ ॥

यद्यसौ तप आतिष्ठेद्भूय एवासुरेश्वरः ।
यावल्लोका धरिष्यन्ति तावदस्य वशानुगाः ॥ १३ ॥

तं चैनं परमोदारमुपेक्षसि महाबलम् ।
क्षणं हि न भवेद्वृत्रः क्रुद्धे त्वयि सुरेश्वर ॥ १४ ॥

यदा हि प्रीतिसंयोगं त्वया विष्णो समागतः ।
तदाप्रभृति लोकानां नाथत्वमुपलब्धवान् ॥ १५ ॥

स त्वं प्रसादं देवानां कुरुष्व सुसमाहितः ।
त्वत्कृतेन हि सर्वं स्यात्प्रशान्तमरुजं जगत् ॥ १६ ॥

इमे हि सर्वे विष्णो त्वां निरीक्षन्ते दिवौकसः ।
वृत्रघातेन महता त्वेषां साह्यं कुरुष्व ह ॥ १७ ॥

त्वया हि नित्यशः साह्यं कृतमेषां महात्मनाम् ।
असह्यमिदमन्येषामगतीनां गतिर्भवान् ॥ १८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे चतुरशीतितमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 23413 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 2689



## पञ्चाशीतितमः सर्गः ॥ ८५ ॥

वृत्रासुरवधः ॥

लक्ष्मणस्य तु तद्वाक्यं श्रुत्वा शत्रुनिबर्हणः ।
वृत्रघातमशेषेण कथयेत्याह सुव्रत ॥ १ ॥

राघवेणैवमुक्तस्तु सुमित्रानन्दवर्धनः ।
भूय एव कथां दिव्यां कथयामास सुव्रतः ॥ २ ॥

सहस्राक्षवचः श्रुत्वा सर्वेषां च दिवौकसाम् ।
विष्णुर्देवानुवाचेदं सर्वानिन्द्रपुरोगमान् ॥ ३ ॥

पूर्वं सौहृदबद्धोऽस्मि वृत्रस्य तु महात्मनः ।
तेन युष्मत्प्रियार्थं हि नाहं हन्मि महासुरम् ॥ ४ ॥

अवश्यं करणीयं च भवतां सुखमुत्तमम् ।
तस्मादुपायमाख्यास्ये येन वृत्रो निहन्यते ॥ ५ ॥

त्रिधाभूतं करिष्यामि ह्यात्मानं सुरसत्तमाः ।
तेन वृत्रं सहस्राक्षो वधिष्यति न संशयः ॥ ६ ॥

एकांशो वासवं यातु द्वितीयो वज्रमेव तु ।
तृतीयो भूतलं शक्रस्तदा वृत्रं वधिष्यति ॥ ७ ॥

तथा ब्रुवति देवेशे देवा वाक्यमथाब्रुवन् ।
एवमेतन्न सन्देहो यथा वदसि दैत्यहन् ॥ ८ ॥

भद्रं तेऽस्तु गमिष्यामो वृत्रासुरवधैषिणः ।
भजस्व परमोदार वासवं स्वेन तेजसा ॥ ९ ॥

ततः सर्वे महात्मानः सहस्राक्षपुरोगमाः ।
तदरण्यमुपाक्रामन्यत्र वृत्रो महासुरः ॥ १० ॥

तेऽपश्यंस्तेजसा भूतं तप्यन्तमसुरोत्तमम् ।
पिबन्तमिव लोकांस्त्रीन्निर्दहन्तमिवाम्बरम् ॥ ११ ॥

दृष्ट्वैव चासुरश्रेष्ठं देवास्त्रासमुपागमन् ।
कथमेनं वधिष्यामः कथं न स्यात्पराजयः ॥ १२ ॥

तेषां चिन्तयतां तत्र सहस्राक्षः पुरन्दरः ।
वज्रं प्रगृह्य पाणिभ्यां प्राहिणोद्वृत्रमूर्धनि ॥ १३ ॥

कालाग्निनेव घोरेण तप्तेनैव महार्चिषा ।
पतता वृत्रशिरसा जगत्त्रासमुपागमत् ॥ १४ ॥

असम्भाव्यं वधं तस्य वृत्रस्य विबुधाधिपः ।
चिन्तयानो जगामाशु लोकस्यान्तं महायशाः ॥ १५ ॥

तमिन्द्रं ब्रह्महत्याऽऽशु गच्छन्तमनुगच्छति ।
अपतच्चास्य गात्रेषु तमिन्द्रं दुःखमाविशत् ॥ १६ ॥

हतारयः प्रनष्टेन्द्रा देवाः साग्निपुरोगमाः ।
विष्णुं त्रिभुवनेशानं मुहुर्मुहुरपूजयन् ॥ १७ ॥

त्वं गतिः परमेशान पूर्वजो जगतः पिता ।
रक्षार्थं सर्वभूतानां विष्णुत्वमुपजग्मिवान् ॥ १८ ॥

हतश्चायं त्वया वृत्रो ब्रह्महत्या च वासवम् ।
बाधते सुरशार्दूल मोक्षं तस्या विनिर्दिश ॥ १९ ॥

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा देवानां विष्णुरब्रवीत् ।
मामेव यजतां शक्रः पावयिष्यामि वज्रिणम् ॥ २० ॥

पुण्येन हयमेधेन मामिष्ट्वा पाकशासनः ।
पुनरेष्यति देवानामिन्द्रत्वमकुतोभयम् ॥ २१ ॥

एवं सन्दिश्य तां वाणीं देवानाममृतोपमाम् ।
जगाम विष्णुर्देवेशः स्तूयमानस्त्रिविष्टपम् ॥ २२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकिये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे पञ्चाशीतितमः सर्गः ॥

## षडशीतितमः सर्गः ॥ ८६ ॥

### इन्द्रस्य ब्रह्महत्यातरणम् ॥

तदा वृत्रवधं सर्वमखिलेन स लक्ष्मणः ।
कथयित्वा नरश्रेष्ठः कथाशेषं प्रचक्रमे ॥ १ ॥

ततो हते महावीर्ये वृत्रे देवभयङ्करे ।
ब्रह्महत्याावृतः शक्रः संज्ञां लेभे न वृत्रहा ॥ २ ॥

सोऽन्तमाश्रित्य लोकानां नष्टसंज्ञो विचेतनः ।
कालं तत्रावसत्कञ्चिद्वेष्टमान इवोरगः ॥ ३ ॥

अथ नष्टे सहस्राक्ष उद्विग्नमभवज्जगत् ।
भूमिश्च ध्वस्तसङ्काशा निस्नेहा शुष्ककानना ॥ ४ ॥

निस्रोतसश्च ते सर्वे ह्रदाश्च सरितस्तथा ।
संक्षोभश्चैव सत्त्वानामनावृष्टिकृतोऽभवत् ॥ ५ ॥

क्षीयमाणे तु लोकेऽस्मिन्संभ्रान्तमनसः सुराः ।
यदुक्तं विष्णुना पूर्वं तं यज्ञं समुपानयन् ॥ ६ ॥

ततः सर्वे सुरगणाः सोपाध्यायाः सहर्षिभिः ।
तं देशं समुपाजग्मुर्यत्रेन्द्रो भयमोहितः ॥ ७ ॥

ते तु दृष्ट्वा सहस्राक्षमावृतं ब्रह्महत्यया ।
तं पुरस्कृत्य देवेशमश्वमेधमुपाक्रमन् ॥ ८ ॥

ततोऽश्वमेधः सुमहान्महेन्द्रस्य महात्मनः ।
ववृधे ब्रह्महत्यायाः पावनार्थं नरेश्वर ॥ ९ ॥

ततो यज्ञे समाप्ते तु ब्रह्महत्या महात्मनः ।
अभिगम्याब्रवीद्वाक्यं क्व मे स्थानं विधास्यथ ॥ १० ॥

ते तामूचुस्तदा देवास्तुष्टाः प्रीतिसमन्विताः ।
चतुर्धा विभजात्मानमात्मनैव दुरासदे ॥ ११ ॥

देवानां भाषितं श्रुत्वा ब्रह्महत्या महात्मनाम् ।
सन्निधौ स्थानमन्यत्र वरयामास दुर्वसा ॥ १२ ॥

एकेनांशेन वत्स्यामि पूर्णोदासु नदीषु वै ।
चतुरो वार्षिकान्मासान्दर्पघ्नी कामचारिणी ॥ १३ ॥

भूम्यामहं सर्वकालमेकेनांशेन दुर्वसा ।
वसिष्यामि न सन्देहः सत्येनैतद्ब्रवीमि वः ॥ १४ ॥

योऽयमंशस्तृतीयो मे स्त्रीषु यौवनशालिषु ।
त्रिरात्रं दर्पपूर्णासु वसिष्ये दर्पघातिनी ॥ १५ ॥

हन्तारो ब्राह्मणान्ये तु मृषापूर्वमदूषकान् ।
तांश्चतुर्थेन भागेन संश्रयिष्ये सुरर्षभाः ॥ १६ ॥

प्रत्यूचुस्तां ततो देवा यथा वदसि दुर्वसे ।
तथा भवतु तत्सर्वं साधयस्व यदीप्सितम् ॥ १७ ॥

ततः प्रीत्याऽन्विता देवाः सहस्राक्षं ववन्दिरे ।
विज्वरः स च पूतात्मा वासवः समपद्यत ॥ १८ ॥

प्रशान्तं च जगत्सर्वं सहस्राक्षे प्रतिष्ठिते ।
यज्ञं चाद्भुतसङ्काशं तदा शक्रोऽभ्यपूजयत् ॥ १९ ॥

ईदृशो ह्यश्वमेधस्य प्रभावो रघुनन्दन ।
यजस्व सुमहाभाग हयमेधेन पार्थिव ॥ २० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे षडशीतितमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 23455 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 2731

## सप्ताशीतितमः सर्गः ॥ ८७ ॥

### इलोपाख्यानम् ॥

तच्छ्रुत्वा लक्ष्मणेनोक्तं वाक्यं वाक्यविशारदः ।
प्रत्युवाच महातेजाःप्रहसन्राघवो वचः ॥ १ ॥

एवमेव नरश्रेष्ठ यथा वदसि लक्ष्मण ।
वृत्रघातमशेषेण वाजिमेधफलं च यत् ॥ २ ॥

श्रूयते हि पुरा सौम्य कर्दमस्य प्रजापतेः ।
पुत्रो बाह्लीश्वरः श्रीमानिलो नाम सुधार्मिकः ॥ ३ ॥

स राजा पृथिवीं सर्वां वशे कृत्वा महायशाः ।
राज्यं चैव नरव्याघ्र पुत्रवत्पर्यपालयत् ॥ ४ ॥

सुरैश्च परमोदारैर्दैतेयैश्च महाधनैः ।
नागराक्षसगन्धर्वैर्यक्षैश्च सुमहात्मभिः ॥
पूज्यते नित्यशः सौम्य भयातैं रघुनन्दन ॥ ५ ॥

अबिभ्यंश्च त्रयो लोकाः सरोषस्य महात्मनः ॥ ६ ॥

स राजा तादृशो ह्यासीद्धर्मे वीर्ये च निष्ठितः ।
बुद्ध्या च परमोदारो बाह्लीकेशो महायशाः ॥ ७ ॥

स प्रचक्रे महाबाहुर्मृगयां रुचिरे वने ।
चैत्रे मनोरमे मासि सभृत्यबलवाहनः ॥ ८ ॥

प्रजघ्ने च नृपोऽरण्ये मृगाञ्च्छतसहस्रशः ।
हत्वैव तृप्तिर्नाभूच्च राज्ञस्तस्य महात्मनः ॥ ९ ॥

नानामृगाणामयुतं वध्यमानं महात्मना ।
यत्र जातो महासेनस्तं देशमुपचक्रमे ॥ १० ॥

तस्मिन्प्रदेशे देवेशः शैलराजसुतां हरः ।
रमयामास दुर्धर्षः सर्वैरनुचरैः सह ॥ ११ ॥

कृत्वा स्त्रीरूपमात्मानमुमेशो गोपतिध्वजः ।
देव्याः प्रियचिकीर्षुः संस्तस्मिन्पर्वतनिर्झरे ॥ १२ ॥

ये तु तत्र वनोद्देशे सत्त्वाः पुरुषवादिनः ।
यच्च किञ्चन तत्सर्वं नारीसंज्ञं बभूव ह ॥ १३ ॥

एतस्मिन्नन्तरे राजा स इलः कर्दमात्मजः ।
निघ्नन्मृगसहस्राणि तं देशमुपचक्रमे ॥ १४ ॥

स दृष्ट्वा स्त्रीकृतं सर्वं सव्यालमृगपक्षिकम् ।
आत्मानं स्त्रीकृतं चैव सानुगं रघुनन्दन ॥ १५ ॥

तस्य दुःखं महच्चासीद्दृष्ट्वाऽऽत्मानं तथा गतम् ।
उमापतेश्च तत्कर्म ज्ञात्वा त्रासमुपागमत् ॥ १६ ॥

ततो देवं महात्मानं शितिकण्ठं कपर्दिनम् ।
जगाम शरणं राजा सभृत्यबलवाहनः ॥ १७ ॥

ततः प्रहस्य वरदः सह देव्या महेश्वरः ।
प्रजापतिसुतं वाक्यमुवाच वरदः स्वयम् ॥ १८ ॥

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ राजर्षे कार्दमेय महाबल ।
पुरुषत्वमृते सौम्य वरं वरय सुव्रत ॥ १९ ॥

ततः स राजा दुःखार्तः प्रत्याख्यातो महात्मना ।
न च जग्राह स्त्रीभूतो वरमन्यं सुरोत्तमात् ॥ २० ॥

ततः शोकेन महता शैलराजसुतां नृपः ।
प्रणिपत्य ह्युमां देवीं सर्वेणैवान्तरात्मना ॥ २१ ॥

ईशे वराणां वरदे लोकानामसि भामिनी ।
अमोघदर्शने देवि भज सौम्येन चक्षुषा ॥ २२ ॥

ह्रद्गतं तस्य राजर्षेर्विज्ञाय हरसन्निधौ ।
प्रत्युवाच शुभं वाक्यं देवी रुद्रस्य सम्मता ॥ २३ ॥

अर्धस्य देवो वरदो वरार्धस्य तव ह्यहम् ।
तस्मादर्धं गृहाण त्वं स्त्रीपुंसोर्यावदिच्छसि ॥ २४ ॥

तदद्भुततरं श्रुत्वा देव्या वरमनुत्तमम् ।
सम्प्रहृष्टमना भूत्वा राजा वाक्यमथाब्रवीत् ॥ २५ ॥

यदि देवि प्रसन्ना मे रूपेणाप्रतिमा भुवि ।
मासं स्त्रीत्वमुपासित्वा मासं स्यां पुरुषः पुनः ॥ २६ ॥

ईप्सितं तस्य विज्ञाय देवी सुरुचिरानना ।
प्रत्युवाच शुभं वाक्यमेवमेव भविष्यति ॥ २७ ॥
राजन्पुरुषभूतस्त्वं स्त्रीभावं न स्मरिष्यसि ।
स्त्रीभूतश्च परं मासं न स्मरिष्यसि पौरुषम् ॥ २८ ॥
एवं स राजा पुरुषो मासं भूत्वाऽथ कार्दमिः ।
त्रैलोक्यसुन्दरी नारी मासमेकमिलाऽभवत् ॥ २९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे सप्ताशीतितमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 23484 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 2760

## अष्टाशीतितमः सर्गः ॥ ८८ ॥

किंपुरुषोत्पत्तिः ॥

तां कथामिलसम्बन्धां रामेण समुदीरिताम् ।
लक्ष्मणो भरतश्चैव श्रुत्वा परमविस्मितौ ॥ १ ॥
तौ रामं प्राञ्जली भूत्वा तस्य राज्ञो महात्मनः ।
विस्तरं तस्य भावस्य तदा पप्रच्छतुः पुनः ॥ २ ॥
कथं स राजा स्त्रीभूतो वर्तयामास दुर्गतिः ।
पुरुषः स यदा भूतः कां वृत्तिं वर्तयत्यसौ ॥ ३ ॥
तयोस्तद्भाषितं श्रुत्वा कौतूहलसमन्वितम् ।
कथयामास काकुत्स्थस्तस्य राज्ञो यथागतम् ॥ ४ ॥
तमेव प्रथमं मासं स्त्रीभूत्वा लोकसुन्दरी ।
ताभिः परिवृता स्त्रीभिर्ये च पूर्वपदानुगाः ॥ ५ ॥

तत्काननं विगाह्याशु विजह्रे लोकसुन्दरी ।
द्रुमगुल्मलताकीर्णं पद्भ्यां पद्मदलेक्षणा ॥ ६ ॥

वाहनानि च सर्वाणि सा त्यक्त्वा वै समन्ततः ।
पर्वताभोगविवरे तस्मिन्रेमे इला तदा ॥ ७ ॥

अथ तस्मिन्वनोद्देशे पर्वतस्याविदूरतः ।
सरः सुरुचिरप्रख्यं नानापक्षिगणैर्युतम् ॥ ८ ॥

ददर्श सा त्विला तस्मिन्बुधं सोमसुतं ततः ।
ज्वलन्तं स्वेन वपुषा पूर्णसोममिवोदितम् ॥ ९ ॥

तपन्तं च तपस्तीव्रमम्भोमध्ये दुरासदम् ।
यशस्करं कामकरं तारुण्ये पर्यवस्थितम् ॥ १० ॥

सा तं जलाशयं सर्वं क्षोभयामास विस्मिता ।
सहगैः पूर्वपुरुषैः स्त्रीभूतैः रघुनन्दन ॥ ११ ॥

बुधस्तु तां समीक्ष्यैव कामबाणनिपीडितः ।
नोपलेभे तदाऽऽत्मानं सञ्चचाल तदाऽम्भसि ॥ १२ ॥

इलां निरीक्षमाणस्तु त्रैलोक्याभ्यधिकां शुभाम् ।
चिन्तां समभ्यतिक्रामत्का न्वियं देवताधिका ॥ १३ ॥

न देवीषु न नागीषु नासुरीष्वप्सरःसु च ।
दृष्टपूर्वा मया काचिद्रूपेणानेन शोभिता ॥ १४ ॥

सदृशीयं मम भवेद्यदि नान्यपरिग्रहः ।
इति बुद्धिं समास्थाय जलात्कूलमुपागमत् ॥ १५ ॥

आश्रमं समुपागम्य ततस्ताः प्रमदोत्तमाः ।
शब्दापयत धर्मात्मा ताश्चैनं च ववन्दिरे ॥ १६ ॥
स ताः पप्रच्छ धर्मात्मा कस्यैषा लोकसुन्दरी ।
किमर्थमागता चैव सत्यमाख्यात मा चिरम् ॥ १७ ॥
शुभं तु तस्य तद्वाक्यं मधुरं मधुराक्षरम् ।
श्रुत्वा स्त्रियश्च ताः सर्वा ऊचुर्मधुरया गिरा ॥ १८ ॥
अस्माकमेषा सुश्रोणी प्रभुत्वे वर्तते सदा ।
अपतिः काननान्तेषु सहास्माभिश्चरत्यसौ ॥ १९ ॥
तद्वाक्यमव्यक्तपदं तासां स्त्रीणां निशम्य च ।
विद्यामावर्तिनीं पुण्यामावर्तयत स द्विजः ॥ २० ॥
सोऽर्थं विदित्वा सकलं तस्य राज्ञो यथागतम् ।
सर्वा एव स्त्रियस्ताश्च बभाषे मुनिपुङ्गवः ॥ २१ ॥
यत्र किंपुरुषा भद्रा अवसन्शैलरोधसि ।
वासं शैलवरे रम्ये यूयं तत्र गमिष्यथ ॥ २२ ॥
मूलपत्रफलैः सर्वा वर्तयिष्यथ नित्यदा ।
स्त्रियः किंपुरुषान्नाम भर्तॄन्समुपलप्स्यथ ॥ २३ ॥
तां श्रुत्वा सोमपुत्रस्य वाचं किंपुरुषीकृताः ।
उपासाञ्चक्रिरे शैलं वध्वस्ता बहुलास्तदा ॥ २४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे अष्टाशीतितमः सर्गः ॥

## एकोननवतितमः सर्गः ॥ ८९ ॥

### पुरूरवस उत्पत्तिः ॥

श्रुत्वा किंपुरुषोत्पत्तिं लक्ष्मणो भरतस्तदा ।
आश्चर्यमिति चाब्रूतामुभौ रामं जनेश्वरम् ॥ १ ॥

अथ रामः कथामेतां भूय एव महायशाः ।
कथयामास धर्मात्मा प्रजापतिसुतस्य वै ॥ २ ॥

सर्वास्ता विद्रुता दृष्ट्वा किंनरीर्ऋषिसत्तमः ।
उवाच रूपसम्पन्नां तां स्त्रियं प्रहसन्निव ॥ ३ ॥

सोमस्याहं सुदयितः सुतः सुरुचिराननें ।
भजस्व मां वरारोहे भक्त्या स्निग्धेन चक्षुषा ॥ ४ ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा शून्ये स्वजनवर्जिता ।
इला सुरुचिरप्रख्यं प्रत्युवाच महाग्रहम् ॥ ५ ॥

अहं कामचरी सौम्य तवास्मि वशवर्तिनी ।
प्रशाधि मां सोमसुत यथेच्छसि तथा कुरु ॥ ६ ॥

तस्यास्तदद्भुतप्रख्यं श्रुत्वा हर्षमुपागतः ।
स वै कामी सह तया रेमे चन्द्रमसः सुतः ॥ ७ ॥

बुधस्य माधवो मासस्तामिलां रुचिराननाम् ।
गतो रमयतोऽत्यर्थं क्षणवत्तस्य कामिनः ॥ ८ ॥

अथ मासे तु सम्पूर्णे पूर्णेन्दुसदृशाननः ।
प्रजापतिसुतः श्रीमाञ्च्छयने प्रत्यबुध्यत ॥ ९ ॥

सोऽपश्यत्सोमजं तत्र तपन्तं सलिलाशये ।
ऊर्ध्वबाहुं निरालम्बं तं राजा प्रत्यभाषत ॥ १० ॥

भगवन्पर्वतं दुर्गं प्रविष्टोऽस्मि सहानुगः ।
न तु पश्यामि तत्सैन्यं क्व नु ते मामका गताः ॥ ११ ॥

तच्छ्रुत्वा तस्य राजर्षेर्नष्टसंज्ञस्य भाषितम् ।
प्रत्युवाच शुभं वाक्यं सान्त्वयन्परया गिरा ॥ १२ ॥

अश्मवर्षेण महता भृत्यास्ते विनिपातिताः ।
त्वं चाश्रमपदे सुप्तो वातवर्षभयार्दितः ॥ १३ ॥

समाश्वसिहि भद्रं ते निर्भयो विगतज्वरः ।
फलमूलाशनो वीर निवसेह यथासुखम् ॥ १४ ॥

स राजा तेन वाक्येन प्रत्याश्वस्तो महामतिः ।
प्रत्युवाच शुभं वाक्यं दीनो भृत्यक्षयाद्भृशम् ॥ १५ ॥

त्यक्ष्याम्यहं स्वकं राज्यं नाहं भृत्यैर्विनाकृतः ।
वर्तयेयं क्षणं ब्रह्मन्समनुज्ञातुमर्हसि ॥ १६ ॥

सुतो धर्मपरो ब्रह्मञ्ज्येष्ठो मम महायशाः ।
शशबिन्दुरिति ख्यातः स मे राज्यं प्रपत्स्यते ॥ १७ ॥

न हि शक्ष्याम्यहं हित्वा भृत्यदारान्सुखान्वितान् ।
प्रतिवक्तुं महातेजः किञ्चिदप्यशुभं वचः ॥ १८ ॥

तथा ब्रुवति राजेन्द्रे बुधः परममद्भुतम् ।
सान्त्वपूर्वमथोवाच वासस्त इह रोचताम् ॥ १९ ॥

न सन्तापस्त्वया कार्यः कार्दमेय महाबल ।
संवत्सरोषितस्येह कारयिष्यामि ते हितम् ॥ २० ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा बुधस्याक्लिष्टकर्मणः ।
वासाय विदधे बुद्धिं यदुक्तं ब्रह्मवादिना ॥ २१ ॥
मासं स स्त्री तथा भूत्वा रमयत्यनिशं शुभा ।
मासं पुरुषभावेन धर्मबुद्धिं चकार सः ॥ २२ ॥
ततः सा नवमे मासि इला सोमसुतात्सुतम् ।
जनयामास सुश्रोणी पुरूरवसमूर्जितम् ॥ २३ ॥
जातमात्रं तु सुश्रोणी पितृहस्ते न्यवेशयत् ।
बुधस्य सदृशवर्णाभमिला पुत्रं महाबलम् ॥ २४ ॥
बुधस्तु पुरुषीभूतं समाश्वास्य नराधिपम् ।
कथाभी रमयामास धर्मयुक्ताभिरात्मवान् ॥ २५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे एकोननवतितमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 23533 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 2809

## नवतितमः सर्गः ॥ ९० ॥

अश्वमेधेनेलस्य सार्वकालिकपुंस्त्वप्राप्तिः ॥

तथोक्तवति रामे तु तस्य जन्म तदद्भुतम् ।
उवाच लक्ष्मणो भूयो भरतश्च महायशाः ॥ १ ॥
इला सा सोमपुत्रस्य संवत्सरमथोषिता ।
अकरोत्किं नरश्रेष्ठ तच्चं शंसितुमर्हसि ॥ २ ॥

तयोस्तद्वाक्यमाधुर्यं निशम्य परिपृच्छतोः ।
रामः पुनरुवाचेमां प्रजापतिसुते कथाम् ॥ ३ ॥

पुरुषत्वं गते शूरे बुधः परमबुद्धिमान् ।
संवर्तं परमोदारमाजुहाव महायशाः ॥ ४ ॥

च्यवनं भृगुपुत्रं च मुनिं चारिष्टनेमिनम् ।
प्रमोदनं मोदकरं तथा दुर्वाससं मुनिम् ॥ ५ ॥

एतान्सर्वान्समानीय वाक्यज्ञस्तत्त्वदर्शिनः ।
उवाच सर्वान्सुहृदो धैर्येण सुसमाहितान् ॥ ६ ॥

अयं राजा महाबाहुः कर्दमस्य ऽलः सुतः ।
जानीतैनं यथाभूतं श्रेयो ह्यस्य विधीयताम् ॥ ७ ॥

तेषां संवदतामेव तमाश्रममुपागमत् ।
कर्दमस्तु महातेजा द्विजैः सह महात्मभिः ॥ ८ ॥

पुलस्त्यश्च क्रतुश्चैव वषट्कारस्तथैव च ।
ओङ्कारश्च महातेजास्तमाश्रममुपागमत् ॥ ९ ॥

ते सर्वे हृष्टमनसः परस्परसमागमे ।
हितैषिणो बाह्लिपतेः पृथग्वाक्यान्यथाब्रुवन् ॥ १० ॥

कर्दमस्त्वब्रवीद्वाक्यं सुतार्थं परमं हितम् ।
द्विजाः शृणुत मद्वाक्यं यच्छ्रेयः पार्थिवस्य हि ॥ ११ ॥

नान्यं पश्यामि भैषज्यमन्तरा वृषभध्वजम् ।
नाश्वमेधात्परो यज्ञः प्रियश्चैव महात्मनः ॥ १२ ॥

तस्माद्यजामहे सर्वे पार्थिवार्थे दुरासदम् ॥ १३ ॥

कर्दमेनैवमुक्तास्तु सर्व एव द्विजर्षभाः ।
रोचयन्ति स्म तं यज्ञं रुद्रस्याराधनं प्रति ॥ १४ ॥

संवर्तस्य तु राजर्षेः शिष्यः परपुरञ्जयः ।
मरुत्त इति विख्यातस्तं यज्ञं समुपाहरत् ॥ १५ ॥

ततो यज्ञो महानासीद्भ्रुधाश्रमसमीपतः ।
रुद्रश्च परमं तोषं जगाम सुमहायशाः ॥ १६ ॥

अथ यज्ञे समाप्ते तु प्रीतः परमया मुदा ।
उमापतिर्द्विजान्सर्वानुवाच इलसन्निधौ ॥ १७ ॥

प्रीतोऽस्मि हयमेधेन भक्त्या च द्विजसत्तमाः ।
अस्य बाह्लीपतेश्चैव किं करोमि प्रियं शुभम् ॥ १८ ॥

तथा वदति देवेशे द्विजास्ते सुसमाहिताः ।
प्रसादयन्ति देवेशं यथा स्यात्पुरुषस्त्विला ॥ १९ ॥

ततः प्रीतो महादेवः पुरुषत्वं ददौ पुनः ।
इलायै स महातेजा दत्त्वा चान्तरधीयत ॥ २० ॥

निर्वृत्ते हयमेधे तु गते चादर्शनं हरे ।
यथागतं द्विजाः सर्वे ह्यगच्छन्दीर्घदर्शिनः ॥ २१ ॥

राजा तु बाह्लिमुत्सृज्य मध्यदेशे ह्यनुत्तमम् ।
निवेशयामास पुरं प्रतिष्ठानं यशस्करम् ॥ २२ ॥

शशबिन्दुस्तु राजर्षिर्बाह्लिं परपुरञ्जयः ।
प्रतिष्ठाने इलो राजा प्रजापतिसुतो बली ॥ २३ ॥

स काले प्राप्तवाँल्लोकमिलो ब्राह्ममनुत्तमम् ।
ऐलः पुरूरवा राजा प्रतिष्ठानमवाप्तवान् ॥ २४ ॥

ईदृशो ह्यश्वमेधस्य प्रभावः पुरुषर्षभौ ।
स्त्रीभूतः पौरुषं लेभे यच्चान्यदपि दुर्लभम् ॥ २५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे नवतितमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 23558 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 2834



## एकनवतितमः सर्गः ॥ ९१ ॥

श्रीरामस्याश्वमेधसंविधानम् ॥

एतदाख्याय काकुत्स्थो भ्रातृभ्यामपितप्रभः ।
लक्ष्मणं पुनरेवाह धर्मयुक्तमिदं वचः ॥ १ ॥

वसिष्ठं वामदेवं च जाबालिमथ काश्यपम् ।
द्विजांश्च सर्वप्रवरानश्वमेधपुरस्कृतान् ॥ २ ॥

एतान्सर्वान्समानीय मन्त्रयित्वा च लक्ष्मण ।
हयं लक्षणसम्पन्नं विमोक्ष्यामि समाधिना ॥ ३ ॥

तद्वाक्यं राघवेणोक्तं श्रुत्वा त्वरितविक्रमः ।
द्विजान्सर्वान्समाहूय दर्शयामास राघवम् ॥ ४ ॥

ते दृष्ट्वा देवसङ्काशं कृतपादाभिवन्दनम् ।
राघवं सुदुराधर्षमाशीर्भिः समपूजयन् ॥ ५ ॥

प्राञ्जलिः स तदा भूत्वा राघवो द्विजसत्तमान् ।
उवाच धर्मसंयुक्तमश्वमेधाश्रितं वचः ॥ ६ ॥

ते तु रामस्य तच्छ्रुत्वा नमस्कृत्वा वृषध्वजम् ।
अश्वमेधं द्विजाः सर्वे पूजयन्ति स्म सर्वशः ॥ ७ ॥

स तेषां द्विजमुख्यानां वाक्यमद्भुतदर्शनम् ।
अश्वमेधाश्रितं श्रुत्वा भृशं प्रीतोऽभवत्तदा ॥ ८ ॥

विज्ञाय कर्म तत्तेषां रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ।
प्रेषयस्व द्रुतं दूतान्सुग्रीवाय महात्मने ॥ ९ ॥

शीघ्रं महद्भिर्हरिभिर्बलिभिश्च वनाश्रयैः ।
सार्धमागच्छ भद्रं ते ह्यनुभोक्तुं महोत्सवम् ॥ १० ॥

विभीषणश्च रक्षोभिः कामगैर्बहुभिर्वृतः ।
अश्वमेधं महायज्ञमायात्वतुलविक्रमः ॥ ११ ॥

राजानश्च महाभागा ये मे प्रियचिकीर्षवः ।
सानुगाः क्षिप्रमायान्तु यज्ञं द्रष्टुमनुत्तमम् ॥ १२ ॥

देशान्तरगता ये च द्विजा धर्मसमाहिताः ।
आमन्त्रयस्व तान्सर्वानश्वमेधाय लक्ष्मण ॥ १३ ॥

ऋषयश्च महाबाहो आह्वयन्तां तपोधनाः ।
देशान्तरगताः सर्वे सदाराश्च द्विजातयः ॥ १४ ॥

तथैव तालावचरास्तथैव नटनर्तकाः ॥ १५ ॥
यज्ञवाटश्च सुमहान्गोमत्या नैमिशे वने ।
आज्ञाप्यतां महाबाहो तद्धि पुण्यमनुत्तमम् ॥ १६ ॥
शान्तयश्च महाबाहो प्रवर्त्यन्तां समन्ततः ॥ १७ ॥
शतशश्चापि धर्मज्ञाः क्रतुमुख्यमनुत्तमम् ।
अनुभूय महायज्ञं नैमिशे रघुनन्दन ॥ १८ ॥
तुष्टः पुष्टश्च सर्वोऽसौ मानितश्च यथाविधि ।
प्रतियास्यति धर्मज्ञ शीघ्रमामन्त्र्यतां जनः ॥ १९ ॥
शतं वाहसहस्राणां तण्डुलानां वपुष्मताम् ।
अयुतं तिलमुद्गानां प्रयात्वग्रे महाबल ॥ २० ॥
चणकानां कुलत्थानां माषाणां लवणस्य च ।
अतोऽनुरूपं स्नेहं च गन्धं संक्षिप्तमेव च ॥ २१ ॥
सुवर्णकोट्यो बहुला हिरण्यस्य शतोत्तराः ।
अग्रतो भरतः कृत्वा गच्छत्वग्रे समाधिना ॥ २२ ॥
अन्तरा पण्यवीथ्यश्च सर्वे च नटनर्तकाः ।
सूदा नार्यश्च बहवो नित्यं यौवनशालिनः ॥ २३ ॥
भरतेन तु सार्धं ते यान्तु सैन्यानि चाग्रतः ।
नैगमा बालवृद्धाश्च द्विजाश्च सुसमाहिताः ॥ २४ ॥
कर्मान्तिकान्धर्मिकनः कोशाध्यक्षांश्च नैगमान् ।
मम मातॄस्तथा सर्वाः कुमारान्तःपुराणि च ॥ २५ ॥

काञ्चनीं मम पत्नीं च दीक्षार्हां यज्ञकर्मणि ।
अग्रतो भरतः कृत्वा गच्छत्वग्रे महायशाः ॥ २६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे एकनवतितमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 23584 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 2860



## द्विनवतितमः सर्गः ॥ ९२ ॥

### हयचर्या ॥

तत्सर्वमखिलेनाशु प्रस्थाप्य भरताग्रजः ।
हयं लक्षणसम्पन्नं कृष्णसारं मुमोच ह ॥ १ ॥

ऋत्विग्भिर्लक्ष्मणं सार्धमश्वतन्त्रे नियोज्य च ।
ततोऽभ्यगच्छत्काकुत्स्थः सह सैन्येन नैमिशम् ॥ २ ॥

यज्ञवाटं महाबाहुर्दृष्ट्वा परमद्भुतम् ।
प्रहर्षमतुलं लेभे श्रीमानिति वचोऽब्रवीत् ॥ ३ ॥

नैमिशे वसतस्तस्य सर्व एव नराधिपाः ।
आजग्मुः सर्वराष्ट्रेभ्यस्तान्रामः प्रत्यपूजयत् ॥ ४ ॥

उपकार्या महार्हाश्च पार्थिवानां महात्मनाम् ।
सानुगानां नरश्रेष्ठो व्यादिदेश महामतिः ॥ ५ ॥

अन्नपानानि वस्त्राणि सानुगानां महात्मनाम् ।
भरतः सन्ददावाशु शत्रुघ्नसहितस्तदा ॥ ६ ॥

वानराश्च महात्मानः सुग्रीवसहितास्तदा ।
विप्राणां प्रणताः सर्वे चक्रिरे परिवेषणम् ॥ ७ ॥

विभीषणश्च रक्षोभिर्बहुभिः स्वम्बिभिर्वृतः ।
ऋषीणामुग्रतपसां पूजां चक्रे महात्मनाम् ॥ ८ ॥

एवं सुविहितो यज्ञो हयमेधोऽभ्यवर्तत ।
लक्ष्मणेनाभिगुप्ता च हयचर्या प्रवर्तत ॥ ९ ॥

ईदृशं राजसिंहस्य यज्ञप्रवरमुत्तमम् ।
नान्यः शब्दोऽभवत्तत्र हयमेधे महात्मनः ॥ १० ॥

छन्दतो देहि विस्रब्धो यावत्तुष्यन्ति याचकाः ।
तावत्सर्वाणि दत्तानि क्रतुमध्ये महात्मनः ॥ ११ ॥

न निस्सृतं भवत्योष्ठाद्वचनं यावदर्थिनाम् ।
तावद्वानररक्षोभिर्दत्तमेवाभ्यदृश्यत ॥ १२ ॥

न कश्चिन्मलिनस्तत्र दीनो वाऽप्यथ कर्शितः ।
तस्मिन्यज्ञवरे राज्ञो हृष्टपुष्टजनावृते ॥ १३ ॥

ये च तत्र महात्मानो मुनयश्चिरजीविनः ।
नास्मरंस्तादृशं यज्ञं दानौघसमलङ्कृतम् ॥ १४ ॥

यः कृत्यवान्सुवर्णेन सुवर्णं लभते स्म सः ।
वित्तार्थी लभते वित्तं रत्नार्थी रत्नमेव च ॥ १५ ॥

न शक्रस्य धनेशस्य यमस्य वरुणस्य वा ।
ईदृशो दृष्टपूर्वो न एवमूचुस्तपोधनाः ॥ १६ ॥

सर्वत्र वानरास्तस्थुः सर्वत्रैव च राक्षसाः ।
वासोधनान्नमर्थिभ्यः पूर्णहस्ता ददुर्भृशम् ॥ १७ ॥

ईदृशो राजसिंहस्य यज्ञः सर्वगुणान्वितः ।
संवत्सरमथो साग्रं ववृधे नाभ्यहीयत ॥ १८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे द्विनवतितमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 23602 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 2878

## त्रिनवतितमः सर्गः ॥ ९३ ॥

वाल्मीकिना रामायणगाननियोगः ॥

वर्तमाने तथाभूते यज्ञे च परमाद्भुते ।
सशिष्य आजगामाशु वाल्मीकिर्मुनिपुङ्गवः ॥ १ ॥

स दृष्ट्वा दिव्यसङ्काशं यज्ञमद्भुतदर्शनम् ।
एकान्त ऋषिवाटानां चकार उटजाञ्छुभान् ॥ २ ॥

शकटांश्च बहून्पूर्णान्फलमूलैश्च शोभनान् ।
वाल्मीकिवाटे रुचिरेऽस्थापयन्नविदूरतः ॥ ३ ॥

स शिष्यावब्रवीद्धृष्टौ युवां गत्वा समाहितौ ।
कृत्स्नं रामायणं काव्यं गायेथां परया मुदा ॥ ४ ॥

ऋषिवाटेषु पुण्येषु ब्राह्मणावसथेषु च ।
रथ्यासु राजमार्गेषु पार्थिवानां गृहेषु च ॥ ५ ॥

रामस्य भवनद्वारि यत्र कर्म प्रवर्तते ।
ऋत्विजामग्रतश्चैव तत्र गेयं विशेषतः ॥ ६ ॥

इमानि च फलान्यत्र स्वादूनि विविधानि च ।
जातानि पर्वताग्रेषु चास्वाद्यास्वाद्य गायताम् ॥ ७ ॥

न यास्यथः श्रमं वत्सौ भक्षयित्वा फलानि वै ।
मूलानि च सुमृष्टानि नगराद्बहिरास्यथः ॥ ८ ॥

यदि शब्दापयेद्रामः श्रवणाय महीपतिः ।
ऋषीणामुपविष्टानां ततो गेयं प्रवर्तताम् ॥ ९ ॥

दिवसे विंशतिः सर्गा गेया मधुरया गिरा ।
प्रमाणैर्बहुभिस्तत्र यथोद्दिष्टा मया पुरा ॥ १० ॥

लोभश्चापि न कर्तव्यः स्वल्पोऽपि धनकाङ्क्षया ।
किं धनेनाश्रमस्थानां फलमूलोपजीविनाम् ॥ ११ ॥

यदि पृच्छेत्स काकुत्स्थो युवां कस्येति दारकौ ।
आवां वाल्मिकिशिष्यौ स्वो ब्रूतमेवं नराधिपम् ॥ १२ ॥

इमास्तन्त्रीः सुमधुराः स्थानं वा पूर्वदर्शनम् ।
मूर्च्छयित्वा सुमधुरं गायेथां विगतज्वरौ ॥ १३ ॥

आदिप्रभृति गेयं स्यान्न चावज्ञाय पार्थिवम् ।
पिता हि सर्वभूतानां राजा भवति धर्मतः ॥ १४ ॥

तद्युवां हृष्टमनसौ श्वः प्रभाते समास्थितौ ।
गायेथां मधुरं गेयं तन्त्रीलयसमन्वितम् ॥ १५ ॥

इति सन्दिश्य बहुशो मुनिः प्राचेतसस्तदा ।
वाल्मीकिः परमोदारस्तूष्णीमासीन्महायशाः ॥ १६ ॥

सन्दिष्टौ मुनिना तेन तावुभौ मैथिलीसुतौ ।
तथैव करवावेति निर्जग्मतुरिन्दमौ ॥ १७ ॥

तामद्भुतां तौ हृदये कुमारौ
निवेश्य वाणीमृषिभाषितां तदा ।
समुत्सुकौ तौ सममूषतुर्निशां
यथाऽश्विनौ भार्गवनीतिसंहिताम् ॥ १८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे त्रिनवतितमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 23620 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 2896

## चतुर्णवतितमः सर्गः ॥ ९४ ॥

### कुशलवाभ्यां रामायणगानम् ॥

तौ रजन्यां प्रभातायां स्नातौ हुतहुताशनौ ।
यथोक्तमृषिणा पूर्वं सर्वं तत्रोपगायताम् ॥ १ ॥

तां स शुश्राव काकुत्स्थः पूर्वाचार्यविनिर्मिताम् ।
अपूर्वां पाठ्यजातिं च गेयेन समलङ्कृताम् ॥ २ ॥

प्रमाणैर्बहुभिर्युक्तां तन्त्रीलयसमन्विताम् ।
बालाभ्यां राघवः श्रुत्वा कौतूहलपरोऽभवत् ॥ ३ ॥

अथ कर्मान्तरे राजा समाहूय महामुनीन् ।
पार्थिवांश्च नरव्याघ्रः पण्डितान्नैगमांस्तथा ॥ ४ ॥

पौराणिकाञ्छन्दविदो ये च वृद्धा द्विजातयः ।
स्वराणां लक्षणज्ञांश्च उत्सुकान्द्विजसत्तमान् ॥ ५ ॥

लक्षणज्ञांश्च गान्धर्वान्नैगमांश्च विशेषतः ।
पादाक्षरसमासज्ञांश्छन्दस्सु परिनिष्ठितान् ॥ ६ ॥

कलामात्राविभागज्ञाञ्ज्योतिषे च परं गतान् ।
क्रियाकल्पविदश्चैव तथा काव्यविदो जनान् ॥ ७ ॥

भाषाज्ञानिङ्गितज्ञांश्च नैगमांश्चाप्यशेषतः ।
हेतूपचारकुशलान्वचने चापि हैतुकान् ॥ ८ ॥

छन्दोविदः पुराणज्ञान्वैदिकान्द्विजसत्तमान् ।
चित्रज्ञान्नृत्तसूत्रज्ञान्गीतनृत्यविशारदान् ॥ ९ ॥

शास्त्रज्ञान्नीतिनिपुणान्वेदान्तार्थप्रबोधकान् ।
एतान्सर्वान्समानीय गायन्तौ समचोदयत् ॥ १० ॥

दृष्ट्वा मुनिगणाः सर्वे पार्थिवाश्च महौजसः ।
पिबन्त इव चक्षुर्भ्यां राजानं गायकौ च तौ ॥ ११ ॥

ऊचुः परस्परं चेदं सर्व एव समन्ततः ।
उभौ रामस्य सदृशौ बिम्बाद्बिम्बमिवोत्थितौ ॥ १२ ॥

जटिलौ यदि न स्यातां न वल्कलधरौ यदि ।
विशेषं नाधिगच्छामो गायतो राघवस्य च ॥ १३ ॥

तेषां संवदतामेवं श्रोतृणां हर्षवर्धनम् ।
गेयं प्रचक्रतुस्तत्र तावुभौ मुनिदारकौ ॥ १४ ॥

ततः प्रवृत्तं मधुरं गान्धर्वमतिमानुषम् ।
न च तृप्तिं ययुः सर्वे श्रोतारो गानसम्पदा ॥ १५ ॥

प्रवृत्तमादितः पूर्वसर्गं नारददर्शितम् ।
ततः प्रभृति सर्गांश्च यावद्विंशत्यगायताम् ॥ १६ ॥

ततोऽपराह्णसमये राघवः समभाषत ।
श्रुत्वा विंशतिसर्गांस्तान्भ्रातरं भ्रातृवत्सलः ॥ १७ ॥

अष्टादश सहस्राणि सुवर्णस्य महात्मनोः ।
प्रयच्छ शीघ्रं काकुत्स्थ यदन्यदभिकाङ्क्षितम् ॥
ददौ शीघ्रं स काकुत्स्थो बालयोर्वै पृथक्पृथक् ॥ १८ ॥

दीयमानं सुवर्णं तु नागृह्णीतां कुशीलवौ ।
ऊचतुश्च महात्मानौ किमनेनेति विस्मितौ ॥ १९ ॥

वन्येन फलमूलेन निरतौ वनवासिनौ ।
सुवर्णेन हिरण्येन किं करिष्यावहे वने ॥ २० ॥

तथा तयोः प्रब्रुवतोः कुतूहलसमन्विताः ।
श्रोतारश्चैव रामश्च सर्व एव सुविस्मिताः ॥ २१ ॥

तस्य चैवागमं रामः काव्यस्य श्रोतुमुत्सुकः ।
पप्रच्छ तौ महातेजास्तावुभौ मुनिदारकौ ॥ २२ ॥

किंप्रमाणमिदं काव्यं का प्रतिष्ठा महात्मनः ।
कर्ता काव्यस्य महतः क्व चासौ मुनिपुङ्गवः ॥
पृच्छन्तं राघवं वाक्यमूचतुर्मुनिदारकौ ॥ २३ ॥

वाल्मीकिर्भगवान्कर्ता संप्राप्तो यज्ञसंविधम् ।
येनेदं चरितं तुभ्यमशेष संप्रदर्शितम् ॥ २४ ॥

सन्निबद्धं हि श्लोकानां चतुर्विंशत्सहस्रकम् ।
उपाख्यानशतं चैव भार्गवेण तपस्विना ॥ २५ ॥

आदिप्रभृति वै राजन्पञ्च सर्गशतानि च ।
काण्डानि षट् कृतानीह सोत्तराणि महात्मना ॥
कृतानि गुरुणाऽस्माकमृषिणा चरितं तव ॥ २६ ॥

प्रतिष्ठाऽऽजीवितं यावत्तावत्सर्वस्य वर्तते ।
यदि बुद्धिः कृता राजञ्च्छ्रवणाय महारथ ॥
कर्मान्तरे क्षणीभूतस्तच्छृणुष्व सहानुजः ॥ २७ ॥

बाढमित्यब्रवीद्रामस्तौ चानुज्ञाप्य राघवम् ।
प्रहृष्टौ जग्मतुः स्थानं यत्रास्ते मुनिपुङ्गवः ॥ २८ ॥

रामोऽपि मुनिभिः सार्धं पार्थिवैश्च महात्मभिः ।
श्रुत्वा तद्गीतिमाधुर्यं कर्मशालामुपागमत् ॥ २९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे चतुर्नवतितमः सर्गः ॥

## पञ्चनवतितमः सर्गः ॥ ९५ ॥

### वाल्मीकये दूतप्रेषणम् ॥

रामो बहून्यहान्येवं तद्गीतं परमाद्भुतम् ।
शुश्राव मुनिभिः सार्धं पार्थिवैः सह वानरैः ॥ १ ॥

तस्मिन्गीते तु विज्ञाय सीतापुत्रौ कुशीलवौ ।
तस्याः परिषदो मध्ये रामो वचनमब्रवीत् ॥
दूताञ्च्छुद्धसमाचारानाहूयात्ममनीषया ॥ २ ॥

मद्वचो ब्रूत गच्छध्वमितो भगवतोऽन्तिकम् ।
यदि शुद्धसमाचारा यदि वा वातकल्मषा ॥
करोत्विहात्मनः शुद्धिमनुमान्य महामुनिम् ॥ ३ ॥

छन्दं मुनेश्च विज्ञाय सीतायाश्च मनोगतम् ।
प्रत्ययं दातुकामायास्ततः शंसत मे लघु ॥ ४ ॥

श्वः प्रभाते तु शपथं मैथिली जनकात्मजा ।
करोतु परिषन्मध्ये शोधनार्थं ममैव च ॥ ५ ॥

श्रुत्वा तु राघवस्यैतद्वचः परममद्भुतम् ।
दूताः सम्प्रययुर्वाटं यत्रास्ते मुनिपुङ्गवः ॥ ६ ॥

ते प्रणम्य महात्मानं ज्वलन्तममितप्रभम् ।
ऊचुस्ते रामवाक्यानि मृदूनि मधुराणि च ॥ ७ ॥

तेषां तद्वचाहतं श्रुत्वा रामस्य च मनोगतम् ।
विज्ञाय महातेजा मुनिर्वाक्यमथाब्रवीत् ॥ ८ ॥

एवं भवतु भद्रं वो यथा तुष्यति राघवः ।
तथा करिष्यते सीता दैवतं हि पतिः स्त्रियाः ॥ ९ ॥

तथोक्ता मुनिना सर्वे रामदूता महौजसम् ।
प्रत्येत्य राघवं क्षिप्रं मुनिवाक्यं बभाषिरे ॥ १० ॥

ततः प्रहृष्टः काकुत्स्थः श्रुत्वा वाक्यं महात्मनः ।
ऋषींस्तत्र समेतांश्च राज्ञश्चैवाभ्यभाषत ॥ ११ ॥

भगवन्तः सशिष्या वै सानुगाश्च नराधिपाः ।
पश्यन्तु सीताशपथं यश्चैवान्योऽपि काङ्क्षते ॥ १२ ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राघवस्य महात्मनः ।
सर्वेषामृषिमुख्यानां साधुवादो महानभूत् ॥ १३ ॥

राजानश्च महात्मानं प्रशंसन्ति स्म राघवम् ।
उपपन्नं नरश्रेष्ठ त्वय्येव भुवि नान्यतः ॥ १४ ॥

एवं विनिश्चयं कृत्वा श्वोभूत इति राघवः ।
विसर्जयामास तदा सर्वांस्तान्च्छत्रुसूदनः ॥ १५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकिये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे पञ्चनवतितमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 23664 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 2940



## षण्णवतितमः सर्गः ॥ ९६ ॥

### वाल्मीकिना सीताप्रत्ययदानकथनम् ॥

तस्यां रजन्यां व्युष्टायां यज्ञवाटगतो नृपः ।
ऋषीन्सर्वान्महातेजाः शब्दापयति राघवः ॥ १ ॥

वसिष्ठो वामदेवश्च जाबालिरथ काश्यपः ।
विश्वामित्रो दीर्घतपा दुर्वासाश्च महातपाः ॥ २ ॥

पुलस्त्योऽपि तथा शक्तिर्भार्गवश्चैव वामनः ।
मार्कण्डेयश्च दीर्घायुर्मौद्गल्यश्च महायशाः ॥ ३ ॥

गर्गश्च च्यवनश्चैव शतानन्दश्च धर्मवित् ।
भरद्वाजश्च तेजस्वी ह्यग्निपुत्रश्च सुप्रभः ॥ ४ ॥

नारदः पर्वतश्चैव गौतमश्च महायशाः ।
कात्यायनः सुयज्ञश्च ह्यगस्त्यस्तपसां निधिः ॥ ५ ॥

एते चान्ये च बहवो मुनयः संशितव्रताः ।
राजानश्च नरव्याघ्राः सर्व एव समागताः ॥ ६ ॥

राक्षसाश्च महावीर्या वानराश्च महाबलाः ।
सर्व एव समाजग्मुर्महात्मानः कुतूहलात् ॥ ७ ॥

क्षत्रिया ये च शूद्राश्च वैश्याश्चैव सहस्रशः ।
गृहान्वेक्षणकाश्चैव ब्राह्मणाः संशितव्रताः ॥ ८ ॥

ज्ञाननिष्ठाः कर्मनिष्ठा योगनिष्ठास्तथाऽपरे ।
सीताशपथवीक्षार्थं सर्व एव समागताः ॥ ९ ॥

तदा समागतं सर्वमश्रमभूतमिवाचलम् ।
श्रुत्वा मुनिवरस्तूर्णं ससातः समुपागमत् ॥ १० ॥

तमृषिं पृष्ठतः सीता त्वन्वगच्छदवाङ्मुखी ।
कृताञ्जलिर्बाष्पगला कृत्वा रामं मनोगतम् ॥ ११ ॥

दृष्ट्वा श्रुतिमिवायान्तीं ब्रह्मणमनुगामिनीम् ।
वाल्मीकेः पृष्ठतः सीतां साधुवादो महानभूत् ॥ १२ ॥

ततो हलहलाशब्दः सर्वेषामेवमाबभौ ॥ १३ ॥

साधु रामेति केचित्तु साधु सीतेति चापरे ।
उभावेव च तत्रान्ये प्रेक्षकाः सम्प्रचुक्रुशुः ॥ १४ ॥

ततो मध्ये जनौघस्य प्रविश्य मुनिपुङ्गवः ।
सीतासहायो वाल्मीकिरिति होवाच राघवम् ॥ १५ ॥

इयं दाशरथे सीता सुव्रता धर्मचारिणी ।
अपवादात्परित्यक्ता ममाश्रमसमीपतः ॥ १६ ॥

लोकापवादभीतस्य तव राम महाव्रत ।
प्रत्ययं दास्यते सीता तदनुज्ञातुमर्हसि ॥ १७ ॥

इमौ तु जानकीपुत्रावुभौ च यमजातकौ ।
सुतौ तवैव दुर्धर्षौ सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ १८ ॥

प्रचेतसोऽहं दशमः पुत्रो राघवनन्दन ।
न स्मराम्यनृतं वाक्यमिमौ तु तव पुत्रकौ ॥ १९ ॥

बहुवर्षसहस्राणि तपश्चर्या मया कृता ।
तस्याः फलमुपाश्नीयामपापा यदि मैथिली ॥ २० ॥

अहं पञ्चसु भूतेषु मनष्षष्ठेषु राघव ।
विचिन्त्य सीतां शुद्धेति जग्राह वननिर्झरे ॥ २१ ॥

इयं शुद्धसमाचारा अपापा पतिदेवता ।
लोकापवादभीतस्य प्रत्ययं तव दास्यति ॥ २२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे षण्णवतितमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 23686 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 2962

## सप्तनवतितमः सर्गः ॥ ९७ ॥

सीताया रसातलप्रवेशः ॥

वाल्मीकिनैवमुक्तस्तु राघवः प्रत्यभाषत ।
प्राञ्जलिर्जगतो मध्ये दृष्ट्वा तां वरवर्णिनीम् ॥ १ ॥

एवमेतन्महाभाग यथा वदसि धर्मवित् ।
प्रत्ययस्तु मम ब्रह्मंस्तव वाक्यैरकल्मषैः ॥ २ ॥

प्रत्ययस्तु पुरा वृत्तो वैदेह्याः सुरसन्निधौ ।
लोकापवादो बलवान्येन त्यक्ता हि मैथिली ॥ ३ ॥

सेयं लोकभयाद्ब्रह्मन्नपापेत्यभिजानता ।
परित्यक्ता मया सीता तद्भवान्क्षन्तुमर्हति ॥ ४ ॥

जानामि चेमौ पुत्रौ मे यमजातौ कुशीलवौ ।
शुद्धायां जगतो मध्ये मैथिल्यां प्रीतिरस्तु मे ॥ ५ ॥

अभिप्रायं तु विज्ञाय रामस्य सुरसत्तमाः ।
पितामहं पुरस्कृत्य सर्व एव समागताः ॥ ६ ॥

आदित्या वसवो रुद्रा ह्यश्विनौ समरुद्गणाः ।
गन्धर्वाप्सरसश्चैव सर्व एव समागताः ॥ ७ ॥

साध्याश्च विश्वे देवाश्च सर्वे च परमर्षयः ।
नागाः सुपर्णाः सिद्धाश्च ते सर्वे हृष्टमानसाः ॥ ८ ॥

दृष्ट्वा देवानृषींश्चैव राघवः पुनरब्रवीत् ।
प्रत्ययो मे सुरश्रेष्ठा ऋषिवाक्यैरकल्मषैः ॥ ९ ॥

शुद्धायां जगतो मध्ये वैदेह्यां प्रीतिरस्तु मे ॥ १० ॥

ततो वायुः शुभः पुण्यो दिव्यगन्धो मनोरमः ।
तज्जनौघं सुरश्रेष्ठो ह्लादयामास सर्वतः ॥ ११ ॥

तदद्भुतमिवाचिन्त्यं निरैक्षन्त समागताः ।
मानवाः सर्वराष्ट्रेभ्यः पूर्वं कृतयुगे यथा ॥ १२ ॥

सर्वान्समागतान्दृष्ट्वा सीता काषायवासिनी ।
अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यमधोदृष्टिरवाङ्मुखी ॥ १३ ॥

यथाऽहं राघवादन्यं मनसाऽपि न चिन्तये ।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति ॥ १४ ॥

मनसा कर्मणा वाचा यथा रामं समर्चये ।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति ॥ १५ ॥

यथैतत्सत्यमुक्तं मे वेद्मि रामात्परं न च ।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति ॥ १६ ॥

तथा शपन्त्यां वैदेह्यां प्रादुरासीत्तदद्भुतम् ।
भूतलादुत्थितं दिव्यं सिंहासनमनुत्तमम् ॥ १७ ॥

धियमाणं शिरोभिस्तु नागैरमितविक्रमैः ।
दिव्यं दिव्येन वपुषा दिव्यरत्नविभूषितैः ॥ १८ ॥

तस्मिंस्तु धरणी देवी बाहुभ्यां गृह्य मैथिलीम् ।
स्वागतेनाभिनन्द्यैनामासने चोपवेशयत् ॥ १९ ॥

तामासनगतां दृष्ट्वा प्रविशन्तीं रसातलम् ।
पुष्पवृष्टिरविच्छिन्ना दिव्या सीतामवाकिरत् ॥ २० ॥

साधुकारश्च सुमहान्देवानां सहसोत्थितः ।
साधु साध्विति वै सीते यस्यास्ते शीलमीदृशम् ॥ २१ ॥

एवं बहुविधा वाचो ह्यन्तरिक्षगताः सुराः ।
व्याजह्रुर्हृष्टमनसो दृष्ट्वा सीताप्रवेशनम् ॥ २२ ॥

यज्ञवाटगताश्चापि मुनयः सर्व एव ते ।
राजानश्च नरव्याघ्रा विस्मयान्नोपरेमिरे ॥ २३ ॥

अन्तरिक्षे च भूमौ च सर्वे स्थावरजङ्गमाः ।
दानवाश्च महाकायाः पाताले पन्नगाधिपाः ॥ २४ ॥

केचिद्विनेदुः संहृष्टाः केचिद्ध्यानपरायणाः ।
केचिद्रामं निरीक्षन्ते केचित्सीतामचेतनाः ॥ २५ ॥

सीताप्रवेशनं दृष्ट्वा तेषामासीत्समागमः ।
तन्मुहूर्तमिवात्यर्थं समं संमोहितं जगत् ॥ २६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे सप्तनवतितमः सर्गः ॥





## अष्टनवतितमः सर्गः ॥ ९८ ॥

### श्रीरामक्रोधशमनम् ॥

रसातलं प्रविष्टायां वैदेह्यां सर्ववानराः ।
चुक्रुशुः साधु साध्वीति मुनयो रामसन्निधौ ॥ १ ॥

दण्डकाष्ठमवष्टभ्य बाष्पव्याकुलितेक्षणः ।
अवाक्शिरा दीनमना रामो ह्यासीत्सुदुःखितः ॥ २ ॥

स रुदित्वा चिरं कालं बहुशो बाष्पमुत्सृजन् ।
क्रोधशोकसमाविष्टो रामो वचनमब्रवीत् ॥ ३ ॥

अभूतपूर्वं शोकं मे मनः स्पष्टुमिवेच्छति ।
पश्यतो मे यथा नष्टा सीता श्रीरिव रूपिणी ॥ ४ ॥

साऽदर्शनं पुरा सीता लङ्कापारे महोदधेः ।
ततश्चापि मया नीता किं पुनर्वसुधातलात् ॥ ५ ॥

वसुधे देवि भवति सीता निर्यात्यतां मम ।
दर्शयिष्यामि वा रोषं यथा मामवगच्छसि ॥ ६ ॥

कामं श्वश्रूर्ममैव त्वं त्वत्सकाशाद्धि मैथिली ।
कर्षता हलहस्तेन जनकेनोद्धृता पुरा ॥ ७ ॥

तस्मान्निर्यात्यतां सीता विवरं वा प्रयच्छ मे ।
पाताले नाकपृष्ठे वा वसेयं सहितस्तया ॥ ८ ॥

आनय त्वं हि तां सीतां मत्तोऽहं मैथिलीकृते ।
न मे दास्यसि चेत्सीतां यथारूपां महीतले ॥ ९ ॥

सपर्वतवनां कृत्स्नां विधमिष्यामि ते स्थितिम् ।
नाशयिष्याम्यहं भूमिं सर्वमापो भवत्विह ॥ १० ॥

एवं ब्रुवाणे काकुत्स्थे क्रोधशोकसमन्विते ।
ब्रह्मा सुरगणैः सार्धमुवाच रघुनन्दनम् ॥ ११ ॥

राम राम न सन्तापं कर्तुमर्हसि सुव्रत ।
स्मर त्वं पूर्वकं भावं मन्त्रं चामित्रकर्शन ॥ १२ ॥

न खलु त्वां महाबाहो स्मारयेयमुत्तमम् ।
इमं मुहूर्तं दुर्धर्ष स्मर त्वं जन्म वैष्णवम् ॥ १३ ॥

सीता हि विमला साध्वी तव पूर्वपरायणा ।
नागलोकं सुखं प्रायात्त्वदाश्रयतपोबलात् ॥ १४ ॥

स्वर्गे ते सङ्गमो भूयो भविष्यति न संशयः ।
अस्मिंस्तु परिषन्मध्ये यद्ब्रवीमि निबोध तत् ॥ १५ ॥

एतदेव हि काव्यं ते काव्यानामुत्तमं श्रुतम् ।
सर्वं विस्तरतो राम व्याख्यास्यति न संशयः ॥ १६ ॥

जन्मप्रभृति ते वीर सुखदुःखोपसेवनम् ।
भविष्यत्युत्तरं चेह सर्वं वाल्मीकिना कृतम् ॥ १७ ॥

आदिकाव्यमिदं राम त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
न ह्यन्योऽर्हति काव्यानां यशोभाग्राघवादृते ॥ १८ ॥

श्रुतं ते पूर्वमेतद्धि मया सर्वं सुरैः सह ।
दिव्यमद्भुतरूपं च सत्यवाक्यमनाहृतम् ॥ १९ ॥

स त्वं पुरुषशार्दूल धर्मेण सुसमाहितः ।
शेषं भविष्यं काकुत्स्थ काव्यं रामायणं शृणु ॥ २० ॥

उत्तरं नाम काव्यस्य शेषमत्र महायशः ।
तच्छृणुष्व महातेज ऋषिभिः सार्धमुत्तमम् ॥ २१ ॥

न खल्वन्येन काकुत्स्थ श्रोतव्यमिदमुत्तमम् ।
परमं ऋषिणा वीर त्वयैव रघुनन्दन ॥ २२ ॥

एतावदुक्त्वा वचनं ब्रह्मा त्रिभुवनेश्वरः ।
जगाम त्रिदिवं देवो देवैः सह सवासवैः ॥ २३ ॥

ये च तत्र महात्मानो ऋषयो ब्राह्मलौकिकाः ।
ब्रह्मणा समनुज्ञाता न्यवर्तन्त महौजसः ॥
उत्तरं श्रोतुमनसो भविष्यं यच्च राघवे ॥ २४ ॥

ततो रामः शुभां वाणीं देवदेवेन भाषिताम् ।
श्रुत्वा परमतेजस्वी वाल्मीकिमिदमब्रवीत् ॥ २५ ॥

भगवञ्च्छ्रोतुमनस ऋषयो ब्राह्मलौकिकाः ।
भविष्यदुत्तरं यन्मे श्वोभूते सम्भवर्तताम् ॥ २६ ॥

एवं विनिश्चयं कृत्वा सम्प्रगृह्य कुशीलवौ ।
तं जनौघं विसृज्याथ पर्णशालामुपागमत् ॥ २७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकिये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे अष्टनवतितमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 23739 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 3015

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे त्रिंशेऽह्नि वर्तमानकथाप्रसङ्गः ॥

[पुरा कुशलवाभ्यां श्रीरामसन्निधावश्वमेधयज्ञवाटे द्वात्रिंशति दिनेषु गीते श्रीमद्रामायणे एकत्रिंशेऽह्नि उत्तरकाण्डे एकोनशततमसर्गमारभ्य पञ्चोत्तरशततमसर्गपर्यन्तं (23740—23872 श्लोकाः) गीतम् । तस्मिन् दिने गीताः श्लोकाः 133]

एकोनशततमः सर्गः ॥ ९९ ॥

कौसल्यादि स्वर्गगनम् ॥

रजन्यां तु प्रभातायां समानीय महामुनीन् ।
गीयतामविशङ्काभ्यां रामः पुत्रावुवाच ह ॥ १ ॥

ततः समुपविष्टेषु ब्रह्मर्षिषु महात्मसु ।
भविष्यदुत्तरं काव्यं जगतुस्तौ कुशीलवौ ॥ २ ॥

प्रविष्टायां तु सीतायां भूतलं सत्यसम्पदा ।
तस्यावसाने यज्ञस्य रामः परमदुर्मनाः ॥ ३ ॥

अपश्यमानो वैदेहीं मेने शून्यमिदं जगत् ।
शोकेन परमायस्तो न शान्तिं मनसाऽगमत् ॥ ४ ॥

विसृज्य पार्थिवान्सर्वान्रामो राजीवलोचनः ।
हृदि कृत्वा तदा सीतामयोध्यां प्रविवेश ह ॥ ५ ॥

न सीतायाः परां भार्यां वव्रे स रघुनन्दनः ।
यज्ञे यज्ञे च पत्न्यर्थे जानकी काञ्चनी भवत् ॥ ६ ॥

दशवर्षसहस्राणि वाजिमेधांस्तथाऽकरोत् ।
वाजपेयान्दशगुणांस्तथा बहुसुवर्णकान् ॥ ७ ॥

अग्निष्टोमातिरात्राभ्यां गोसवैश्च महाधनैः ।
ईजे ऋतुभिरन्यैश्च स श्रीमानाप्तदक्षिणैः ॥ ८ ॥

एवं स कालः सुमहान्राज्यस्थस्य महात्मनः ।
धर्मे प्रयतमानस्य व्यतीयाद्राघवस्य तु ॥ ९ ॥

अनुरञ्जन्ति राजानमहन्यहनि राघवम् ।
ऋक्षवानररक्षांसि स्थिता रामस्य शासने ॥ १० ॥

काले वर्षति पर्जन्यः सुभिक्षं विमला दिशः ।
हृष्टपुष्टजनाकीर्णं पुरं जनपदास्तथा ॥ ११ ॥

नाकाले म्रियते कश्चिन्न व्याधिः प्राणिनां तथा ।
नानर्थो विद्यते कश्चिद्रामे राज्यं प्रशासति ॥ १२ ॥

अथ दीर्घस्य कालस्य राममाता यशस्विनी ।
पुत्रपौत्रैः परिवृता कालधर्ममुपागमत् ॥ १३ ॥

अन्वियाय सुमित्रा च कैकेयी च यशस्विनी ।
धर्मं कृत्वा बहुविधं त्रिदिवे पर्यवस्थिता ॥ १४ ॥

सर्वाः प्रमुदिताः स्वर्गे राज्ञा दशरथेन च ।
समागता महाभागाः सर्वधर्मं च लेभिरे ॥ १५ ॥

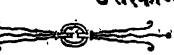
तासां रामो महादानं काले काले प्रयच्छति ।
मातृणामविशेषेण ब्राह्मणेषु तपस्विषु ॥ १६ ॥

पित्र्याणि बहुरत्नानि यज्ञान्परमदुस्तरान् ।
चकार रामो धर्मात्मा पितॄन्देवान्विवर्धयन् ॥ १७ ॥

एवं वर्षसहस्राणि बहून्यथ ययुः सुखं ।
यज्ञे बहुविधं धर्मं वर्धयानस्य सर्वदा ॥ १८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे एकोनशततमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 23757 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 3033



## शततमः सर्गः ॥ १०० ॥

भरतस्य गन्धर्वविजययात्रा ॥

कस्यचित्त्वथ कालस्य युधाजित्केकयो नृपः ।
स्वगुरुं प्रेषयामास राघवाय महात्मने ॥
गार्ग्यमङ्गिरसःपुत्रं ब्रह्मर्षिममितप्रभम् ॥ १ ॥

दश चाश्वसहस्राणि प्रीतिदानमनुत्तमम् ॥ २ ॥

कम्बलानि च रत्नानि चित्रवस्त्रमथोत्तमम् ।
रामाय प्रददौ राजा शुभान्याभरणानि च ॥ ३ ॥

श्रुत्वा तु राघवो धीमान्ब्रह्मर्षिं गार्ग्यमागतम् ।
मातुलस्याश्वपतिनः प्रहितं तन्महद्धनम् ॥ ४ ॥

प्रत्युद्गम्य च काकुत्स्थः क्रोशमात्रं सहानुजः ।
गार्ग्यं सम्पूजयामास यथा शक्रो बृहस्पतिम् ॥ ५ ॥

तथा सम्पूज्य तमृषिं तद्धनं प्रतिगृह्य च ।
उपविष्टं महाभागं रामः प्रष्टुं प्रचक्रमे ॥ ६ ॥

किमाह मातुलो वाक्यं यदर्थं भगवन्निह ।
प्राप्तो वाक्यविदां श्रेष्ठः साक्षादिव बृहस्पतिः ॥ ७ ॥

रामस्य भाषितं श्रुत्वा महर्षिः कार्यविस्तरम् ।
वक्तुमद्भुतसङ्काशं राघवायोपचक्रमे ॥ ८ ॥

मातुलस्ते महाबाहो वाक्यमाह नरर्षभ ।
युधाजित्प्रीतिसंयुक्तं श्रूयतां यदि रोचते ॥ ९ ॥

अयं गन्धर्वविषयः फलमूलोपशोभितः ।
सिन्धोरुभयतः पार्श्वे देशः परमशोभनः ॥ १० ॥

तं च रक्षन्ति गन्धर्वाः सायुधा युद्धकोविदाः ।
शैलूषस्य सुता वीर त्रिकोट्यो वै महाबलाः ॥ ११ ॥

तान्विनिर्जित्य काकुत्स्थ गन्धर्वनगरं शुभम् ।
निवेशय महाबाहो स्वपुरे सुसमाहिते ॥ १२ ॥

अन्यस्य न गतिस्तत्र देशः परमशोभनः ।
रोचतां ते महाबाहो नाहं त्वामहितं वदे ॥ १३ ॥

तच्छ्रुत्वा राघवः प्रीतो [illegible] च ।
उवाच बाढमित्येव भरतं चान्ववैक्षत ॥ १४ ॥

सोऽब्रवीद्राघवः प्रीतः साञ्जलिप्रग्रहो द्विजम् ।
इमौ कुमारौ तं देशं ब्रह्मर्षे विचरिष्यतः ॥ १५ ॥

भरतस्यात्मजौ वीरौ तक्षः पुष्कल एव च ।
मातुलेन सुगुप्तौ तु धर्मेण सुसमाहितौ ॥ १६ ॥

भरतं चाग्रतः कृत्वा कुमारौ सबलानुगौ ।
निहत्य गन्धर्वसुतान्द्वे पुरे विभजिष्यतः ॥ १७ ॥

निवेश्य ते पुरवरे आत्मजौ सन्निवेश्य च ।
आगमिष्यति मे भूयः सकाशमतिधार्मिकः ॥ १८ ॥

ब्रह्मर्षिमेवमुक्त्वा तु भरतं सबलानुगम् ।
आजग्राह तदा कुमारौ चाभ्यषेचयत् ॥ १९ ॥

नक्षत्रेण च सौम्येन पुरस्कृत्याङ्गिरःसुतम् ।
भरतः सह सैन्येन कुमाराभ्यां विनिर्ययौ ॥ २० ॥

सा सेना शक्रयुक्तेव नगरान्निर्ययावथ ।
राघवानुगता दूरं दुराधर्षा सुरैरपि ॥ २१ ॥

मांसादानि च सत्त्वानि रक्षांसि सुमहान्ति च ।
अनुजग्मुर्हि भरतं रुधिरस्य पिपासया ॥ २२ ॥

भूतग्रामाश्च बहवो मांसभक्षाः सुदारुणाः ।
गन्धर्वपुत्रमांसानि भोक्तुकामाः सहस्रशः ॥ २३ ॥

सिंहव्याघ्रवराहाणां खेचराणां च पक्षिणाम् ।
बहूनि वै सहस्राणि सेनाग्रं ययुरग्रतः ॥ २४ ॥

अध्यर्धमासमुषिता पथि सेना निरामया ।
हृष्टपुष्टजनाकीर्णा केकयं समुपागमत् ॥ २५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे शततमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 23782 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 3058

## एकोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०१ ॥

भरतपुत्रयोः राज्याभिषेकः ॥

श्रुत्वा सेनापतिं प्राप्तं भरतं केकयाधिपः ।
युधाजिद्दार्म्यसहितं परां प्रीतिमुपागमत् ॥ १ ॥

स निर्ययौ जनौघेन महता केकयाधिपः ।
त्वरमाणोऽभिचक्राम गन्धर्वान्कामरूपिणः ॥ २ ॥

भरतश्च युधाजिच्च समेतौ लघुविक्रमौ ।
गन्धर्वनगरं प्राप्तौ सबलौ सपदानुगौ ॥ ३ ॥

श्रुत्वा तु भरतं प्राप्तं गन्धर्वास्ते समागताः ।
योद्धुकामा महावीर्या व्यनदन्वै समन्ततः ॥ ४ ॥

ततः समभवद्युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम् ।
सप्तरात्रं महाभीमं न चान्यतरयोर्जयः ॥ ५ ॥

खड्गशक्तिधनुर्ग्राहा नद्यः शोणितसंस्रवाः ।
नृकलेबरवाहिन्यः प्रवृत्ताः सर्वतो दिशम् ॥ ६ ॥

ततो रामानुजः क्रुद्धः कालस्यास्त्रं सुदारुणम् ।
संवर्तं नाम भरतो गन्धर्वेष्वभ्यचोदयत् ॥ ७ ॥

ते बद्धाः कालपाशेन संवर्तेन विदारिताः ।
क्षणेनाभिहतास्तेन तिस्रः कोट्यो महात्मनाम् ॥ ८ ॥

तं घातं घोरसङ्काशं न स्मरन्ति दिवौकसः ।
निमेषान्तरमात्रेण तादृशानां महात्मनाम् ॥ ९ ॥

हतेषु तेषु सर्वेषु भरतः कैकयीसुतः ।
निवेशयामास तदा समृद्धे द्वे पुरोत्तमे ॥ १० ॥

तक्षं तक्षशिलायां तु पुष्कलं पुष्कलावते ।
गन्धर्वदेशे रुचिरे गान्धारविषये च सः ॥ ११ ॥

धनरत्नौघसम्पूर्णे काननैरुपशोभिते ।
अन्योन्यसङ्घर्षकृते स्पर्धया गुणविस्तरैः ॥ १२ ॥

उभे सुरुचिरप्रख्ये व्यवहारैरकिल्बिषैः ।
उद्यानयानसम्पूर्णे सुविभक्तान्तरापणे ॥ १३ ॥

उभे पुरवरे रम्ये विस्तरैरुपशोभिते ।
गृहमुख्यैः सुरुचिरैर्विमानसमवर्णिभिः ॥ १४ ॥

शोभिते शोभनीयैश्च देवायतनविस्तरैः ।
तालैस्तमालैस्तिलकैर्वकुलैरुपशोभिते ॥ १५ ॥

निवेश्य पञ्चभिर्वर्षैर्भरतो राघवानुजः ।
पुनरायान्महाबाहुरयोध्यां कैकयीसुतः ॥ १६ ॥

सोऽभिवाद्य महात्मानं साक्षाद्धर्ममिवापरम् ।
राघवं भरतः श्रीमान्ब्रह्माणमिव वासवः ॥ १७ ॥

शशंस च यथावृत्तं गन्धर्ववधमुत्तमम् ।
निवेशनं च देशस्य श्रुत्वा प्रीतोऽस्य राघवः ॥ १८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे एकोत्तरशततमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 23800 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 3076

## द्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १०२ ॥

### लक्ष्मणपुत्रयो राज्याभिषेकः ॥

तच्छ्रुत्वा हर्षमापेदे राघवो भ्रातृभिः सह ।
वाक्यं चाद्भुतसङ्काशं भ्रातॄन्प्रोवाच राघवः ॥ १ ॥

इमौ कुमारौ सौमित्रे तव धर्मविशारदौ ।
अङ्गदश्चन्द्रकेतुश्च राज्यार्थे दृढविक्रमौ ॥ २ ॥

इमौ राज्येऽभिषेक्ष्यामि देशः साधु विधीयताम् ।
रमणीयो ह्यसम्बाधो रमेतां यत्र धन्विनौ ॥ ३ ॥

न राज्ञां यत्र पीडा स्यान्नाश्रमाणां विनाशनम् ।
स देशो दृश्यतां सौम्य नापराध्यामहे यथा ॥ ४ ॥

तथोक्तवति रामे तु भरतः प्रत्युवाच ह ।
अयं कारुपथो देशो रमणीयो निरामयः ॥ ५ ॥

निवेश्यतां तत्र पुरमङ्गदस्य महात्मनः ।
चन्द्रकेतोः सुरुचिरं चन्द्रकान्तं निरामयम् ॥ ६ ॥

तद्वाक्यं भरतेनोक्तं प्रतिजग्राह राघवः ।
तं च कृत्वा वशे देशमङ्गदस्य न्यवेशयत् ॥ ७ ॥

अङ्गदीया पुरी रम्या ह्यङ्गदस्य निवेशिता ।
रमणीया सुगुप्ता च रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ ८ ॥

चन्द्रकेतोस्तु मल्लस्य मल्लभूम्यां निवेशिता ।
चन्द्रकान्तेति विख्याता दिव्या स्वर्गपुरी यथा ॥ ९ ॥

ततो रामः परां प्रीतिं लक्ष्मणो भरतस्तथा ।
ययुर्युद्धे दुराधर्षा अभिषेकं च चक्रिरे ॥ १० ॥

अभिषिच्य कुमारौ स प्रस्थापयति राघवः ।
अङ्गदं पश्चिमां भूमिं चन्द्रकेतुमुदङ्मुखम् ॥ ११ ॥

अङ्गदं चापि सौमित्रिर्लक्ष्मणोऽनुजगाम ह ।
चन्द्रकेतोस्तु भरतः पार्ष्णिग्राहो बभूव ह ॥ १२ ॥

लक्ष्मणस्त्वङ्गदीयायां संवत्सरमथोषितः ।
पुत्रे स्थिते दुराधर्षे ह्ययोध्यां पुनरागमत् ॥ १३ ॥

भरतोऽपि तथैवोष्य संवत्सरमतोऽधिकम् ।
अयोध्यां पुनरागम्य रामपादावुपास्त सः ॥ १४ ॥

उभौ सौमित्रिभरतौ रामपादावनुव्रतौ ।
कालं गतमपि स्नेहान्न जज्ञातेऽतिधार्मिकौ ॥ १५ ॥

एवं वर्षसहस्राणि दश तेषां ययुस्तदा ।
धर्मे प्रयतमानानां पौरकार्येषु नित्यदा ॥ १६ ॥

विहृत्य कालं परिपूर्णमानसाः
श्रिया वृता धर्मपथे परे स्थिताः ।
त्रयः समिद्धा इव दीप्ततेजसो
महाध्वरे साधु हुतास्त्रयोऽग्नयः ॥ १७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे द्व्युत्तरशततमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 23817 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 3093



## त्र्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १०३ ॥

कालरुद्रागमनम् ॥

कस्य चित्त्वथ कालस्य रामे धर्मपथे स्थिते ।
कालस्तापसरूपेण राजद्वारमुपागमत् ॥ १ ॥

सोऽब्रवील्लक्ष्मणं वाक्यं धृतिमन्तं यशस्विनम् ।
मां निवेदय रामाय संप्राप्तं कार्यगौरवात् ॥ २ ॥

दूतोऽस्म्यतिबलस्याहं महर्षेरमितौजसः ।
रामं दिदृक्षुरायातः कार्येण हि महाबल ॥ ३ ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सौमित्रिस्त्वरयाऽन्वितः ।
न्यवेदयत रामाय तापसं तं समागतम् ॥ ४ ॥

जयस्व राम धर्मेण उभौ लोकौ महाद्युते ।
दूतस्त्वां द्रष्टुमायातस्तपसा भास्करप्रभः ॥ ५ ॥

तद्वाक्यं लक्ष्मणेनोक्तं श्रुत्वा राम उवाच ह ।
प्रवेश्यतां मुनिस्तात महौजास्तस्य वाक्यधृत् ॥ ६ ॥

सौमित्रिस्तु तथेत्युक्त्वा प्रावेशयत तं मुनिम् ।
ज्वलन्तमिव तेजोभिः प्रदहन्तमिवांशुभिः ॥ ७ ॥

सोऽभिगम्य रघुश्रेष्ठं दीप्यमानं स्वतेजसा ।
ऋषिर्मधुरया वाचा वर्धस्वेत्याह राघवम् ॥ ८ ॥

तस्मै रामो महातेजाः पूजामर्घ्यपुरोगमाम् ।
ददौ कुशलमव्ययं प्रष्टुमेवोपचक्रमे ॥ ९ ॥

पृष्टश्च कुशलं तेन रामेण वदतां वरः ।
आसने काञ्चने दिव्ये निषसाद महायशाः ॥ १० ॥

तमुवाच ततो रामः स्वागतं ते महामुने ।
प्रापयस्व च वाक्यानि यतो दूतस्त्वमागतः ॥ ११ ॥

चोदितो राजसिंहेन मुनिर्वाक्यमभाषत ।
द्वन्द्वमेतत्प्रवक्तव्यं हितं वै यद्यवेक्षसे ॥ १२ ॥

यः शृणोति निरीक्षेद्वा स वध्यो भविता तव ।
भवेद्वै मुनिमुख्यस्य वचनं यद्यपेक्षसे ॥ १३ ॥

स तथेति प्रतिज्ञाय रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ।
द्वारि तिष्ठ महाबाहो प्रतिहारं विसर्जय ॥ १४ ॥

स मे वध्यः खलु भवेत्कथाद्वन्द्वं समीरितम् ।
ऋषेर्मम च सौमित्रे पश्येद्वा शृणुयाच्च यः ॥ १५ ॥

ततो निक्षिप्य काकुत्स्थो लक्ष्मणं द्वारि संग्रहम् ।
तमुवाच मुने वाक्यं कथयस्वेति राघवः ॥ १६ ॥

यत्ते मनीषितं वाक्यं येन वाऽसि समाहितः ।
कथयस्वाविशङ्कस्त्वं ममापि हृदि वर्तते ॥ १७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे त्र्युत्तरशततमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 23834 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 3110



## चतुरुत्तरशततमः सर्गः ॥ १०४ ॥

ब्रह्मसन्देशकथनम् ॥

शृणु राजन्महासत्त्व यदर्थमहमागतः ।
पितामहेन देवेन प्रेषितोऽस्मि महाबल ॥ १ ॥

तवाहं पूर्वके भावे पुत्रः परपुरञ्जय ।
मायासम्भावितो वीर कालः सर्वसमाहरः ॥ २ ॥

पितामहश्च भगवानाह लोकपतिः प्रभुः ।
समयस्ते कृतः सौम्य स्वाँल्लोकान्परिरक्षितुम् ॥ ३ ॥

संक्षिप्य हि पुरा लोकान्मायया स्वयमेव हि ।
महार्णवे शयानोऽप्सु मां त्वं पूर्वमजीजनः ॥ ४ ॥

भोगवन्तं ततो नागमनन्तमुदकेशयम् ।
मायया जनयित्वा त्वं द्वौ च सत्त्वौ महाबलौ ॥ ५ ॥

मधुं च कैटभं चैव ययोरस्थिचयैर्वृता ।
इयं पर्वतसम्बाधा मेदिनी चाभवन्मही ॥ ६ ॥

पद्मे दिव्येऽर्कसङ्काशे नाभ्यामुत्पाद्य मामपि ।
प्राजापत्यं त्वया कर्म मयि सर्वं निवेशितम् ॥ ७ ॥

सोऽहं संन्यस्तभारो हि त्वामुपासे जगत्पतिम् ।
रक्षां विधत्स्व भूतेषु मम तेजस्करो भवान् ॥ ८ ॥

ततस्त्वमपि दुर्धर्षात्तस्माद्भावात्सनातनात् ।
रक्षार्थं सर्वभूतानां विष्णुत्वमुपजग्मिवान् ॥ ९ ॥

अदित्यां वीर्यवान्पुत्रो भ्रातॄणां वीर्यवर्धनः ।
समुत्पन्नेषु कृत्येषु तेषां साह्याय कल्पसे ॥ १० ॥

स त्वं वित्रास्यमानासु प्रजासु जगतां वर ।
रावणस्य वधाकाङ्क्षी मानुषेषु मनोऽदधाः ॥ ११ ॥

दश वर्षसहस्राणि दश वर्षशतानि च ।
कृत्वा वासस्य नियतिं स्वयमेवात्मना पुरा ॥ १२ ॥

स त्वं मनोमयः पुत्रः पूर्णायुर्मानुषेष्विह ।
कालो नरवरश्रेष्ठ समीपमुपवर्तितुम् ॥ १३ ॥

यदि भूयो महाराज प्रजा इच्छस्युपासितुम् ।
वस वा वीर भद्रं ते एवमाह पितामहः ॥ १४ ॥

अथवा विजिगीषा ते सुरलोकाय राघव ।
सनाथा विष्णुना देवा भवन्तु विगतज्वराः ॥ १५ ॥

श्रुत्वा पितामहेनोक्तं वाक्यं कालसमीरितम् ।
राघवः प्रहसन्वाक्यं सर्वसंहारमब्रवीत् ॥ १६ ॥

श्रुत्वा मे देवदेवस्य वाक्यं परममद्भुतम् ।
प्रीतिर्हि महती जाता तवागमनसम्भवा ॥ १७ ॥

त्रयाणामपि लोकानां कार्यार्थं मम सम्भवः ।
भद्रं तेऽस्तु गमिष्यामि यत एवाहमागतः ॥ १८ ॥

हूतो ह्यसि सम्प्राप्तो न मे तत्र विचारणा ।
मया हि सर्वकृत्येषु देवानां वशवर्तिना
स्थातव्यं सर्वसंहार यथा ह्याह पितामहः ॥ १९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे चतुरुत्तरशततमः सर्गः ॥

## पञ्चोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०५ ॥

### दुर्वाससस्समागमः ॥

तथा तयोः संवदतोर्दुर्वासा भगवानृषिः ।
रामस्य दर्शनाकाङ्क्षी राजद्वारमुपागमत् ॥ १ ॥
सोऽभिगम्य तु सौमित्रिमुवाच ऋषिसत्तमः ॥ २ ॥
रामं दर्शय मे शीघ्रं पुरा मेऽर्थोऽतिवर्तते ॥ ३ ॥
मुनेस्तु भाषितं श्रुत्वा लक्ष्मणः परवीरहा ।
अभिवाद्य महात्मानं वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ४ ॥
किं कार्यं ब्रूहि भगवन्को वार्थः किं करोम्यहम् ।
व्यग्रो हि राघवो ब्रह्मन्मुहूर्तं प्रतिपाल्यताम् ॥ ५ ॥
तच्छ्रुत्वा ऋषिशार्दूलः क्रोधेन कलुषीकृतः ।
उवाच लक्ष्मणं वाक्यं निर्दहन्निव चक्षुषा ॥ ६ ॥
अस्मिन्क्षणे मां सौमित्रे रामाय प्रतिवेदय ॥ ७ ॥
अस्मिन्क्षणे मां सौमित्रे न निवेदयसे यदि ।
विषयं त्वां पुरं चैव शपिष्ये राघवं तथा ॥
भरतं चैव सौमित्रे युष्माकं या च सन्ततिः ॥ ८ ॥
न हि शक्ष्याम्यहं भूयो मन्युं धारयितुं हृदि ।
तच्छ्रुत्वा घोरसङ्काशं वाक्यं तस्य महात्मनः ॥
चिन्तयामास मनसा तस्य वाक्यस्य निश्चयम् ॥ ९ ॥
एकस्य मरणं मेऽस्तु मा भूत्सर्वविनाशनम् ।
इति बुद्ध्या विनिश्चित्य राघवाय न्यवेदयत् ॥ १० ॥

लक्ष्मणस्य वचः श्रुत्वा रामः कालं विसृज्य च ।
निसृत्य त्वरितं राजा अत्रेः पुत्रं ददर्श ह ॥ ११ ॥

सोऽभिवाद्य महात्मानं ज्वलन्तमिव तेजसा ।
किं कार्यमिति काकुत्स्थः कृताञ्जलिरभाषत ॥ १२ ॥

तद्वाक्यं राघवेणोक्तं श्रुत्वा मुनिवरः प्रभुम् ।
प्रत्याह रामं दुर्वासाः श्रूयतां धर्मवत्सल ॥ १३ ॥

अद्य वर्षसहस्रस्य समाप्तिस्तपसो मम ।
सोऽहं भोजनमिच्छामि यथासिद्धं तवानघ ॥ १४ ॥

तच्छ्रुत्वा वचनं राजा राघवः प्रीतमानसः ।
भोजनं मुनिमुख्याय यथासिद्धमुपाहरत् ॥ १५ ॥

स तु भुक्त्वा मुनिश्रेष्ठस्तदन्नममृतोपमम् ।
साधु रामेति सम्भाष्य स्वमाश्रममुपागमत् ॥ १६ ॥

तस्मिन्गते मुनिवरे स्वाश्रमं लक्ष्मणाग्रजः ।
संस्मृत्य कालवाक्यानि ततो दुःखमुपागमत् ॥ १७ ॥

दुःखेन च सुसन्तप्तः स्मृत्वा तद्धोरदर्शनम् ।
अवाङ्मुखो दीनमना व्याहर्तुं न शशाक ह ॥ १८ ॥

ततो बुद्ध्या विनिश्चित्य कालवाक्यानि राघवः ।
नैतदस्तीति निश्चित्य तूष्णीमासीन्महायशाः ॥ १९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे पञ्चोत्तरशततमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 23872 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 3148

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे एकत्रिंशोऽहि वर्तमानकथाप्रसङ्गः ॥



[पुरा कुशलवाभ्यां श्रीरामसन्निधावश्वमेधयज्ञवाटे द्वात्रिंशति दिनेषु गीते श्रीमद्रामायणे द्वात्रिंशेऽह्नि उत्तरकाण्डे षड्उत्तरशततमसर्गमारभ्य दशोत्तरशततमसर्गपर्यन्तं (23873—24000 श्लोकाः) गीतम् । तस्मिन् दिने गीताः श्लोकाः 128]

## षड्उत्तरशततमः सर्गः ॥ १०६ ॥

लक्ष्मणत्यागः, लक्ष्मणस्वर्गगमनं च ॥

अवाङ्मुखमथो दीनं दृष्ट्वा सोममिवाप्लुतम् ।
राघवं लक्ष्मणो वाक्यं हृष्टो मधुरमब्रवीत् ॥ १ ॥

न सन्तापं महाबाहो मदर्थं कर्तुमर्हसि ।
पूर्वनिर्माणबद्धा हि कालस्य गतिरीदृशी ॥ २ ॥

जहि मां सौम्य विस्रब्धं प्रतिज्ञां परिपालय ।
हीनप्रतिज्ञाः काकुत्स्थ प्रयान्ति नरकं नराः ॥ ३ ॥

यदि प्रीतिर्महाराज यद्यनुग्राह्यता मयि ।
जहि मां निर्विशङ्कस्त्वं धर्मं वर्धय राघव ॥ ४ ॥

लक्ष्मणेन तथोक्तस्तु रामः प्रचलितेन्द्रियः ।
मन्त्रिणः समुपानीय तथैव च पुरोधसम् ॥ ५ ॥

अब्रवीच्च तदा वृत्तं तेषां मध्ये स राघवः ।
दुर्वासोऽभिगमं चैव प्रतिज्ञां तापसस्य च ॥ ६ ॥

तच्छ्रुत्वा मन्त्रिणः सर्वे सोपाध्यायाः समागमन् ।
वसिष्ठस्तु महातेजा वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ७ ॥

दृष्टमेतन्महाबाहो क्षयं ते रोमहर्षणम् ।
लक्ष्मणेन वियोगं च तव राम महायशः ॥ ८ ॥

त्यजैनं बलवान्कालो मा प्रतिज्ञां वृथा कृथाः ।
विनष्टायां प्रतिज्ञायां धर्मोऽपि च लयं व्रजेत् ॥ ९ ॥

ततो धर्मे विनष्टे तु त्रैलोक्यं सचराचरम् ।
सदेवर्षिगणं सर्वं विनश्येत्तु न संशयः ॥ १० ॥

स त्वं पुरुषशार्दूल त्रैलोक्यस्याभिपालनात् ।
लक्ष्मणेन विना चाद्य जगत्स्वस्थं कुरुष्व ह ॥ ११ ॥

तेषां तत्समवेतानां वाक्यं धर्मार्थसंहितम् ।
श्रुत्वा परिषदो मध्ये रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥ १२ ॥

विसर्जये त्वां सौमित्रे मा भूद्धर्मविपर्ययः ।
त्यागो वधो वा विहितः साधूनां तूभयं समम् ॥ १३ ॥

रामेण भाषिते वाक्ये बाष्पव्याकुलितेन्द्रियः ।
लक्ष्मणस्त्वरितं प्रायात्स्वगृहं न विवेश ह ॥ १४ ॥

स गत्वा सरयूतीरमुपस्पृश्य कृताञ्जलिः ।
निगृह्य सर्वस्रोतांसि निश्वासं न मुमोच ह ॥ १५ ॥

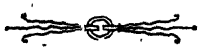
अनिश्वसन्तं युक्तं तं सशक्राः साप्सरोगणाः ।
देवाः सर्षिगणाः सर्वे पुष्पैरभ्यकिरंस्तदा ॥ १६ ॥

अदृश्यं सर्वमनुजैः सशरीरं महाबलम् ।
प्रगृह्य लक्ष्मणं शक्रस्त्रिदिवं संविवेश ह ॥ १७ ॥

ततो विष्णोश्चतुर्भागमागतं सुरसत्तमाः ।
हृष्टाः प्रमुदिताः सर्वेऽपूजयन्समहर्षयः ॥ १८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे षडुत्तरशततमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 23890 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 3166



सप्तोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०७ ॥

कुशलवयोरभिषेकः ॥

विसृज्य लक्ष्मणं रामो दुःखशोकसमन्वितः ।
पुरोधसं मन्त्रिणश्च नैगमांश्चेदमब्रवीत् ॥ १ ॥

अद्य राज्येऽभिषेक्ष्यामि भरतं धर्मवत्सलम् ।
अयोध्यायाः पतिं वीरं ततो यास्याम्यहं वनम् ॥ २ ॥

प्रवेशयत सम्भारान्मा भूत्कालस्य पर्ययः ।
अद्यैवाहं गमिष्यामि लक्ष्मणेन गतां गतिम् ॥ ३ ॥

तच्छ्रुत्वा राघवेणोक्तं सर्वाः प्रकृतयो भृशम् ।
मूर्धभिः प्रणता भूमौ गतसत्त्वा इवाभवन् ॥ ४ ॥

भरतश्च विसंज्ञोऽभूच्छ्रुत्वा रामस्य भाषितम् ।
राज्यं विगर्हयामास वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ५ ॥

सत्येनाहं शपे राजन्स्वर्गलोके न चैव हि ।
न कामये यथा राज्यं त्वां विना रघुनन्दन ॥ ६ ॥

इमौ कुशलवौ राजन्नभिषिञ्च नराधिप ।
कौसलेषु कुशं वीरमुत्तरेषु तथा लवम् ॥ ७ ॥

शत्रुघ्नस्य तु गच्छन्तु दूतास्त्वरितविक्रमाः ।
इदं गमनमस्माकं स्वर्गायाख्यान्तु मा चिरम् ॥ ८ ॥

तच्छ्रुत्वा भरतेनोक्तं दृष्ट्वा चापि ह्यधोमुखान् ।
पौरान्दुःखेन सन्तप्तान्वसिष्ठो वाक्यमब्रवीत् ॥ ९ ॥

वत्स राम इमाः पश्य धरणीं प्रकृतीर्गताः ।
ज्ञात्वैषामीप्सितं कार्यं मा चैषां विप्रियं कृथाः ॥ १० ॥

वसिष्ठस्य तु वाक्येन उत्थाप्य प्रकृतीजनम् ।
किं करोमीति काकुत्स्थः सर्वान्वचनमब्रवीत् ॥ ११ ॥

ततः सर्वाः प्रकृतयो रामं वचनमब्रुवन् ।
गच्छन्तमनुगच्छामो यत्र राम गमिष्यसि ॥ १२ ॥

एषा नः परमा प्रीतिरेष नः परमो वरः ।
हृद्गता नः सदा प्रीतिस्त्वानुगमने नृप ॥ १३ ॥

पौरेषु यदि ते प्रीतिर्यदि स्नेहो ह्यनुत्तमः ।
सपुत्रदाराः काकुत्स्थ समागच्छाम सत्पथम् ॥ १४ ॥

तपोवनं वा दुर्गं वा नदीमम्भोनिधिं तथा ।
वयं ते यदि न त्याज्याः सर्वान्नो नय ईश्वर ॥ १५ ॥

पौराणां दृढभक्तिं च बाढमित्येव सोऽब्रवीत् ।
स्वकृतान्तं चान्ववेक्ष्य तस्मिन्नहनि राघवः ॥ १६ ॥

कोसलेषु कुशं वीरमुत्तरेषु तथा लवम् ।
अभिषिच्य महात्मानावुभौ रामः कुशीलवौ ॥
सुतौ प्रस्थापयामास धर्मिष्ठौ धर्मवत्सलौ ॥ १७ ॥

अभिषिक्तौ सुतावङ्के प्रतिष्ठाप्य पुरे ततः ।
परिष्वज्य महाबाहुर्मूर्ध्न्युपाघ्राय चासकृत् ॥ १८ ॥

रथानां तु सहस्राणि नागानामयुतानि च ।
दशायुतानि चाश्वानामेकैकस्य धनं ददौ ॥ १९ ॥

बहुरत्नौ बहुधनौ हृष्टपुष्टजनावृतौ ।
अभिषिच्य सुतौ वीरौ प्रतिष्ठाप्य पुरे तदा ॥
दूतान्सम्प्रेषयामास शत्रुघ्नाय महात्मने ॥ २० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे सप्तोत्तरशततमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 23910 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 3186



अष्टोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०८ ॥

शत्रुघ्नपुत्रयोरभिषेकः, हनुमदाद्यादेशश्च ॥

ते दूता रामवाक्येन चोदिता लघुविक्रमाः ।
प्रजग्मुर्मधुरां शीघ्रं चक्रुर्वासं च नाध्वनि ॥ १ ॥

ते तु त्रिभिरहोरात्रैः सम्प्राप्य मधुरामथ ।
शत्रुघ्नाय यथातत्त्वमाचख्युः सर्वमेव तत् ॥ २ ॥

लक्ष्मणस्य परित्यागं प्रतिज्ञां राघवस्य च ।
पुत्रयोरभिषेकं च पौरानुगमनं तथा ॥ ३ ॥

कुशस्य नगरी रम्या विन्ध्यपर्वतरोधसि ।
कुशावतीति नाम्ना सा कृता रामेण धीमता ॥
श्रावस्तीति पुरी रम्या श्राविता च लवस्य च ॥ ४ ॥

अयोध्यां विजनां चैव भरतं राघवानुगम् ।
एवं सर्वं निवेद्याशु शत्रुघ्नाय महात्मने ॥
विरेमुस्ते ततो दूतास्त्वर राजेति चाब्रुवन् ॥ ५ ॥

तच्छ्रुत्वा घोरसङ्काशं कुलक्षयमुपस्थितम् ।
प्रकृतीस्तु समानीय काञ्चनं च पुरोधसम् ॥ ६ ॥

तेषां सर्वं यथावृत्तमाख्याय रघुनन्दनः ।
आत्मनश्च विपर्यासं प्रकृतीनां न्यवेदयत् ॥ ७ ॥

ततः पुत्रद्वयं वीरः सोऽभ्यषिञ्चन्नराधिपः ।
सुबाहुमधुरां लेभे शत्रुघाती च वैदिशम् ॥ ८ ॥

द्विधा कृत्वा तु तां सेनां माधुरीं पुत्रयोर्द्वयोः ।
धनधान्यसमायुक्तौ स्थापयामास पार्थिवौ ॥ ९ ॥

सुबाहुं मधुरायां च वैदिशे शत्रुघातिनम् ।
ययौ स्थाप्य तदाऽयोध्यां रथेनैकेन राघवः ॥ १० ॥

स ददर्श महात्मानं ज्वलन्तमिव पावकम् ।
सूक्ष्मक्षौमाम्बरधरं मुनिभिः सार्धमक्षयैः ॥ ११ ॥

सोऽभिवाद्य ततो रामं प्राञ्जलिः प्रयतेन्द्रियः ।
उवाच वाक्यं धर्मज्ञं धर्ममेवानुचिन्तयन् ॥ १२ ॥

कृत्वाऽभिषेकं सुतयोर्युक्तं राघवनन्दन ।
तवानुगमने राजन्विद्धि मां कृतनिश्चयम् ॥ १३ ॥

न चान्यदपि वक्तव्यं तव वीर न शासनम् ।
विहन्यमानमिच्छामि मद्विधेन विशेषतः ॥ १४ ॥

तस्य तां बुद्धिमक्लीबां विज्ञाय रघुनन्दनः ।
बाढमित्येव शत्रुघ्नं रामो वाक्यमुवाच ह ॥ १५ ॥

तस्य वाक्यस्य वाक्यान्ते वानराः कामरूपिणः ।
*ऋक्षराक्षससङ्घाश्च समापेतुरनेकशः ॥ १६ ॥

सुग्रीवं ते पुरस्कृत्य सर्व एव समागताः ।
तं रामं द्रष्टुमनसः स्वर्गायाभिमुखं स्थितम् ॥ १७ ॥

देवपुत्रा ऋषिसुता गन्धर्वाणां सुतास्तथा ।
रामाभिप्रायमाज्ञाय सर्व एव समागताः ॥ १८ ॥

ते राममभिवाद्योचुः सर्वे वानरराक्षसाः ।
तवानुगमने राजन्संप्राप्ताः कृतनिश्चयाः ॥ १९ ॥

यदि राम विनाऽस्माभिर्गच्छेस्त्वं पुरुषोत्तम ।
यमदण्डमिवोद्यम्य त्वया स्म विनिपातिताः ॥
तैरेवमुक्तः काकुत्स्थो बाढमित्यब्रवीत्स्मयन् ॥ २० ॥

एतस्मिन्नन्तरे रामं सुग्रीवोऽपि महाबलः ।
प्रणम्य विधिवद्वीरं विज्ञापयितुमुद्यतः ॥ २१ ॥

अभिषिच्याङ्गदं वीरमागतोऽस्मि नरेश्वर ।
तवानुगमने राजन्विद्धि मां कृतनिश्चयम् ॥ २२ ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा रामो रमयतां वरः ।
वानरेन्द्रमथोवाच मैत्रं तस्यानुचिन्तयन् ॥ २३ ॥

सखे शृणुष्व सुग्रीव न त्वयाऽहं विनाकृतः ।
गच्छेयं देवलोकं वा परमं वा पदं महत् ॥ २४ ॥

विभीषणमथोवाच मधुरं श्लक्ष्णया गिरा ।
यावत्प्रजा धरिष्यन्ति तावत्त्वं वै विभीषण ॥
राक्षसेन्द्र महावीर्य लङ्कास्थस्त्वं धरिष्यसि ॥ २५ ॥

शासितस्त्वं सखित्वेन कार्यं ते मम शासनम् ।
प्रजाः संरक्ष धर्मेण नोत्तरं वक्तुमर्हसि ॥ २६ ॥

तमेवमुक्त्वा काकुत्स्थो हनुमन्तमथाब्रवीत् ।
जीवितं कृतबुद्धिस्त्वं मा प्रतिज्ञां वृथा कृथाः ॥ २७ ॥

मत्कथाः प्रचरिष्यन्ति यावल्लोके हरीश्वर ।
तावत्त्वं धारय प्राणान् प्रतिज्ञामनुपालय ॥ २८ ॥

जाम्बवन्तं तथोक्त्वा तु वृद्धं ब्रह्मसुतं तथा ।
मैन्दं च द्विविदं चैव पञ्च जाम्बवता सह ॥
यावत्कलिश्च संप्राप्तस्तावज्जीवत सर्वदा ॥ २९ ॥

तानेवमुक्त्वा काकुत्स्थः सर्वांस्तानृक्षवानरान् ।
उवाच बाढं गच्छध्वं मया सार्धं यथेप्सितम् ॥ ३० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे अष्टोत्तरशततमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 23941 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 3217

## नवोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०९ ॥

### श्रीरामस्य महाप्रस्थानम् ॥

प्रभातायां तु शर्वर्यां पृथुवक्षा महायशाः ।
रामः कमलपत्राक्षः पुरोधसमथाब्रवीत् ॥ १ ॥
अग्निहोत्रं व्रजत्वग्रे सर्पिर्ज्वलितपावकम् ।
वाजपेयातपत्रं च शोभमानं महापथे ॥ २ ॥
ततो वसिष्ठस्तेजस्वी सर्वं निरवशेषतः ।
चकार विधिवद्धर्मं महाप्रस्थानिकं विधिम् ॥ ३ ॥
ततः सूक्ष्माम्बरधरो ब्रह्म चावर्तयन्परम् ।
कुशान्गृहीत्वा पाणिभ्यां प्रसज्य प्रययावथ ॥ ४ ॥
अव्याहरन्कचित्किंचिन्निःश्रेष्टो निःसुखः पथि ।
निर्जगाम गृहात्तस्माद्दीप्यमान इवांशुमान् ॥ ५ ॥
रामस्य दक्षिणे पार्श्वे पद्मा श्रीः सुसमाहिता ।
सव्ये तु ह्रीर्महादेवी व्यवसायस्तथाग्रतः ॥ ६ ॥
शरा नानाविधाश्चापि धनुरायतमुत्तमम् ।
अनुव्रजन्ति काकुत्स्थं सर्वे पुरुषविग्रहाः ॥ ७ ॥

वेदा ब्राह्मणरूपेण गायत्री सर्वरक्षिणी ।
ओंकारोऽथ वषट्कारः सर्वे राममनुव्रताः ॥ ८ ॥

ऋषयश्च महात्मानः सर्व एव महीसुराः ।
अन्वगच्छन्महात्मानं स्वर्गद्वारमपाहृतम् ॥ ९ ॥

तं यान्तमनुगच्छन्ति ह्यन्तःपुरचराः स्त्रियः ।
सवृद्धबालदासीकाः सवर्षवरकिङ्कराः ॥ १० ॥

सान्तःपुरश्च भरतः शत्रुघ्नसहितो ययौ ।
रामं गतिमुपागम्य साग्निहोत्रमनुव्रतः ॥ ११ ॥

ततो विप्रा महात्मानः साग्निहोत्राः समागताः ।
सपुत्रदाराः काकुत्स्थमन्वगच्छन्महामतिम् ॥ १२ ॥

मन्त्रिणो भृत्यवर्गाश्च सपुत्राः सहबान्धवाः ।
सर्वे सहानुगा राममन्वगच्छन्प्रहृष्टवत् ॥ १३ ॥

ततः सर्वाः प्रकृतयो हृष्टपुष्टजनावृताः ।
गच्छन्तमन्वगच्छंस्तं राघवं गुणरञ्जिताः ॥ १४ ॥

ततः सस्त्रीपुमांसस्ते सपक्षिपशुवाहनाः ।
राघवस्यानुगाः सर्वे हृष्टा विगतकल्मषाः ॥ १५ ॥

स्नाताः प्रमुदिताः सर्वे हृष्टाः पुष्टाश्च वानराः ।
दृढं किलकिलाशब्दैः सर्वं राममनुव्रतम् ॥ १६ ॥

न तत्र कश्चिद्दीनो वा व्रीडितो वाऽपि दुःखितः ।
हृष्टं प्रमुदितं सर्वं बभूव परमाद्भुतम् ॥ १७ ॥

द्रष्टुकामोऽथ निर्यान्तं रामं जानपदो जनः ।
यः प्राप्तः सोऽपि दृष्ट्वैव स्वर्गायानुगतो मुदा ॥ १८ ॥
ऋक्षवानररक्षांसि जनाश्च पुरवासिनः ।
आगच्छन्परया भक्त्या पृष्ठतः सुसमाहिताः ॥ १९ ॥
यानि भूतानि नगरे त्वन्तर्धानगतानि च ।
राघवं तान्यनुययुः स्वर्गाय समुपस्थितम् ॥ २० ॥
यानि पश्यन्ति काकुत्स्थं स्थावराणि चराणि च ।
सर्वाणि रामगमने ह्यनुजग्मुर्हितान्यपि ॥ २१ ॥
नोच्छ्वसत्तदयोध्यायां सुसूक्ष्ममपि दृश्यते ।
तिर्यग्योनिगताश्चापि सर्वे राममनुव्रताः ॥ २२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
उत्तरकाण्डे नवोत्तरशततमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 23962 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 3218

## दशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११० ॥

श्रीरामस्य वैष्णवतेजःप्रवेशः, फलनिरूपणम् च ॥

अध्यर्धयोजनं गत्वा नदीं पश्चान्मुखाश्रिताम् ।
सरयूं पुण्यसलिलां ददर्श रघुनन्दनः ॥ १ ॥
अथ तस्मिन्मुहूर्ते तु ब्रह्मा लोकपितामहः ।
सर्वैः परिवृतो देवैर्ऋषिभिश्च महात्मभिः ॥ २ ॥
आययौ यत्र काकुत्स्थः स्वर्गाय समुपस्थितः ।
विमानशतकोटीभिर्दिव्याभिरभिसंवृतः ॥ ३ ॥

दिव्यतेजोवृतं व्योम ज्योतिर्भूतमनुत्तमम् ।
स्वयंप्रभैः स्वतेजोभिः स्वर्गिभिः पुण्यकर्मभिः ॥ ४ ॥
पुण्या वाता ववुश्चैव गन्धवन्तः सुखप्रदाः ।
पपात पुष्पवृष्टिश्च देवैर्मुक्ता महौघवत् ॥ ५ ॥
तस्मिंस्तूर्यशतैः कीर्णे गन्धर्वाप्सरसङ्कुले ।
सरयूसलिलं रामः पद्भ्यां समुपचक्रमे ॥ ६ ॥
ततः पितामहो वाणीमन्तरिक्षादभाषत ।
आगच्छ विष्णो भद्रं ते दिष्ट्या प्राप्तोऽसि राघव ॥ ७ ॥
भ्रातृभिः सह देवाभैः प्रविशस्व स्विकां तनुम् ।
यामिच्छसि महाबाहो तां तनुं प्रविश स्विकाम् ॥
वैष्णवीं तां महातेजस्तद्धाऽऽकाशं सनातनम् ॥ ८ ॥
त्वं हि लोकगतिर्देव न त्वां केचित्प्रजानते ।
ऋते मायां विशालाक्षीं तव पूर्वपरिग्रहाम् ॥
त्वामचिन्त्यं महद्भूतमक्षयं सर्वसंग्रहम् ॥ ९ ॥
यामिच्छसि महातेजस्तां तनुं प्रविश स्वयम् ॥ १० ॥
पितामहवचः श्रुत्वा विनिश्चित्य महामतिः ।
विवेश वैष्णवं तेजः सशरीरः सहानुजः ॥ ११ ॥
ततो विष्णुमयं देवं पूजयन्ति स्म देवताः ।
साध्या मरुद्गणाश्चैव सेन्द्राः साग्निपुरोगमाः ॥ १२ ॥
ये च दिव्या ऋषिगणा गन्धर्वाप्सरसश्च याः ।
सुपर्णनागयक्षाश्च दैत्यदानवराक्षसाः ॥ १३ ॥

सर्वं पुष्टं प्रमुदितं सुसंपूर्णमनोरथम् ।
साधु साध्विति तैर्देवैस्त्रिदिवं गतकल्मषम् ॥ १४ ॥

अथ विष्णुर्महातेजाः पितामहमुवाच ह ।
एषां लोकं जनौघानां दातुमर्हसि सुव्रत ॥ १५ ॥

इमे हि सर्वे स्नेहान्मामनुयाता मनस्विनः ।
भक्ता हि भजितव्याश्च त्यक्तात्मानश्च मत्कृते ॥ १६ ॥

तच्छ्रुत्वा विष्णुवचनं ब्रह्मा लोकगुरुः प्रभुः ।
लोकान्सान्तानिकान्नाम यास्यन्तीमे समागताः ॥१७॥

यच्च तिर्यग्गतं किञ्चित्त्वामेवमनुचिन्तयत् ।
प्राणांस्त्यक्ष्यति भक्त्या वै तत्सन्ताने विवत्स्यति ॥
सर्वैर्ब्रह्मगुणैर्युक्ते ब्रह्मलोकादनन्तरे ॥ १८ ॥

वानराश्च स्वकां योनिमृक्षाश्चैव तथा ययुः ।
येभ्यो विनिःसृताः सर्वे सुरेभ्यः सुरसंभवाः ॥ १९ ॥

तेषु प्रविविशे चैव सुग्रीवः सूर्यमण्डलम् ।
पश्यतां सर्वदेवानां स्वान्पितॄन्प्रतिपेदिरे ॥ २० ॥

तथोक्तवति देवेशे गोप्रतारमुपागताः ।
भेजिरे सरयूं सर्वे हर्षपूर्णाश्रुविक्लबाः ॥ २१ ॥

अवगाह्य जलं यो यः प्राणी ह्यासीत्प्रहृष्टवत् ।
मानुषं देहमुत्सृज्य विमानं सोऽध्यरोहत ॥ २२ ॥

तिर्यग्योनिगतानां च शतानि सरयूजलम् ।
संप्राप्य त्रिदिवं जग्मुः प्रभासुरवपूंषि च ॥
दिव्या दिव्येन वपुषा देवा दीप्ता इवाभवन् ॥ २३ ॥

गत्वा तु सरयूतोयं स्थावराणि चराणि च ।
प्राप्य तत्तोयमक्लेदं देवलोकमुपागमन् ॥ २४ ॥

तस्मिन्नपि समापन्ना ऋक्षवानररक्षसाः ।
तेऽपि स्वर्गं प्रविविशुर्देहान्निक्षिप्य चाम्भसि ॥ २५ ॥

ततः समागतान्सर्वान्स्थाप्य लोकगुरुर्दिवि ।
जगाम त्रिदशैः सार्धं सदा हृष्टैर्दिवं महत् ॥ २६ ॥

ततः प्रतिष्ठितो विष्णुः स्वर्गलोके यथापुरम् ।
येन व्याप्तमिदं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ २७ ॥

एतावदेतदाख्यानं सोत्तरं ब्रह्मपूजितम् ।
रामायणमिति ख्यातं मुख्यं वाल्मीकिना कृतम् ॥२८॥

ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
नित्यं शृण्वन्ति सन्तुष्टा दिव्यं रामायणं दिवि ॥ २९ ॥

इदमाख्यानमायुष्यं सौभाग्यं पापनाशनम् ।
रामायणं वेदसमं श्राद्धेषु श्रावयेद्बुधः ॥ ३० ॥

अपुत्रो लभते पुत्रमधनो लभते धनम् ।
सर्वपापैः प्रमुच्येत पदमप्यस्य यः पठेत् ॥ ३१ ॥

पापान्यपि च यः कुर्यादहन्यहनि मानवः ।
पठत्येकमपि श्लोकं पापात्स परिमुच्यते ॥ ३२ ॥

एतदाख्यानमायुष्यं पठन्रामायणं नरः ।
सपुत्रपौत्रो लोकेऽस्मिन्प्रेत्य चेह महीयते ॥ ३३ ॥

अयोध्याऽपि पुरी रम्या शून्या वर्षगणान्बहून ।
ऋषभं प्राप्य राजानं निवासमुपयास्यति ॥ ३४ ॥

एतद्रामायणं यस्तु नादरं कुरुते नरः ।
स प्रेत्य रौरवे घोरे पच्यते नात्र संशयः ॥ ३५ ॥

यस्तु पूजयते नित्यं रामायणमिदं नरः ।
सपुत्रपौत्रो लभते वैकुण्ठे स्थानमक्षयम् ॥ ३६ ॥

यं यं कामयते कामं शृण्वन्रामायणं नरः ।
तं तं नियतमाप्नोति राघवस्य प्रसादतः ॥ ३७ ॥

एतदाख्यानमायुष्यं सभविष्यं सहोत्तरम् ।
कृतवान् यच्च वाल्मीकिस्तद्ब्रह्माऽप्यन्वमोदत ॥ ३८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
चतुर्विंशत्साहस्रिकायां संहितायां उत्तरकाण्डे
दशोत्तरशततमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 24000 उत्तरकाण्डे आदितः श्लोकाः 3276

इत्यार्षे श्रीमद्रामयणे द्वात्रिंशेऽह्नि वर्तमानकथाप्रसङ्गः
उत्तरकाण्डः समाप्तः ॥

श्री गोमतीतीरे नैमिशारण्ये अश्वमेधयज्ञवाटगतमुनीन्द्रद्विजेन्द्रनरेन्द्रऋक्ष-
गोपुच्छवानरेन्द्रराक्षसेन्द्रपरिवृतस्य मुनिवृन्दारकवृन्दवन्द्यमानकोरकाकार-
पादयुगलस्य अयोध्यापुराधीशस्य राजाधिराजस्य कृतज्ञस्य सकललोक-
शरण्यस्य सकलजगद्रक्षणजागरूकस्य लोकाभिरामस्य श्रीरामचन्द्रस्य
निकटे गायतोः श्रीरामात्मजयोः कुशलवयोः आख्याने
श्रीमद्रामायणे वर्तमानकथाप्रसङ्गः ॥

मङ्गलं कोसलेन्द्राय महनीयगुणाब्धये ।
चक्रवर्तितनुजाय सार्वभौमाय मङ्गलम् ॥

